दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड छह

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं ? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं ? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है ? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।
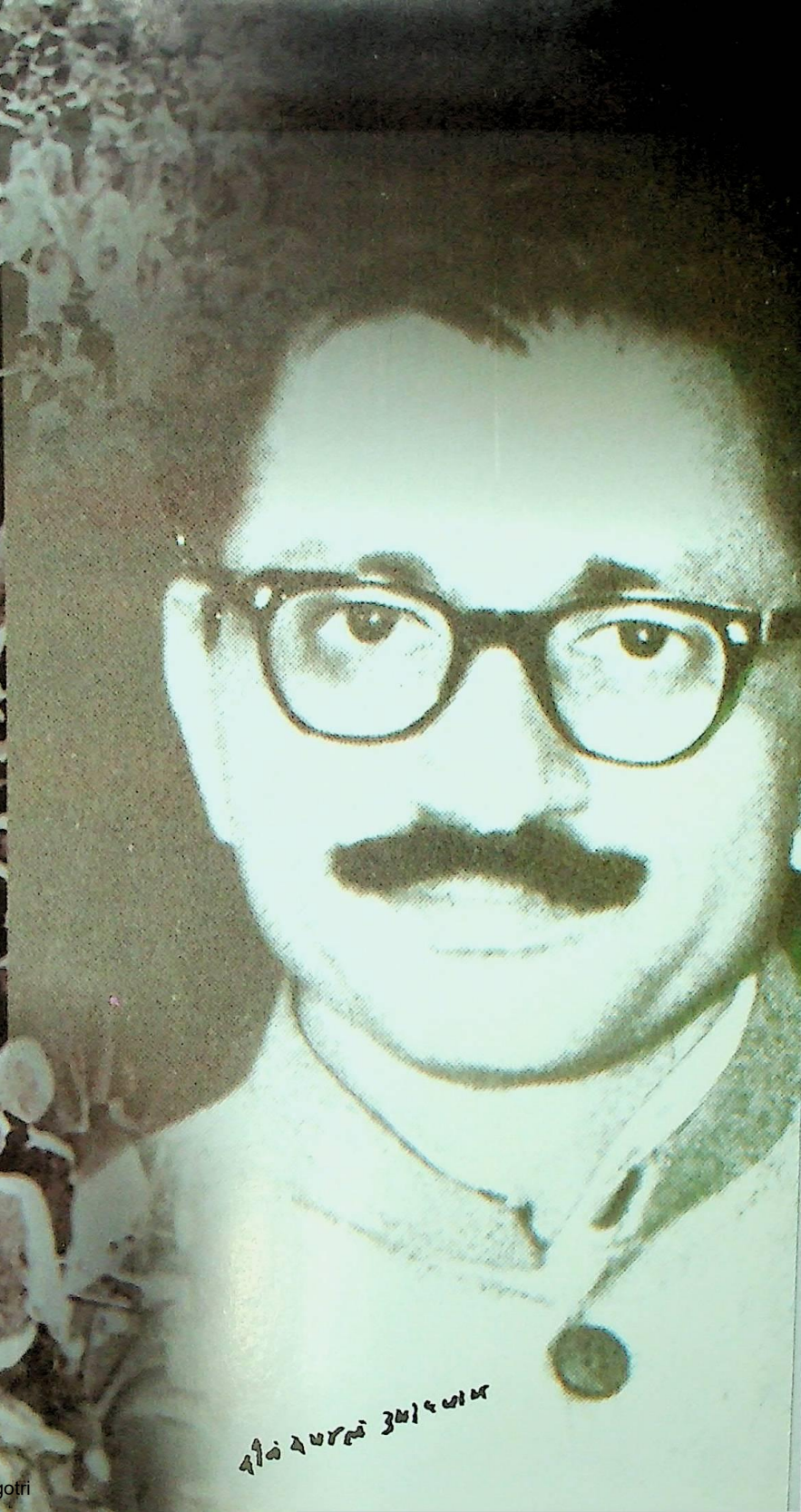
दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय

खंड छह

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
ekatmrdvf@yahoo.co.in

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. VI)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. VI ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-21-5
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण
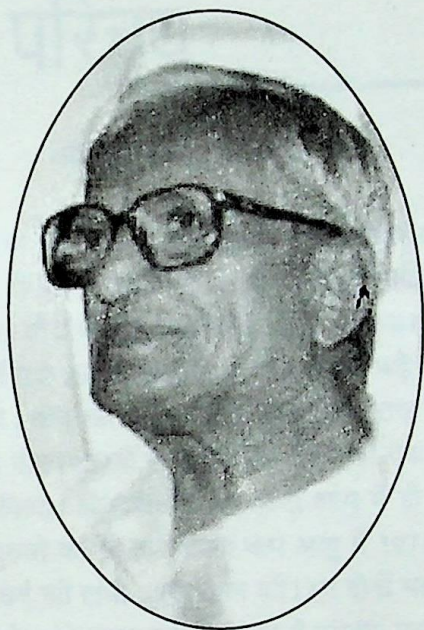
दत्तोपंत ठेंगड़ी

(10 नवंबर, 1920 – 14 अक्तूबर, 2004)

भारतीय मज़दूर संघ के संस्थापक

को समर्पित
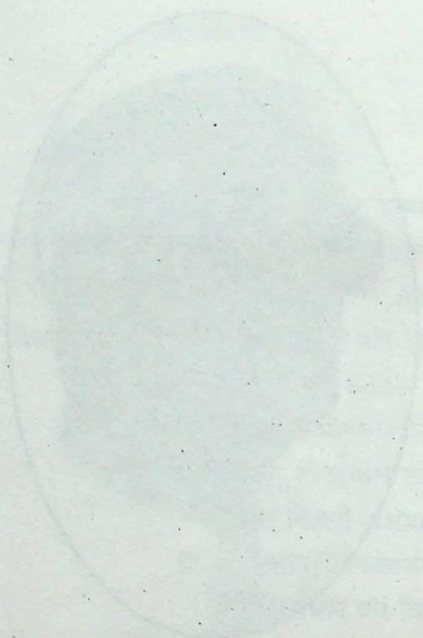
परिचय

श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी

श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर (श्रीगुरुजी) को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वैचारिक यात्रा में दो सक्षम साथी मिले—श्री दीनदयाल उपाध्याय व श्री दत्तोपंत (दत्तात्रेय बापूराव) ठेंगड़ी। तीनों में आयु का अधिक अंतर नहीं था। गुरुजी दीनदयालजी से 10 वर्ष बड़े थे और दीनदयालजी ठेंगड़ीजी से मात्र 4 वर्ष बड़े। पर तीनों ही अपार बौद्धिक क्षमता के धनी थे। श्रीगुरुजी ने आजीवन हिंदुत्व, हिंदू राष्ट्र व हिंदू जीवन दर्शन को व्याख्यायित किया तो दीनदयालजी ने हिंदू जीवन दर्शन को एकात्म जीवन दर्शन के नए शब्दों में परिभाषित किया। दीनदयालजी का छोटी आयु में ही 1968 में निधन हो गया। 5 वर्ष पश्चात् श्रीगुरुजी का भी अपेक्षाकृत कम आयु में 1973 में निधन हो गया। ठेंगड़ीजी को प्रभु ने 84 वर्ष की लंबी आयु प्रदान की। इन दोनों महापुरुषों की बौद्धिक विरासत को तीन दशकों के लंबे काल तक ठेंगड़ीजी ने पुष्पित-पल्लवित किया।

ठेंगड़ीजी का जन्म 10 नवंबर, 1920 को महाराष्ट्र प्रदेश के विदर्भ क्षेत्र के वर्धा ज़िले के आर्वी नामक गाँव में हुआ। बी.ए., एल-एल.बी. की पढ़ाई करने के पश्चात् वे 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गए। दो वर्ष वे केरल में तथा पाँच वर्ष बंगाल में संघ प्रचारक रहे। 1949 में उन्हें अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् विदर्भ प्रदेश अध्यक्ष का दायित्व मिला। दो वर्ष पश्चात् उन्हें भारतीय जनसंघ के संगठन मंत्री का दायित्व मिला, जिसे 1951-53 में मध्य प्रदेश में तथा 1956-57 दक्षिणांचल क्षेत्र में संपन्न किया।

ठेंगड़ीजी जिस कार्यक्षेत्र के लिए प्रसिद्ध हुए और जो उनका प्रथम सबसे बड़ा कार्यक्षेत्र बना, वह था मज़दूर क्षेत्र। 1955 में ठेंगड़ीजी ने मज़दूर क्षेत्र में भारतीय मज़दूर संघ स्थापित किया। उस क्षेत्र में वामपंथी लोग पहले से बने हुए थे, पर ठेंगड़ीजी के नेतृत्व में वह संगठन बड़ा बनता गया और कालक्रम में वह भारत का सबसे बड़ा मज़दूर संगठन

बन गया। मज़दूर संघ की स्थापना से पूर्व ठेंगड़ीजी ने दो वर्ष कांग्रेसी विचारधारा से संबद्ध मज़दूर संगठन इंटक में भी कार्य किया और मज़दूर संगठन कार्य का प्रशिक्षण व अनुभव प्राप्त किया।

भारत के दो और संगठनों की स्थापना में ठेंगड़ीजी की प्रमुख भूमिका रही और वे थे—1979 में स्थापित भारतीय किसान संघ और 1991 में स्थापित स्वदेशी जागरण मंच। उनके जीवन के अंतिम 20-22 वर्षों में स्वदेशी जागरण मंच उनका सबसे बड़ा कर्मक्षेत्र बन गया, जिसे उन्होंने भारतीय आर्थिक हितों के रक्षक के रूप में विकसित किया।

दो अन्य आर्थिक संगठनों—'सहकार भारती', 'ग्राहक पंचायत', अधिवक्ताओं के एक सामाजिक संगठन—'अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद्' तथा केरल में प्रारंभ हुई एक बौद्धिक संस्था 'भारतीय विचार केंद्रम' की स्थापना में ठेंगड़ीजी की विशेष भूमिका रही। इसके अतिरिक्त ठेंगड़ीजी ने 17 विविध संगठनों में संरक्षक की भूमिका भी निभाई।

भारत के सार्वजनिक जीवन में इतनी विविधतापूर्ण भूमिका निभाने वाले बिरले ही लोग हुए होंगे। ठेंगड़ीजी की बौद्धिक प्रतिभा अनेक रूपों में व्यक्त हुई। उन्होंने अंग्रेज़ी, हिंदी और मराठी में विशाल साहित्य लिखा। उन्होंने हिंदी में 34, अंग्रेज़ी में 10 व मराठी में तीन पुस्तकें लिखीं। अन्य महानुभावों द्वारा लिखी अथवा संपादित 12 पुस्तकों की उन्होंने प्रस्तावनाएँ लिखीं। वे प्राय: लंबी प्रस्तावनाएँ लिखते थे। उनका अध्ययन ग़ज़ब का था, जो उनके लेखन व भाषणों में व्यक्त होता था। भारतीय ज्ञान व मनीषा का अध्ययन तो उन्हें था ही विदेशी विचारकों, दार्शनिकों व महापुरुषों के विचारों को भी उन्होंने आत्मसात् किया हुआ था।

वर्ष 1987 में नागपुर में हुई संघ की एक चिंतन बैठक में 'संघ उद्देश्य की पूर्ति में भारतीय मज़दूर संघ के योगदान' विषय पर बोलते हुए उन्होंने तत्कालीन संदर्भ में कहा था कि मज़दूर संघ उस संबंध में बहुत कुछ नहीं कर पाया। उन्होंने कहा कि रोज़ी-रोटी के स्वार्थ से ऊपर उठकर मज़दूर कुछ करे, यह अत्यंत कठिन कार्य है।

—राजकुमार भाटिया

संपादकीय

दो बड़ी पुस्तकों के कारण 1958 का साहित्य संकलन एक ही खंड में आ सके। यह संभव नहीं था। 1958 में दीनदयालजी ने आर्थिक विषय पर प्रथम अंग्रेज़ी पुस्तक लिखी 'दो योजनाएँ : वायदे, अनुपालन, आसार'। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व की पुस्तक है। दीनदयालजी के साथी एवं पंजाब के विख्यात जनसंघ नेता श्री यज्ञदत्त शर्मा के अनुसार इस पुस्तक का आलेखन इतना प्रखर था कि उस समय के योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने प्रासंगिक अधिकारियों को एक परिपत्र जारी किया, जिसमें कहा था कि 'इस पुस्तक में योजना का जैसा गंभीर और तथ्यपरक विश्लेषण पंडितजी ने किया है, वैसा मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा।'

दीनदयालजी से पूर्व डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में बने भारतीय जनसंघ के प्रथम महामंत्री डॉ. भाई महावीर ने इस पुस्तक की समीक्षा में दो भागों में एक आलेख लिखा। हालाँकि वह आलेख पूरा प्राप्त नहीं हो सका, फिर भी उसका मुख्य भाग हमें मिल ही गया है। इस छठे खंड में हम केवल वह पुस्तक एवं उसकी समीक्षा को ही समाहित कर रहे हैं।

'वह काल' आलेख की तो इस खंड में आवश्यकता नहीं है। वर्ष 1958 के संदर्भ में यह आलेख पंचम खंड में प्रकाशित हो रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर क्षेत्र में मा. संघचालक एवं अर्थशास्त्री डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने इसकी सार्थक भूमिका लिखी है, आभार।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

श्रद्धेय पं. दीनदयाल उपाध्यायजी का जीवन एवं चिंतन समाज जीवन में काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनेक दृष्टियों से बोधप्रद एवं प्रेरणास्पद है। उनके जीवन एवं विचारों को लेकर अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। इसी कड़ी में 'पं. दीनदयाल उपाध्याय—विचार दर्शन' के नाम से सात खंडों का प्रकाशन भी हुआ था। मुंबई के छह कार्यकर्ताओं ने विभिन्न विषय लेकर छह खंड लिखे थे तथा सातवाँ खंड मा. ठेंगड़ीजी द्वारा लिखी गई प्रस्तावना का है। किंतु इस सबके बावजूद दीनदयालजी के कार्य एवं विचारों से संबंधित काफ़ी बड़ी सामग्री अब तक प्रकाशित साहित्य में समाविष्ट नहीं हो सकी थी। अत: डॉ. महेश चंद्रजी शर्मा ने एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के माध्यम से इधर-उधर बिखरी पड़ी सामग्री का संकलन कर कालक्रमेण संजोकर उसे दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के नाम से पंद्रह खंडों में प्रकाशित करने का एक बड़ा काम अपने हाथ में लिया। उनका परिश्रम एवं मनोयोगपूर्वक किया जा रहा यह प्रयास सर्वथा सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। इस प्रयास के माध्यम से यत्र-तत्र बिखरी दीनदयालजी की दुर्लभ विचार सामग्री को भावी पीढ़ियों के लिए उपलब्ध करा पाना संभव हो रहा है, यह अपने आप में आनंद का विषय है। इसी क्रम में दीनदयालजी के आर्थिक चिंतन से संबंधित भारत की प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा करनेवाला यह छठा खंड है।

भारत की दो पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारूप आ जाने के बाद पं. दीनदयालजी उपाध्याय द्वारा 1958 में 'द टू प्लान्स, प्रोमिसेज़, परफॉरमेंस, प्रोस्पेक्ट्स' (दो योजनाएँ : वायदे, अनुपालन, आसार) नामक पुस्तक के रूप में एक गहन समीक्षात्मक विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया था। संपूर्ण पुस्तक पाँच खंडों एवं इक्कीस अध्यायों में विभाजित है। स्वतंत्रता के बाद भारत के विकास के लिए नियोजन का मार्ग चुनने से

पहले इस पर खुली एवं व्यापक बहस होनी चाहिए थी, किंतु ऐसी किसी बहस के बिना ही भारत के नेतृत्व ने रूस की नक़ल कर पंचवर्षीय योजना का मार्ग अपना डाला। दीनदयालजी ने भारत की प्रथम दो योजनाओं की समीक्षा के माध्यम से योजना की संकल्पना, आवश्यकता, दृष्टि व दिशा को लेकर एक राष्ट्रीय विमर्श प्रारंभ करने का ही प्रयास किया था। विमर्श के इस क्रम में भारत में योजना के संक्षिप्त इतिहास को जान लेना उपयोगी रहेगा। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसके सामने प्रश्न था कि वह अपने विकास के लिए कौन सा रास्ता अपनाए? उसके सामने मुख्य प्रश्न यह था कि वह अपने विकास का काम निजी उद्यमियों एवं बाज़ार तंत्र के सहारे छोड़ दे अथवा आर्थिक नियोजन की प्रणाली को अपनाए? इस प्रश्न पर स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही विचार प्रारंभ हो गया था। अधिकांश लोगों का यह मानना था कि ब़ाज़ार की अपूर्णताओं के कारण भारत में बाज़ार तंत्र देश के विकास को गति प्रदान नहीं कर सकता। भारतीय नेताओं व विचारकों ने यह भी महसूस किया था कि अंग्रेज़ सरकार की नकारात्मक नीतियों के कारण भारत आर्थिक क्षेत्र में पिछड़ गया था। दुनिया के अनेक देशों का अनुभव भी यह बताता था कि कोई भी देश सरकार के सक्रिय सहयोग के बिना विकास नहीं कर सकता। भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं, समस्याओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर यह महसूस किया गया कि भारत को आर्थिक नियोजन का ही मार्ग अपनाना चाहिए। अत: भारत ने आर्थिक नियोजन का मार्ग चुना।

भारत में स्वतंत्रता से पहले ही यहाँ के नेता एवं विचारक विकास के लिए नियोजन के महत्त्व को स्वीकार कर चुके थे। अत: उन्होंने आज़ादी से पूर्व भी किसी न किसी रूप में भारत के विकास की योजना का प्रारूप देना प्रारंभ कर दिया था। इस दृष्टि से सबसे पहला प्रयत्न 1934 में एक विख्यात इंजीनियर एम. विश्वेश्वरैया ने किया। उन्होंने 'प्लान्ड इकोनॉमी फॉर इंडिया' (भारत की योजित अर्थनीति) नामक पुस्तक लिखी और इसमें भारत के आर्थिक विकास के लिए एक दस वर्षीय योजना प्रस्तुत की। इस पुस्तक के कारण देश के विद्वानों में नियोजन के प्रति काफ़ी रुचि का निर्माण हुआ।

फलस्वरूप इस विषय पर और भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं जैसे डॉ. पी.एस. लोकनाथन की 'प्रिंसिपल्स ऑफ़ प्लानिंग' (नियोजन के सिद्धांत), एन.एस. सुब्बाराव की 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ़ प्लानिंग' (नियोजन के कुछ आयाम) और के.एन. सेन की 'इकोनॉमिक रिकंस्ट्रॅक्शन' (आर्थिक पुनर्रचना)। 1938 में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय नियोजन समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने भारत में नियोजन के बारे में कई रिर्पोटों का प्रकाशन किया। जनवरी, 1944 में बंबई के आठ प्रमुख उद्योगपतियों ने 'ए प्लान ऑफ़ इकॉनोमिक डिवेलपमेंट फॉर इंडिया' (भारत के आर्थिक विकास के लिए एक योजना) शीर्षक से देश के विकास की एक योजना का

प्रकाशन किया। इसे सामान्यत: 'बंबई योजना' के नाम से जाना जाता है। लगभग इसी समय एम.एन. राय ने 'पीपुल्स प्लान' प्रस्तुत किया और एस.एन. अग्रवाल ने गांधीजी के विचारों को आधार बनाकर 'गांधियन प्लान' प्रस्तुत किया।

आज़ादी के पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने देश के विकास की रूपरेखा तैयार करने के लिए नवंबर 1947 में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक 'आर्थिक कार्य समिति' का गठन किया। इस समिति ने 25 जनवरी, 1948 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए एक स्थायी योजना आयोग बनाने का सुझाव दिया। इस सुझाव के अनुसार ही भारत सरकार ने 15 मार्च, 1950 को भारतीय योजना आयोग के गठन की घोषणा कर दी। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू इसके पहले अध्यक्ष थे। भारत के प्रथम योजना आयोग ने भारत के विकास के लिए पाँच वर्षों की समयावधि वाली योजनाएँ प्रारंभ करने का सुझाव दिया था और इसीलिए भारत की विकास योजनाओं का नाम पंचवर्षीय योजनाएँ पड़ गया। पहली पंचवर्षीय योजना का प्रारूप जुलाई, 1951 में प्रस्तुत किया गया और दिसंबर, 1952 में इसे अंतिम रूप दिया गया।

नियोजन के अर्थ एवं परिभाषा को लेकर एक लंबे समय से बहस एवं विवाद चला आ रहा है। दीनदयालजी ने इसीलिए कहा था कि योजना एवं नियोजन का अलग-अलग अर्थ एवं परिभाषा होने के कारण एक भ्रमपूर्ण स्थिति का निर्माण हो गया है और योजना का कोई एक सुनिश्चित अर्थ स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। नियोजन शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों एवं विभिन्न संदर्भों में किया जा रहा है। दीनदयालजी की यह आशंका कुछ हद तक सही थी, पर हम भारतीय योजना आयोग द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना में आर्थिक नियोजन की परिभाषा को इन शब्दों में पाते हैं—'आर्थिक नियोजन एक ऐसी विधि है, जिसके माध्यम से निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साधनों का संगठन एवं अधिकतम लाभप्रद ढंग से उपयोग किया जाता है।'

दीनदयालजी का मानना था कि नीतियों के निर्माण एवं विकास के महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रमों को शुरू करते समय गहन एवं गंभीर चिंतन नहीं किया गया। ऐसा लगता है कि योजनाकारों एवं नीति निर्माताओं ने भारत की आवश्यकताओं के अनुसार स्वतंत्र चिंतन की क्षमता ही खो दी है। वे लिखते हैं—"अवधारणा से आरंभ तक यह योजना (दूसरी पंचवर्षीय योजना) संसाधनों की संभावित उपलब्धता के अनुमानों पर खड़ी की गई थी, जिसका वास्तविकता से कोई रिश्ता नहीं था। जिन अनुमानों को आधार माना गया था वो तो सिर्फ़ ख़याली पुलाव था।"*

विकास के सपनों का महल जब दरकने लग रहा था तो इसकी कारण-मीमांसा व

---

* द टू प्लान्स : प्रॉमिसेज़, परफॉरमेंस, प्रॉस्पेक्ट्स।

समाधान के लिए कमेटियाँ एवं कमीशन नियुक्त कर दिए गए, पर इनके सुझाव परस्पर विरोधी एवं वास्तविकताओं के परे थे। अतः समस्याएँ सुलझने की बजाय और अधिक उलझती गईं। कुल मिलाकर आर्थिक नीतियों के संबंध में दीनदयालजी ने बहुत ही सटीक टिप्पणी इन शब्दों में की थी, "क्रियान्वयन में ही नहीं, योजनाओं के निरूपण में और प्राथमिकताओं को तय करने में भी आर्थिक व राजनीतिक पहलू के मद्देनज़र किसी विस्तृत और एकीकृत दृष्टि को नहीं अपनाया गया है...यदि पूरी ईमानदारी से सभी योजनाएँ लागू कर भी दी जाएँ (फ़िलहाल संसाधनों और कर्मचारियों को छोड़ दें), तो भी वे आपस में टकराएँगीं और भीषण अव्यवस्था पैदा हो जाएगी।" (पृ. 8)

दीनदयालजी का दृढ मत था कि हमें नियोजन के अपने संपूर्ण दृष्टिकोण के बारे में ही पुनर्विचार करना चाहिए।

योजना विशेषज्ञों का मानना था कि भारत की जनता बहुत ग़रीब, बहुत अज्ञानी और पुरानी व्यवहार-परंपराओं से घिरी होने के कारण, उसकी विकास योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन कुछ समय तक ऊपर से ही किया जाना चाहिए। दीनदयालजी इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे, क्योंकि यह देश की जनता की क्षमता में विश्वास की कमी को दरशाता है, जिसे अच्छा नहीं कहा जा सकता। वे तो नीचे के स्तर से जनभागीदारी और साझेदारी से योजना बनाने के पक्षधर थे।

आर्थिक नियोजन की दिशा के बारे में गंभीर सवाल उठाते हुए दीनदयालजी ने कहा था—"हमें यह भी निश्चित करना है कि आर्थिक योजना सामाजिक और राजनीतिक योजना की सहायक हो या सामाजिक राजनीतिक मूल्य भी आर्थिक मूल्यों से ही संचालित हों। क्या हम आर्थिक कल्याण के आगे अपने लोकतांत्रिक, मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों की बलि चढ़ा दें?" (पृ.18)

भारत में योजना को सत्तारूढ़ दल के चुनाव घोषणा-पत्र के रूप में ही अधिक प्रस्तुत एवं क्रियान्वित किया गया।

1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का जो ड्राफ्ट प्रसारित गया किया था, कमोबेश रूप में वह कांग्रेस पार्टी के घोषणा-पत्र की ही नक़ल था। इस पर एतराज़ करते हुए दीनदयालजी ने कहा था कि देश की विकास योजना के बारे में सबसे व्यापक संवाद व परामर्श होना चाहिए था, जो नहीं हुआ। अतः यह राष्ट्रीय योजना की बजाय एक पार्टी योजना बनकर रह गई। पहली दो योजनाओं की संसद् में प्रस्तुति एवं बहस मात्र औपचारिकता थी। योजना पर काम पहले शुरू हो गया और उसकी संसद् में प्रस्तुति व स्वीकृति बाद में हुई, यह लोकतांत्रिक परंपराओं की घोर अनदेखी ही थी।

योजना आयोग ने योजना के लिए हेरॉड-डोमर मॉडल को अपना आधार बनाया था, जिसने दूसरी योजना से नेहरू-महालनोबिस मॉडल का रूप ले लिया था। इसके

अनुसार आर्थिक संवृद्धि का मुख्य कारक निवेश दर को माना जाता है, अतः पूँजी-उत्पाद-अनुपात के आधार पर संवृद्धि दर के किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक निवेश दर (या पूँजी निर्माण की दर) का आकलन प्रस्तुत किया जाता है। इस मॉडल में आर्थिक विकास के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक व मानवीय कारकों को स्थिर मानकर केवल पूँजी को प्रधान कारक माना गया है। इसके अनुसार विकास की दर को बढ़ाने के लिए निवेश की दर में वृद्धि होना आवश्यक माना जाता है। किंतु अब इस दृष्टिकोण पर प्रश्नचिह्न लगना प्रारंभ हो गया है। निवेश व पूँजी बढ़ाने की अंधी दौड़ में दुनिया के अनेक देश क़र्ज़ जाल में फँसते नज़र आ रहे हैं। अतः अब अनेक विद्वान्-मनीषी सामाजिक-सांस्कृतिक-मानवीय कारकों को अधिक गतिमान बनाकर विकास दर बढ़ाने की रणनीति पर विचार करने लगे हैं। दीनदयालजी अपनी इस समीक्षा पुस्तक में संभवतः इसी संभावना को तलाशने का प्रयास करते हुए दिखाई दे रहे हैं। योजना आयोग ने नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि दर में वृद्धि कर सामान्य जनता के रहन स्तर को ऊपर उठाना माना था और इसके लिए पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाना आवश्यक था।

योजना का दूसरा उद्देश्य आर्थिक विषमता को कम करना माना गया। इसके लिए विभिन्न आय समूहों के बीच अंतर कम करना आवश्यक था। किंतु आर्थिक संवृद्धि के लिए यदि पूँजी निर्माण दर में वृद्धि करना है तो अल्पकाल में योजना आयोग विभिन्न आय समूहों के बीच अंतर को बनाए रखने को स्वीकार करता है। इस प्रकार आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विषमता में कमी परस्पर विरोधी उद्देश्य बन जाते हैं। भारत का योजना आयोग एवं नियोजन तंत्र अंत तक इन दोनों परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच ही उलझा रहा और कोई संतोषजनक समाधान का मार्ग नहीं खोज सका।

भारत में आर्थिक नियोजन की प्रारंभिक दिशा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर राज्य के नियंत्रण में वृद्धि की रही है। इसी का परिणाम यह हुआ कि अस्सी के दशक तक आते-आते भारतीय अर्थव्यवस्था कोटा, परमिट, लाइसेंस एवं सार्वजनिक उद्यमों के वर्चस्व के माध्यम से एक नियंत्रित अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई। परिणामस्वरूप कार्य, कार्यकुशलता एवं उत्पादकता निम्न स्तर पर पहुँच गईं और केंद्रीयकरण, विषमता, पक्षपात व भ्रष्टाचार काफ़ी बढ़ गया। पहली योजना अपने उद्देश्य की कोई सुनिश्चित एवं संकलित दिशा नहीं पकड़ सकी, यह तो पहले से चली आ रही कुछ कार्य योजनाओं की घालमेल वाली एक गठरी बनकर रह गई। समाज एवं योजना आयोग के बीच संवाद-सहयोग की कड़ी के रूप में भारत सेवक समाज और सार्वजनिक सरकार के लिए राष्ट्रीय सलाहकार समिति नामक दो ग़ैर-सरकारी सामाजिक संस्थाओं का गठन किया गया था। किंतु कालांतर में ये दोनों संस्थाएँ कांग्रेस पार्टी के नेताओं का जमावड़ा

बनकर रह गईं और इन्होंने संपूर्ण समाज का प्रतिनिधि स्वरूप खो दिया। इन संस्थाओं के माध्यम से जनभागीदारी तो श्रमदान के नाम पर कभी-कभार किया जानेवाला मात्र फ़ोटो प्रचारतंत्र बनकर रह गया। सामुदायिक विकास योजना के माध्यम से ग्रामीण भारत में युगांतरकारी परिवर्तन लाने की कल्पना की गई थी। इसके लिए भारत-अमरीकी तकनीकी सहकार निधि और फोर्ड फाउंडेशन से विशेषज्ञ एवं धनराशि प्राप्त की गई थी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि ये योजनाएँ भारत के सामान्य जनसमाज, समझदार एवं प्रबुद्ध लोगों पर कोई भी सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में असफल रहीं।

दीनदयालजी का मानना था कि भारत में व्याप्त घोर क्षेत्रीय असमानताओं के कारण अखिल भारतीय औसतों के आधार पर बनाई गई कोई भी नीति उपयोगी नहीं हो सकती। यदि विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न वर्गों के लोगों की क्रयशक्ति में पाए जानेवाले अंतर को ध्यान में रखा जाए तो हमें भारत में केंद्रीकृत योजना के स्थान पर विकेंद्रीकृत योजना नीति को अपनाना चाहिए। (पृ. 56) प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाते समय बेरोज़गारी को एक गंभीर समस्या ही नहीं माना गया था। दीनदयालजी के अनुसार यह योजना आयोग की भारी भूल थी। कोरियन युद्ध जनित तेज़ी के समाप्त होते ही 1953 में रोज़गार की समस्या ने विकराल रूप लेना प्रारंभ कर दिया था।

दीनदयालजी ने योजना के उद्देश्यों व लक्ष्यों के बारे में बहुत ही सटीक एवं तथ्यात्मक-तर्कसंगत विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं, इस पुस्तक में उनके द्वारा कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र, क़ीमत स्तर, रोज़गार स्थिति, ग़रीबी एवं विषमता, वित्तीय व्यवस्था, कराधान, आंतरिक एवं बाह्य संसाधन जुटाने, निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र, व्यापार शेष एवं भुगतान संतुलन, परिवहन, घाटे की वित्त व्यवस्था आदि के बारे में विस्तृत एवं गहन समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह आर्थिक विषयों के बारे में दीनदयालजी के गहन आर्थिक चिंतन को दरशाता है तथा भविष्य में भी आर्थिक नीति निर्माताओं के लिए महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक सूत्र प्रदान करनेवाला है।

दूसरी योजना के मुख्य कल्पनाकार प्रो. महालनोबिस हो गए थे, किंतु इस योजना का प्रारूप मुख्य रूप से रूसी विशेषज्ञों के निर्देशन में ही तैयार किया गया था, अतः श्री जयप्रकाश नारायणजी को भी कहना पड़ा कि "पंडित नेहरू की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सभी सातों लेखक लौह आवरण के पीछे के लोग थे।" (पृ.141)

दूसरी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य समाजवादी समाज रचना की स्थापना करना कहा जा सकता है। इस योजना में तीव्र औद्योगीकरण, विशेषतः भारी एवं आधारभूत उद्योगों पर ख़ास ज़ोर दिया गया था। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को अधिक महत्त्व दिया गया। आय व धन की विषमता को कम करने के लिए संस्थागत परिवर्तनों

और राजकोषीय उपायों को माध्यम बनाने की बात कही गई थी। किंतु इसे भारतीय नियोजन की त्रासदी ही कहा जाएगा कि हर योजना में विषमता घटाने का उद्देश्य रखने के बावजूद देश में विषमता भयंकर रूप से बढ़ती गई।

किसी भी योजना की सफलता की शर्त को दीनदयालजी ने योजना आयोग के ही शब्दों में इस प्रकार उद्धृत किया है, ''यदि केंद्र और राज्य दोनों की प्रशासनिक मशीनरी दक्षता, सत्यनिष्ठा, तात्कालिकता की भावना, समुदाय के लिए चिंता के भाव से काम करती है तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता सुनिश्चित है।'' (पृ.157) यह बहुत ही गहरी एवं मार्मिक टिप्पणी थी।

कांग्रेस के आवडी अधिवेशन के प्रस्ताव तथा रूस व चीन के प्रभाव के कारण द्वितीय योजना का वैचारिक आधार समाजवाद को बनाया गया। इस प्रकार इस योजना से भारत में नियोजन को एक वैचारिक एवं मूल्यगत दृष्टि प्रदान की गई, इसे ही आगे चलकर समाजवादी समाज रचना के उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया गया। दीनदयालजी ने 'समाजवाद' की इस संकल्पना के अर्थ एवं परिभाषा को लेकर व्याप्त मतभेद एवं संभ्रम की ओर संकेत किया था। शायद यही संभ्रम भारतीय नियोजन की दिशाहीनता का कारण भी रहा है। दूसरी योजना की समीक्षा करते हुए दीनदयालजी ने आवश्यकता से अधिक विदेशी निर्भरता के ख़तरों को भाँप लिया था और समय-समय पर देश को इस संबंध में सजग-सतर्क रहने के दिशा संकेत भी दिए थे। किंतु देश के नेतृत्व ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और तब से लेकर अब तक वह विदेशी निवेश, विदेशी तकनीक-तकनोलॉजी और विदेशी विशेषज्ञों के भँवरजाल में ऐसा फँसा कि वह स्वावलंबन के लिए ठोस आधार भूमि तैयार करने का साहस ही नहीं जुटा पाया। आगे इस दिशा में यदि हम कुछ कर सके तो वह दीनदयालजी के सपनों को साकार करने की दिशा में एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण क़दम होगा।

दीनदयालजी के अनुसार भारतीय नियोजन विशेषत: दूसरी योजना जनसंख्या वृद्धि दर, पूँजी निर्माण की वृद्धि दर और पूँजी-उत्पाद अनुपात से संबंधित ग़लत मान्यताओं पर आधारित थी। परिणामस्वरूप योजना के उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में संतोषजनक प्रगति नहीं हो सकी। योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से घरेलू एवं बाह्य संसाधनों की कमी भी एक बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित हुई। यह संसाधनों के बारे में सही आकलन न कर पाने को ही दरशाता है।

भारतीय योजनाकार योजनाओं की प्राथमिकताओं के निर्धारण में व्यावहारिक एवं आदर्शात्मक दोनों ही धरातलों पर असफल रहे हैं। इस ओर इशारा करते हुए दीनदयालजी ने दूसरी योजना के बारे में कहा था कि ''ग़लत आर्थिक समझ, ख़राब आँकड़े और पूर्वज्ञान का अभाव ही आयोग का मार्गदर्शक रहा होगा, जिसके कारण इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को बुरी

तरह से नज़रअंदाज़ किया गया। वस्तुतः जल्दबाज़ी में चीज़ों का साधारणीकरण और अधिक सरलीकरण करना, साथ ही पाँच वर्ष की अवधि को न देखकर केवल एक-दो साल को ही दृष्टि में रखना, आयोग की ग़लती कही जा सकती है।'' (पृ. 212)

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की योजनाओं के बीच समन्वय का नितांत अभाव था। दीनदयालजी द्वारा भारतीय नियोजन पर की गई यह टिप्पणी सख़्त अवश्य है किंतु सार्थक है। उन्हीं के शब्दों में—''अब कहा जा सकता है कि जिन धारणाओं पर आयोग काम कर रहा थ, वे तर्कसंगत नहीं थीं। जो तरीक़े इसने अपनाए, वे हमारे देश की परिस्थितियों के हिसाब से अवैज्ञानिक और अनुपयुक्त थे। उत्पादन के लक्ष्य मनमाने ढंग से निर्धारित किए गए और जिन संसाधनों की बात की गई, वे तथ्यों से परे थे। एक अविकसित अर्थव्यवस्था के, जहाँ संगठित क्षेत्र, असंगठित क्षेत्र और विमुद्रीकरण तथा अल्प मुद्रीकरण का सह अस्तित्व हो, वहाँ के नियम नहीं समझे गए। यहाँ तक कि विकसित अर्थव्यवस्था के नियम भी उचित ढंग से नहीं लागू किए गए।'' (पृ. 229)

ऐसा दिखाई देता है कि भारत का योजना आयोग एक ओर तो रूसी आदर्श पर बहुत अधिक आसक्त होकर सरकारी उद्यमों का विस्तार करना चाहता था किंतु दूसरी ओर पुराने परंपरागत ढाँचे को छोड़ना भी नहीं चाहता था। योजना आयोग की इस दुविधा ने अनिश्चितता की स्थिति खड़ी कर दी थी। वह एक साथ गांधीवादी, सर्वोदयवादी, पश्चिमी प्रजातंत्रवादी, पूँजीवादी एवं समाजवादी, सभी को साथ लेना चाहता था, परिणामस्वरूप योजना कोई निश्चित दिशा नहीं पकड़ सकी और इधर से उधर झूलती रही। अतः दीनदयालजी का सुझाव था कि हमें सोच-समझकर अपनी प्राथमिकताओं का स्पष्टता के साथ पुनर्निर्धारण करना चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषिक्षेत्र और विकेंद्रित लघु उद्योग क्षेत्र को उचित एवं महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा। संसाधनों के अंतर को भरने की ओर ध्यान देना होगा और अत्यधिक घाटे की वित्त व्यवस्था के ख़तरों से बचना होगा, अनावश्यक ख़र्चों को कम करना होगा और देश के नेतृत्व वर्ग को सादा जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करना होगा।

दीनदयालजी की 'टू प्लान्स' पर पुस्तक आने के बाद आदरणीय डॉ. भाई महावीर ने 'ऑर्गनाइज़र' साप्ताहिक पत्रिका के 1 और 15 सितंबर, 1958 के अंकों में इस पर 'रिव्यू I' और 'रिव्यू II' के अंतर्गत बहुत ही सारगर्भित समीक्षात्मक टिप्पणियाँ लिखी थीं, जो इस खंड के अंत में दी गई हैं। पुस्तक के संबंध में उनकी सारभूत टिप्पणी का यह अंश दीनदयालजी के अर्थचिंतन को बहुत ही सशक्त ढंग से प्रस्तुत करता है— ''प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसा प्रकाशन है, जो एक से अधिक कारणों से गंभीर रूप से संज्ञान लिए जाने और सचेत अवलोकन के योग्य है। चिंतन की स्पष्टता, दृष्टिकोण की ताज़गी और विचार बिंदुओं की तर्कसंगतता में यह न केवल भारत के नियोजन से संबद्ध

साहित्य बल्कि समस्त आर्थिक साहित्य के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय योगदान है।''

वस्तुत: डॉ. भाई महावीरजी ने अपनी इन दोनों समीक्षात्मक टिप्पणियों के माध्यम से दीनदयालजी के अर्थचिंतन की गहराई, समग्र-समन्वित दृष्टि, जनसामान्य के कल्याण की चिंताओं और भारतीय अधिष्ठान पर आधारित भारतीय समाज की स्थिति, प्रकृति-प्रवृत्ति, समस्याओं एवं उपलब्ध संसाधनों को देखते हुए व्यावहारिक विकास योजना बनाने के परामर्श को बहुत ही सुंदरता से प्रस्तुत किया है। अत: दीनदयालजी की पुस्तक को पढ़ने के साथ-साथ इन दोनों टिप्पणियों का मननपूर्वक अध्ययन भी अत्यंत उपयोगी होगा।

दीनदयालजी की यह पुस्तक सभी नीति-निर्माताओं, अध्येताओं, शोधार्थियों, अकादमिक विद्वानों के लिए सर्वथा पठनीय एवं मननीय है। दीनदयालजी ने देश के विकास, नियोजन एवं आर्थिक नीतियों के संबंध में जो राष्ट्रीय विमर्श प्रारंभ किया था, वह भले ही उस समय पर्याप्त गति नहीं पकड़ सका हो, किंतु अब देश व दुनिया के लंबे अनुभव के बाद अवश्य ही इस दिशा में एक सार्थक बहस प्रारंभ हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं दीनदयालजी की लेखनी एवं उनके चिंतन को नमन करता हूँ।

—डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइज़र के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'टू प्लांस : प्रोमिसेज : परफोर्मेंस : परस्पेक्टिव' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पॉलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

ख़िलाफ़ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

अनुक्रमणिका

1

दो योजनाएँ

वायदे, अनुपालन, आसार

प्रथम संस्करण के लिए प्रकाशक की टिप्पणी

यह पुस्तक दोनों पंचवर्षीय योजनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण है। यह एक लंबे काल की आवश्यकता को पूर्ण करता है, अतः इस प्रकार के कार्य के प्रकाशन के लिए किसी स्पष्टीकरण की ज़रूरत नहीं है, बल्कि इसके प्रकाशन में हुई देरी के लिए स्पष्टीकरण माँगा जा सकता है। पुस्तक के प्रकाशन का लक्ष्य यह है कि पाठकों को योजना के प्रति अपनी मानसिकता बदलने और शब्दाडंबर से काम की बातें निकालने में मदद मिले।

मौलिकता, स्पष्टता और विश्लेषणात्मक अध्ययन से परिपूर्ण यह पुस्तक दोनों योजनाओं का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत करती है। इसका तीक्ष्ण विश्लेषण और मज़बूत पकड़ योजनाओं की अवधारणा, प्रारंभ, क्रियान्वयन, उम्मीदें और उपलब्धियों पर काफ़ी रोशनी डालता है। यही नहीं, पुस्तक हवाई आदर्शवादियों, सत्ता व सत्ता के बाहर ख़ुद में डूबे लोगों, सांख्यिकी के सैद्धांतिक पक्ष मात्र को मानने वाले और सर्वाधिकारवादियों को एक सामयिक चेतावनी देती है कि योजना के प्रति अपने रुख़ को बदलें और देश का भविष्य बरबाद होने से बचाने के लिए सही नीतियाँ अपनाएँ।

यह पुस्तक दोनों योजनाओं के साथ-साथ वर्तमान आर्थिक संकट का भी आलोचनात्मक विश्लेषण करती है। पुस्तक का दूसरा भाग (यह भाग खंड पाँच में है) जो कि बाद में प्रकाशित होगा, देश के आर्थिक विकास के नए कार्यक्रमों के लिए सिद्धांतों के निरूपण का वादा एवं प्रस्ताव लेकर आएगा।

योजना एक गतिशील प्रक्रिया है, जो किसी भी देश की संस्कृति में व्याप्त पारंपरिक मूल्यों और मूलभूत अवधारणाओं पर आधारित होती है। भारत में नियोजन का उत्तरदायित्व सँभालने वाले या तो इस महत्त्वपूर्ण बात से बेख़बर हैं या जानबूझकर इसे नज़रंदाज़ करते हैं। इस पुस्तक के लेखक ने स्पष्ट और सराहनीय तरीक़े से इस बिंदु पर प्रकाश डाला है।

अंत में उन्होंने ज़ोर दिया है कि योजना महज़ भौतिक तथा आर्थिक संसाधनों तथा ख़र्चों में संतुलन बिठाने की नहीं, बल्कि अनिवार्य रूप से प्राथमिकताओं को सही क्रम में रखने की प्रक्रिया है। और इस क्षेत्र में दूसरी पंचवर्षीय योजना के कर्ता-धर्ताओं ने न तो यथार्थवाद अपनाया है, न आदर्शवाद।

पुस्तक में हमारे महत्त्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक मुद्‌दों और कमियों के लिए साम्यवादी या पूँजीवादी देशों से, उनके ईजाद किए लोकप्रिय समाधान आयात किए जाने पर आलोचनात्मक सवाल उठाए गए हैं।

यदि पुस्तक में दी गई समीक्षात्मक टिप्पणियाँ एवं विचार सत्ताधारी वर्ग के लोगों की काल्पनिक बातों या प्रचलित मतों के विरोध में जाते हैं तो पाठकों को धक्का नहीं लगना चाहिए, क्योंकि कठोर सत्य, तथ्य, पर्याप्त आँकड़े और सामान्य बोध इस विरोध के ही समर्थन में जाते हैं। पाठक सब्र से पुस्तक पढ़ेंगे तो उन्हें स्वयं ही यह समझ आ जाएगा। बेशक़ लेखक ने ऐसे साहसपूर्ण सवाल और मत सामने रखे हैं, जो प्रचलन में नहीं हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे पक्षपातपूर्ण या काल्पनिक हैं, बल्कि वे काफ़ी विचारोत्तेजक और उत्साहवर्धक हैं। पुस्तक में दिए गए तथ्य एवं आँकड़े सिद्ध करते हैं कि लेखक ने विस्तृत विश्लेषणात्मक और परिश्रमपूर्ण अध्ययन की विधि अपनाई है। हमारा निश्चित मत है कि यह पुस्तक अपने आप में आज तक का एक अनोखा प्रयास है, साथ ही एक महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक कृति है, जोकि वर्तमान के उद्‌देश्यों को पूरा करती है।

इसका प्रकाशन हमारे लिए न केवल सुखद कर्तव्य बल्कि गौरवपूर्ण सौभाग्य भी है कि यह मूल्यवान कृति ऐसे व्यक्ति की क़लम से निकली है, जो कोई अव्यावहारिक स्वप्नदृष्टा नहीं वरन् एक व्यावहारिक राजनेता हैं। हमारे देशवासी उन्हें भारतीय जनसंघ के महामंत्री के रूप में जानते हैं। उनकी क़लम से कई रचनाएँ, चाहे जीवनियाँ हों, दार्शनिक विषय हों, सामाजिक-राजनीतिक मुद्‌दे हों—पुस्तकों, निबंधों, पुस्तिकाओं, लेखों आदि के रूप में निकली हैं। हमारी ओर से उन्हें किसी परिचय की आवश्यकता नहीं। उनका काम ही उनका परिचय है।

हम यह पुस्तक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। यदि इससे देश की आर्थिक स्थिति के प्रति उनमें नई दृष्टि और एक स्वतंत्र सोच पनपने में मदद मिलेगी तो हम समझेंगे कि हमारा प्रयास सफल हुआ।

—राष्ट्रधर्म प्रकाशन, लखनऊ

भूमिका

भारत एक कठिन आर्थिक स्थिति से गुज़र रहा है। प्रधानमंत्री इसे विकास की गतिशीलता की कठिनाई के तौर पर देखना चाहते हैं, न कि स्थिरता की समस्या के रूप में। आप किसी भी नाम से पुकार लें, पर पूरा देश अर्थव्यवस्था पर पड़ रहे दबावों और तनावों को झेल रहा है। केंद्र एवं राज्य सरकारें, उद्योगपति एवं व्यापारी, मज़दूर और किसान, सभी पर इतनी तादाद में और इस प्रकार की वित्तीय समस्याएँ टूट पड़ी हैं, जैसी कि उन्होंने पहले कभी अनुभव नहीं की थीं। सरकारें और परिवार समान रूप से घाटे के बजट का शिकार बन रहे हैं और अपनी हानि को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का नुक़सान कर रहे हैं। वित्त मंत्रीगण अपनी सारी चतुरता का इस्तेमाल करके ऋणों, छोटी बचतों, अनिवार्य जमा राशियों और अविमोचित सरकारी हुंडियों आदि के ज़रिए लोगों से पैसा निकलवा रहे हैं तो लोग भी मजबूर हैं अपने ख़र्चे पूरे करने के लिए। उनके लिए उच्च वेतनों एवं भत्तों की व्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा के लाभ, ऋण, अनुदान की व्यवस्था, बक़ाया देने या न देने का टालमटोल आदि दोनों तरफ़ से बोझ को बढ़ा रहा है।

आर्थिक संतुलन बिगड़ चुका है और सभी दूसरे का सहारा लेने की कोशिश कर रहे हैं, जबकि दूसरा ख़ुद डगमगा रहा है। पं. नेहरू के शब्दों में, ''जब भी कोई मुश्किल आती है तो लोग सरकारों की ओर भागते हैं और राज्य सरकारें मदद के लिए केंद्र की ओर भागती हैं और केंद्र किसी परराष्ट्र से सहायता माँगता है।'' यहाँ यह जोड़ दिया जाना चाहिए कि जब सरकार उसमें असफल हो जाती है तो लोगों से मदद माँगती है और यह विषम चक्र चलता रहता है। यह चक्र तोड़ना होगा। इसके लिए साहसिक क़दम उठाने होंगे।

लेकिन ऐसा साहसिक क़दम पूरी स्थिति का पूर्ण विश्लेषण किए बिना और एक स्पष्ट दृष्टि रखते हुए अपनी नीतियों और कार्यक्रमों का पुनः आकलन किए बिना उठाना मुश्किलों को बढ़ा भी सकता है। यह कहना साहसपूर्ण लग सकता है कि जिन लोगों पर जन कार्यक्रमों को बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था, उन्होंने विकास की महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ और कार्यक्रम बनाते समय गहन विचार नहीं किया। हैरानी होती है कि जिस

योजना को बनाने में इतनी मेहनत लगी हो और जिसे योजनाकर्ताओं, अर्थशास्त्रियों तथा राजनेताओं की बिना शर्त स्वीकृति मिली हो, उसका आधार इतना कमज़ोर है कि पहले साल में ही इसकी असफलता की संभावनाएँ नज़र आ रही हैं। लेकिन तथ्य इसी दुर्भाग्यपूर्ण निष्कर्ष की ओर इंगित करते हैं कि देश के तथाकथित सबसे बुद्धिमान व्यक्ति भी स्वतंत्र सोच की क्षमता खो चुके हैं या फिर उनमें सत्ताधीशों की काल्पनिक बातों के सामने अपनी राय रखने की हिम्मत नहीं है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना निराशा के भँवर में है और अब ज़्यादातर लोग इसकी काटछाँट या विस्तार या फिर स्वरूप में ही कुछ बदलाव की बातें कर रहे हैं। लेकिन क्या यह आश्चर्य नहीं है कि यही लोग इस योजना को हर आर्थिक बीमारी की रामबाण औषधि बता रहे थे। केवल योजना आयोग ही नहीं बल्कि अर्थशास्त्रियों का पूरा दल, मंत्रिमंडल, केंद्रीय विधायिका, राज्य सरकारें और राज्य विधायिकाएँ, राष्ट्रीय विकास परिषद्, कांग्रेस कार्यकारी परिषद् और कांग्रेस अधिवेशन, यहाँ तक कि समाजवाद का जामा ओढ़ने वाले अन्य राजनीतिक दल, सबने एक आवाज़ में योजना को ही एकमात्र हल बताया था। निःसंदेह कुछ लोगों ने योजना के आकार और संरचना पर विरोध प्रकट किया था, लेकिन उन्हें पैदाइशी निराशावादी या प्रतिक्रियावादी करार दिया गया और उनकी चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया गया। योजना आयोग के सदस्य श्री के.सी. नियोगी, अर्थशास्त्रियों के 21 सदस्यीय दल के श्री बी.आर. शेणॉय, 4 राजनीतिक दलों में केवल जनसंघ उन अधर्मियों में गिने जाएँगे, जिन्होंने योजना आयोग के अध्यक्ष की रामधुन को भक्तिभाव से नहीं भजा।

अब यह समझ आ चुका है कि 'अवधारणा से आरंभ' तक यह योजना (दूसरी पंचवर्षीय योजना) संसाधनों की संभावित उपलब्धता के अनुमानों पर खड़ी की गई थी, जिसका वास्तविकता से कोई रिश्ता नहीं था। जिन अनुमानों को आधार माना गया था, वो तो सिर्फ़ ख़याली पुलाव था। संसाधनों की उपलब्धता को पूरी तरह नज़रअंदाज़ करके किस प्रकार से लक्ष्यों का निर्धारण किया गया, यह लोकसभा में दूसरी योजना पर हुई हाल की बहस में प्रधानमंत्री के भाषण के इस अंश से स्पष्ट हो जाएगा—'भारत को विदेश से भारी क़ीमत पर खाद्य सामग्री ख़रीदनी पड़ती थी, जिससे विदेशी मुद्रा भंडार पर बहुत बोझ पड़ता था। जब दूसरी योजना का सूत्रपात हुआ तो यह विचार रखा गया कि 1 करोड़ टन अतिरिक्त खाद्य का उत्पादन किया जाए। लेकिन राष्ट्रीय विकास परिषद् से विमर्श करके इस मात्रा को 1.5 करोड़ टन करने का फ़ैसला लिया गया। मुझे बताया गया है कि अशोक मेहता समिति ने 1.3 करोड़ टन का लक्ष्य व्यावहारिक माना है। मुझे इस बात में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि हमें कम-से-कम 1.5 करोड़ टन से कहीं अधिक का लक्ष्य रखना चाहिए। मैं हवा में बात नहीं करता। भारत में उत्पादन दर बहुत निम्न है। दुनिया भर में लगभग सबसे कम। हमारे लिए यह शर्मनाक और अपमान की बात है कि

यह स्तर इतना निम्न है। लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि जहाँ यह स्तर इतना निम्न है, वहाँ थोड़ा सा भी प्रयास इसे बढ़ा सकता है। भारत में जहाँ भी ऐसे प्रयास हुए हैं, वहाँ यह स्तर महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ा है, 10 या 15 प्रतिशत नहीं, बल्कि 30, 40, 50 प्रतिशत 1 सामुदायिक विकास के क्षेत्र में तो यह और भी बढ़ा है।' ऐसा लगता है कि हमारी मानसिकता अभी भी एक राजनीतिक आंदोलनकारी और हवाई आदर्शवादी की है, न कि एक ऐसे व्यावहारिक योजनाकर्ता की, जो योजना के लक्ष्यों के क्रियान्वयन में जीवन की कटु वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए बेहतर किंतु वास्तविक जीवन स्तर स्थापित करने के लिए भी संकल्परत हो।

जैसे-जैसे कई स्थानों से योजना की ईमारत ढह रही है, कारणों और सुझावों के लिए समितियों और आयोगों का गठन किया जा रहा है। इस प्रकार की हर समिति और आयोग का एक विशेषज्ञ दूसरे विशेषज्ञ की आवश्यकताओं से अनभिज्ञ रहता है और सुझावों का पुलिंदा तैयार कर देता है। अकसर ये सुझाव विरोधाभासी और एक-दूसरे को काटने वाले होते हैं। कुछ नाम लिये जाएँ तो खाद्यान्न जाँच समिति, निर्यात प्रोत्साहन समिति, बलवंत राय मेहता समिति और वित्त आयोग ने काफ़ी विचार और मेहनत के बाद कुछ अच्छे एवं मूल्यवान सुझाव दिए थे, परंतु सभी सुझाव एक साथ रखते हैं तो पसंद की तसवीर नहीं बन पाती है। वास्तव में हमें एक सुपर आयोग की ज़रूरत है, जो इन सभी निकायों के सुझावों की पड़ताल देश की क्षमताओं और ज़रूरतों की रोशनी में कर सके योजना आयोग से यह ज़िम्मेदारी निभाने की उम्मीद थी, परंतु वह बुरी तरह से असफल हुआ है।

विदेशी मुद्रा भंडार संबंधी संकट के पीछे एक समन्वित नीति और संगठित प्रयासों की कमी साफ़ झलक रही है। इस मामले से जुड़ीं आधिकारिक संस्थाओं में शामिल हैं— योजना आयोग, जो समस्त लक्ष्यों का निर्धारण करता है, मंत्रिमंडल की आर्थिक समिति, जो आयात नीति तय करने की ज़िम्मेदार है, मंत्रालयों के आला अफ़सरों से गठित लाइसेंस समिति, जो निजी योजनाओं की छानबीन का उत्तरदायित्व लेती है और रिज़र्व बैंक, जो आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराता है। इस तथ्य के बावजूद कि प्रधानमंत्री दो मुख्य संस्थाओं योजना आयोग और मंत्रिमंडल की आर्थिक समिति की अध्यक्षता करते हैं और साथ ही मंत्रिमंडल के कुछ प्रमुख सदस्य आयोग के भी सदस्य हैं, महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर संयुक्त नीति का अभाव है।

क्रियान्वयन में ही नहीं, योजनाओं के निरूपण में और प्राथमिकताओं को तय करने में भी आर्थिक व राजनीतिक पहलू के मद्देनज़र किसी विस्तृत और एकीकृत दृष्टि को नहीं अपनाया गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना छोटी-बड़ी योजनाओं और परियोजनाओं के समूह से अधिक और कुछ नहीं। प्रारंभ में राज्य सरकारों द्वारा योजना आयोग के सामने 15,000 करोड़ रुपए की परियोजनाएँ प्रस्तुत की गईं। आयोग के

अनुसार यह रक़म आसमान को छूनेवाली थी, जबकि एक लाख रुपए से कम रक़म गिनने की मशीन तो वह रखता ही नहीं है। केंद्र और राज्यों के बीच काफ़ी तोल-मोल और विचार-विमर्श हुआ, फिर भी योजना आयोग आम चुनावों से पहले तक इस रक़म को 4,800 करोड़ रुपए से नीचे नहीं ला पाया। हालाँकि ये सारी काट-छाँट भी किसी एकीकृत योजना को जन्म नहीं दे पाई। यदि पूरी ईमानदारी से सभी योजनाएँ लागू कर भी दी जाएँ (फिलहाल संसाधनों और कर्मचारियों को छोड़ दें) तो भी वे आपस में टकराएँगी और भीषण अव्यवस्था पैदा हो जाएगी।

अब जबकि गंभीर रूप से हृदय को खँगालने की ज़रूरत है और पूरी योजना में परिवर्तन लाने की बात है, चाहे इसे पुनर्संरचना, नवीनीकरण या काटछाँट का नाम दे दें, अच्छा यही रहेगा कि हम योजना के प्रति अपनी पूरी मानसिकता पर पुनर्विचार करें।

हम सदा ही योजना के समाजवादी आधार के मुद्दे पर, विशेष तौर से दूसरी परियोजना के संदर्भ में, आलोचनात्मक दृष्टि रखते आए हैं। साथ ही समय-समय पर हमने लोगों और सरकार का ध्यान वर्तमान योजना की कमियों तथा योजना में भारतीय जीवन पद्धति के सिद्धांतों के समावेश पर भी आकर्षित किया है। परंतु फिलहाल तो हम अल्प संख्या में हैं। लोकतांत्रिक आदर्शों का जामा पहनने वाले लोगों के लिए यह संतोष का विषय नहीं होगा कि हाल की कुछ घटनाओं ने अल्पसंख्यक आलोचकों के विचारों को अधिक सही और व्यावहारिक सिद्ध किया है।

हो सकता है, हमारे विचारों से और भी बहुत से लोग सहमति रखते हों, परंतु अभिव्यक्त न कर पाते हों। किंतु अभी किसी पर इलज़ाम लगाने या बधाई देने का समय नहीं है। पूरा देश संकट की स्थिति में है और यदि हम एक साथ खड़े होकर सही नीतियों पर अमल नहीं करते तो हमारा भविष्य ख़तरे में पड़ जाएगा। जनता और अधिकारियों के सामने अपने विचार फिर से रखने की इच्छा से हमने पहली और दूसरी योजना के कार्यान्वयन की विवेचना का प्रयास किया है। साथ ही वर्तमान आर्थिक संकट का विश्लेषण, देश के भावी आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में कौन से सिद्धांत अपनाए जाएँ तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना में क्या सुधार किए जाएँ, इसकी भी विवेचना है।

विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं के संदर्भ में पुस्तक में दिए गए विश्लेषण और आँकड़े, मुख्यत: सरकारी प्रकाशनों या समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं से लिए गए हैं। उनके प्रति मेरा आभार।

उन सभी मित्रों के प्रति भी मेरा आभार, जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में अपना मूल्यवान सहयोग दिया। पुस्तक में दिए गए विचार निजी हैं और किसी भी प्रकार से उस संगठन से संबद्ध नहीं हैं, जिसका मैं वर्तमान में महामंत्री हूँ।

—दीनदयाल उपाध्याय

अनुक्रमणिका

भाग-एक
दो योजनाएँ

1

योजना-प्रकृति एवं क्षेत्र विस्तार

विश्व के बहुत से विकसित राष्ट्र हालाँकि किसी भी योजना के बिना ही वर्तमान आर्थिक विकास की दर प्राप्त करने में सफल रहे हैं, जिससे कुछ लोगों को यह अनुभव हो रहा है कि योजनाएँ न केवल अनावश्यक हैं, अपितु निहायत अवांछनीय भी हैं। इसके बावजूद आम सहमति इस बात पर भी है कि यदि अविकसित राष्ट्र थोड़े समय में वही हासिल करना चाहते हैं, जो विकसित देशों ने लगभग एक शताब्दी में प्राप्त किया है तो विकास को अपनी प्राकृतिक गति पर नहीं छोड़ा जा सकता। विकास की प्रक्रिया शुरू करने के लिए भी एक प्रयास करना पड़ेगा और यह प्रयास नियोजित ढंग से होना चाहिए।

यदि योजना का विकल्प ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें अनियमित, अव्यवस्थित, दिशाविहीन या ग़लत दिशा में प्रयास चल रहे हों, समस्त वर्गों में एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षपूर्ण कार्रवाइयाँ चल रही हों, व्यर्थ की प्रतियोगिता और समाज विरोधी अनियंत्रित उद्यमों का बोलबाला हो तो कौन नहीं योजनाबद्ध तरीक़ों के लिए हामी भरेगा।

दूसरी ओर यदि योजनाओं से व्यक्ति के उपभोग, उत्पादन और विनिमयन की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति और समूह बनाने की स्वतंत्रता हनन होती है, यदि इससे कड़े नियंत्रणों, राशन, सरकारी ख़रीद इत्यादि जैसी सोवियत व्यवस्था की विशेषताएँ स्थापित होती हैं तो केवल वामपंथी ही इसका समर्थन कर सकते हैं। ज़्यादातर लोग तो ऐसी नियोजित समृद्ध ग़ुलामी से बेहतर आज़ाद व्यक्ति की ग़रीबी का पक्ष लेंगे। योजना के प्रति मित्रभाव या वैरभाव इसकी संकल्पना नहीं, पर इसकी अंतर्वस्तु के कारण है।

योजना का अर्थ क्या है?—योजना को निश्चित एवं स्पष्ट तौर पर कहीं परिभाषित नहीं किया गया है। यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र के तहत कम विकसित देशों के विकास के बारे में जानकारी लेने के लिए गठित विशेषज्ञ समिति को भी इस मुश्किल का सामना

करना पड़ा। समिति अपनी रिपोर्ट में लिखती है—"योजना शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। इनमें से चार को हम स्वीकृत करते हैं : पहला, कुछ देशों में इसे केवल सार्वजनिक व्यय के लिए बनाए जा रहे कार्यक्रमों के रूप में देखा जाता है, जिनकी अवधि एक से 10 साल तक हो सकती है। दूसरा, कभी-कभी इसे निजी या सार्वजनिक उद्यमों के उत्पादन लक्ष्यों के निर्धारण के रूप में देखा जाता है, जिसमें निवेश के तौर पर मानवशक्ति, पूँजी या अन्य संसाधन तथा उत्पादन को आधार बनाया जाता है। तीसरे, संपूर्ण अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के उपलब्ध संसाधनों के मद्देनज़र लक्ष्य निर्धारण के लिए तैयार दस्तावेज़ को योजना का नाम दिया जाता है। चौथे, ऐसे साधनों के रूप में भी योजना को परिभाषित किया जाता है, जिन्हें सरकार निजी उद्यमों पर पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कड़े नियंत्रणों के रूप में इस्तेमाल करती है। योजना के अन्य अर्थ भी हैं। किसी संहिता में इसे भौगोलीय क्षेत्रीकरण या नगर नियोजन का पर्यायवाची मात्र माना गया है। इससे संबद्ध एक अतिविशिष्ट अर्थशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार योजना का अर्थ है—पूरी अर्थव्यवस्था का केंद्रीय नियंत्रण में संचालन, जहाँ उत्पादन की हर इकाई को कोटा के तहत संसाधन बाँटे जाते हैं तथा उत्पादन का निर्देशित वितरण होता है।"[1]

हालाँकि 'योजना' का स्वरूप पहली बार सोवियत रूस में उभरा और कम्युनिस्टों के शासन में पंचवर्षीय योजना के तहत इसे लगातार अपनाया गया, लेकिन आज केवल कम्युनिस्ट देशों का इस पर एकाधिकार नहीं है। बहुत से देशों में योजना का कोई न कोई स्वरूप अपनाया जाता है। यहाँ तक कि अमरीका और इंग्लैंड भी इस आधार पर योजना को अपनाने में पीछे नहीं हटे कि इसका जन्म सोवियत रूस में हुआ है। सन् 1945 में ही अमरीकी विदेश मंत्री श्री स्टेटिनियस ने अपनी पुस्तक 'इकोनॉमिक बेसिस फॉर लास्टिंग पीस' में राज्य की योजना के प्रति ज़िम्मेदारी को स्वीकृत किया था। उन्होंने लिखा—'मुझे लगता है कि सभी उपयुक्त तथ्यों को जोड़ना, उनका विश्लेषण करना और उनके आधार पर पहले से योजना बनाना सामान्य बुद्धि का तकाज़ा है। हममें से जो ज़िम्मेदार पदों पर हैं, यदि वे आगे के लिए योजना नहीं बनाते तो वे 'आपराधिक लापरवाही' के दोषी हैं।'

दिसंबर 1948 में इंग्लैंड ने 1949-53 की अवधि के लिए एक चतुर्वर्षीय योजना का सूत्रपात किया, इसमें कहा गया—"इंग्लैंड की आर्थिक योजना कुछ तथ्यों पर आधारित है—आर्थिक तथ्य यह है कि इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था ज़्यादातर अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर निर्भर रहेगी, राजनीतिक तथ्य यह है कि यह सदैव एक लोकतांत्रिक राष्ट्र रहेगा, जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता पर काफ़ी बल रहेगा तथा प्रशासनिक तथ्य यह कि आर्थिक

1. यू.एन. एक्सपर्ट कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ 63।

योजना बनानेवाली कोई भी संस्था भविष्य के आर्थिक विकास के सामान्य रुखों के प्रति अधिकतम जागरूक रहेगी।''[2]

योजना और नीति

यह स्पष्ट है कि ये विभिन्न देश 'योजना' के विभिन्न अर्थों को व्यवहार में लाए हैं। जहाँ तक कि पश्चिमी देशों का संबंध है, वहाँ योजना और नीति में फ़र्क़ करना मुश्किल है। सच तो यह है कि 'बजट' की अवधारण के साथ ही सभी सरकारों ने 'एक वर्षीय योजना' तो अपना ही ली थी। जब तक किसी देश की अर्थव्यवस्था अपने प्रारंभिक चरण में थी तब तक तो 'बजट' कर-निर्धारण और उससे संबंधित लोक संस्थाओं की स्वीकृति प्राप्त करने का एक यंत्र रहा होगा। लेकिन जीवन के आर्थिक पक्ष की बढ़ती जटिलताओं, वित्तीय क्षेत्र के विस्तार, समन्वित राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था एवं एक केंद्रीकृत बैंक के नियंत्रण में ऋण एवं मुद्रा की व्यवस्था के चलते 'बजट' लोगों के आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करने का एक शक्तिशाली यंत्र बन गया। इन देशों की अर्थव्यवस्था अधिकाधिक 'बजट संवेदी' होती जा रही है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के मूल्यों को जाने बिना ही राज्य बृहत् अर्थशास्त्र के आधार पर नीतियों का निर्माण और मूल्यांकन करता है, जिनसे लोगों के जीवन की छोटी-छोटी बातें भी प्रभावित होती हैं।

ऐसी नीतियों के निर्माण की प्रक्रिया व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए काफ़ी गुंजाइश छोड़ देती है, चाहे वो भ्रामक ही क्यों न हो। सुस्पष्ट निर्देशों के अभाव में व्यक्ति भ्रम में जीता रहता है। इसके अपने लाभ भी हैं। 'व्यक्ति जितना अपने विचारों के अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता के प्रति दृढमत होता जाता है, उतना ही उसका अपना व्यक्तित्व व भविष्य सुदृढ होता जाता है।"[3]

यदि स्वतंत्रता एक भ्रम है तो यह एक अनिवार्य एवं लाभकारी भ्रम है, जिसकी मानव को तमाम दु:ख भरी सच्चाइयों से अधिक ज़रूरत है। किंतु विश्व के विकासशील देशों में 'योजना' शब्द को इस तरह से समझा या व्यवहार में नहीं लाया जाता। इन देशों में नियोजित अर्थव्यवस्था के तहत शासन से उम्मीद रखी जाती है कि न सिर्फ़ बृहत् नीतिगत फ़ैसलों में वह समन्वय करेगा अपितु प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन की भी ज़िम्मेदारी लेगा। शासन या सरकार की यह ज़िम्मेदारी कम या अधिक मात्रा में हो सकती है। परंतु कुछ देशों में अब यह प्रवृत्ति सामान्य है कि सरकार अब व्यक्ति की आर्थिक गतिविधियों में मात्र निष्क्रिय दृष्टा या कभी-कभी केवल मार्गदर्शक की ही भूमिका नहीं निभा रही। वह केवल एक ट्रैफ़िक नियंत्रक के

---

2. यूरोपीय सहयोग।
3. विल्हेल्म कीसहार : प्रिंसिपल्स ऑफ प्राइवेट एंड पब्लिक प्लानिंग।

रूप में काम करके संतुष्ट नहीं है कि चौराहों पर खड़े होकर रास्ता दिखाती रहे या क़ानून तोड़ने पर सख़्ती करे, ताकि ट्रैफ़िक एक-दूसरे से टकरा न जाए।

सरकार अब सड़क पर कभी स्वयं कभी दूसरों के साथ भी खड़ी है और ट्रैफ़िक नियंत्रक सरकारी वाहनों को रास्ता दे रहा है, चाहे अन्य वाहन पिछड़ जाएँ। शासन की इस बढ़ती भूमिका, जिसका सैद्धांतिक औचित्य 'समाजवाद' में ढूँढ़ा जाता है, की हिमायत अकसर ऐसे शासकों द्वारा की जाती है, जो स्वयं समाजवाद के विरुद्ध हैं। प्रोफेसर डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव के अनुसार, ''यह एक हल्की-फुल्की विडंबना और युद्ध के पश्चात् अमरीका का अनुभव रहा है कि यूरोप और अविकसित देशों में रहे इसके एजेंटों ने अपनी सरकारों से उन आर्थिक क्षेत्रों में अपनी भूमिका बढ़ाने की गुज़ारिश की है, जहाँ अमरीकी हित विद्यमान हैं। यह किसी षड्यंत्र का परिणाम नहीं था कि जिसके तहत नए लेन-देन करनेवालों या समाजवादियों ने अमरीकी विदेशी कार्रवाईयों में अपनी भूमिका तलाशनी शुरू की थी, वरन् यह तो उन समाजों की प्रकृति के प्रति एक यथार्थवादी प्रतिक्रिया थी, जो अमरीकी हितों में ही अपना दीर्घकालीन आर्थिक विकास देख रही थीं।''[4]

अमरीका की तो चिंता अपने हितों की देखभाल है, न कि किसी व्यक्ति के स्वतंत्रता के क्षेत्र को बढ़ावा देना, जिसकी वे अपनी धरती पर तो ऐसी रक्षा करते हैं कि देखने वालों को ईर्ष्या हो जाए।

यह कोई आश्चर्य नहीं है कि जो लोग भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में एक सत्तावादी प्रवृत्ति, मार्क्सवाद के बीज और वामपंथ की घुसपैठ की साजिश देखते हैं, वही लोग योजना के लिए माहौल बनाने और एक सामान्य विश्वास बनाने के ज़िम्मेदार हैं कि योजना और लोकतंत्र एक साथ चल सकते हैं। अविकसित देशों के सभी विशेष सलाहकार, चाहे वे कोई भी हों, जिन्होंने वक़्त और ऊर्जा लगाकर इन समस्याओं को समझा है, चाहे अंतरराष्ट्रीय बैंक या अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ, जिनमें 'कोलंबो प्लान' भी शामिल है, 'अमेरिकन पॉइंट फोर प्रोग्राम' के अधिकारी, निजी प्रतिष्ठान सलाहकार संस्थाएँ, स्वतंत्र समाजशास्त्री, पत्रकार, अतिथि राजनेता—सभी केंद्रीकृत योजना को विकास की पहली शर्त मानते हैं।[5] वे अपनी सलाह के पीछे व्यावहारिक कारणों की दुहाई देते हैं। उनके विचार में जनता शायद इतनी ग़रीब, अज्ञानी और पुरानी रीतियों से बँधी है कि ख़ुद के विकास के लिए कुछ अधिक नहीं कर पाएगी। और अगर विकास होना है तो कुछ समय के लिए शीर्ष से ही इसका आरंभ और संचालन होना चाहिए।[6]

जनशक्ति में अविश्वास की कमी का यह उदाहरण है। वे यह भूल जाते हैं कि इस

---

4. डब्ल्यू.डब्ल्यू. रोस्तोव : द प्रोसेस ऑफ़ इकोनॉमिक ग्रोथ, पृष्ठ 257।
5. गुन्नार म्यरदल : एन इंटरनेशनल इकोनॉमी, पृष्ठ 201।
6. जैकब वाइनर : अमेरीकन एम्स एंड द प्रोग्रेस ऑफ़ अंडरडेवलप्ड कंट्रीज़, पृष्ठ 118।

विश्वास के आधार पर लोकतांत्रिक आर्थिक उदारवाद का संपूर्ण दर्शन टिका हुआ है। इस बुनियाद पर चोट करके वे सारी व्यवस्था को ढहाने से बचा नहीं सकते। यदि आर्थिक गतिविधियाँ ऊपर से ही संचालित करनी हैं, तो क्या यह 'कम-से-कम' समय तक ही होगा? सच तो यह है कि रूस के अनुभव से यही पता चलता है कि वह कम-से-कम नहीं वरन् अनंतकाल तक चलता रहेगा। ये अर्थवेत्ता अनजानेपन और अनिच्छा के चलते इस निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं कि व्यक्ति के उद्यम और पहल से प्रगति हासिल नहीं हो सकती। प्रोफेसर नॉर्मन एस. बुकैनन लिखते हैं, "उन्नीसवीं सदी के क्रम की पुनरावृत्ति नहीं होगी। निजी उद्यमियों के बदले शासन अब निम्न आय वाले क्षेत्रों में लाभ कमाने के लिए औद्योगिक विकास की गति को तय करेगा। घरेलू बचत और निवेश, श्रम प्रशिक्षण और आवाजाही, आयात और निर्यात, विदेशी उधारियाँ और घरेलू वित्त का संचालन उच्चतर आय प्राप्त करने के लिए औद्योगीकरण के रास्ते सरकार के प्रत्यक्ष हाथों द्वारा होगा।"[7]

ये सभी निष्कर्ष पश्चिमी विशेषज्ञों पर थोपे गए, क्योंकि उनका अपने द्वारा घोषित सिद्धांतों में ही पूरा विश्वास नहीं है। दूसरे, उन्नीसवीं सदी की प्रौद्योगिकी और आधुनिक आर्थिक विकास में उनका दृढ विश्वास है। उनके अनुसार आर्थिक रूप से एक विकसित राष्ट्र की रूपरेखा तो पहले से ही तय है। यह तसवीर औद्योगिक रूप से विकसित यूरोपीय देशों और अमरीका से अलग नहीं है। केवल रंग भरने हैं और केवल सरकार के पास ही इस विलक्षण कार्य को करने की सत्ता और विशाल क्षमता है।

प्रो. जॉन एच. विलियम्स बड़े कातर स्वर में ज़ोर देते हैं कि 'एक संतुलित विश्व के लिए जिस तरह के विकास के कार्यक्रम हमें चाहिए, उसके लिए योजना की ज़रूरत है, चाहे हमें यह शब्द अच्छा लगे या न लगे, क्योंकि और किसी भी तरीक़े से यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि यह चित्र कैसे पूरा हो। पहेली कैसे हल हो?'

आर्थिक कारणों को छोड़ भी दें तो अविकसित देशों की सरकारों ने केंद्रीय योजनाओं को राजनीतिक कारणों से भी अपनाया है। औपनिवेशिक शासन से आज़ादी के बाद इन देशों ने आर्थिक योजना में भी स्वतंत्रता आंदोलन की प्रवृत्ति और आत्मनिर्भर राष्ट्र के आदर्श को आत्मसात् एवं अनुसरण करने की कोशिश जारी रखी है। आर्थिक योजना को सत्ताधारी दल चुनावी घोषणा-पत्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसका क्रियान्वयन भी उसी रूप में किए जाने की बात कही गई है। यह एक दल के शासन को मज़बूत बनाने के यंत्र के रूप में रखा गया है। पूर्व औपनिवेशिक शक्तियाँ सरकार के इस अलोकतांत्रिक व्यवहार को अपने हित में उकसाती है। उन्हें एक दल की ऐसे

7. नॉर्मन एस. बुकैनन : डेलिबरेट इंडस्ट्रिलाइज़ेशन फॉर हाई इनकम्स, द इकोनॉमिक जर्नल दिसंबर, 1946, पृष्ठ 552।

सरकार के साथ काम करने में आसानी लगती है, जिनके हाथों में उन्होंने सत्ता हस्तांतरित की। उनका हित साधन तो पुराने शासन के माध्यम से ही होगा, न कि किसी नई क्रांतिकारी सत्ता के हाथों।

युद्ध के पश्चात् की आर्थिक एवं राजनीतिक अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी एक केंद्रीकृत आर्थिक योजना की अनिवार्यता खड़ी कर दी है। आज ऐसे बड़े-बड़े राष्ट्रीय प्रतिबंध लगा दिए गए हैं, जैसे पहले कभी नहीं थे। श्रम, पूँजी, प्रबंधन या उद्यमी की आवाजाही का स्तर गिर गया है, जहाँ है, वहाँ भी सरकारों ने सीमाएँ लगा दी हैं। एहतियाती और विभेदकारी नीतियाँ अपनाकर विभिन्न साधनों की मुक्त आवाजाही को बाधित करके लोगों के आपसी रिश्तों को भी सरकारें प्रभावित कर रही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर बड़े स्तर का व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उससे भी बड़े स्तर के एकीकरण की योजना और अधिक हस्तक्षेप करनेवाले शासन को जन्म दिया जा रहा है।

जो भी कारण हो, जब तक हमारी सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आता, योजना का बोलबाला दुनिया के लगभग सभी देशों में रहेगा। इसका स्वरूप और सीमाएँ क्या हों, इस विषय पर गंभीर चिंतन-मनन होना चाहिए। योजना के सामान्य स्वरूप के बदले हमारा ध्यान विशेष रूप से चयनित योजना की आवश्यकता और व्यावहारिकता पर होना चाहिए।

हमें यह भी निश्चित करना है कि आर्थिक योजना सामाजिक और राजनीतिक योजना की सहायक हो या सामाजिक राजनीतिक मूल्य भी आर्थिक मूल्यों से ही संचालित हों। क्या हम आर्थिक कल्याण के आगे अपने लोकतांत्रिक, मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों की बलि चढ़ा दें?

यह भी मानी हुई बात है कि केंद्रीकृत आर्थिक योजना और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चलते। इस विश्वास को सोवियत रूस और कम्युनिस्ट चीन ने और भी दृढ किया है। सैद्धांतिक रूप से भी यह स्पष्ट है कि ऐसी योजना, जिसके तहत किसी देश के सभी नागरिकों की आर्थिक कार्रवाइयाँ नियंत्रित की जाएँगी, व्यक्ति के लिए अन्य, स्वतंत्र फ़ैसले लेने की जगह ही नहीं छोड़ेगी।

अदृश्य शासन सर्वव्यापी नज़र आएगा और सरकारी मशीनरी, सत्तारूढ़ दल और उसके शक्तिशाली गुट के माध्यम से कार्य करेगा। हालाँकि कुछ लोगों ने इन दिनों यह भी कहना शुरू कर दिया है कि लोकतंत्र, सर्वाधिकारी योजना की उपस्थिति के साथ भी बनाए रखा जा सकता है। गुन्नार मिर्दल लिखते हैं—"एक बिंदु पर तो मैं अपने सहयोगियों के मुक़ाबले कम निराशावादी हूँ। मैं यह मानता हूँ कि भारी केंद्रीय योजना व राज्यों का नियंत्रण तथा लोकतंत्र व स्वतंत्र समाज एक-दूसरे के अनुकूल हैं। मैं यह नहीं मानता कि विकसित देश, जहाँ योजना और राज्य के निर्देशन को भारी महत्त्व दिया जाता है, ऐसे समाजों का निर्माण कर रहे हैं, जहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य और लोकतांत्रिक सहभागिता

कम है। मुझे इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता, जहाँ अत्यधिक योजना व राज्य की दखलंदाज़ी के कारण लोकतंत्र ख़त्म हुआ हो, अपितु इसके विपरीत काफ़ी उदाहरण मिल जाते हैं।'[8] ऐसी सोच रखनेवाले लोगों को लगता है कि बिना केंद्रीय योजना के लोकतंत्र ख़तरे में पड़ जाएगा और जनता का आर्थिक कल्याण नहीं होगा, जो राजनीतिक अस्थिरताओं को रोकने के लिए अनिवार्य है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, आर्थिक विकास के आधुनिक सिद्धांतों में उत्साही विश्वास के कारण ये लोग एक विषम चक्र में घूम रहे हैं। ग़रीब देशों में लोकतंत्र बचाए रखने के लिए वे आर्थिक ग़रीबी से उपजे राजनीतिक असंतोषों को नियंत्रण में रखने की वकालत करते हैं। उनका मत है कि इन देशों में ग़रीबी मिटाने का एकमात्र रास्ता पश्चिम की तर्ज़ का औद्योगीकरण है। इसकी वजह यह है कि उन्हें दूसरा कोई रास्ता न तो पता है, न सूझ सकता है। उनकी तर्ज़ का औद्योगीकरण राज्य की पहल और निर्देशन के बग़ैर प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस कारण राज्य को योजना की ज़िम्मेदारी लेनी होगी।[9] योजना लोगों में सतत सहयोग, ज़रूरी संसाधनों, पर्याप्त बचतों और निवेश के बिना सफल नहीं हो सकती। इसके लिए राज्य के पास उपभोग, उत्पादन और वितरण की संपूर्ण सत्ता के साथ इसका पूर्णाधिकार भी होना चाहिए कि वह ऐसा वातावरण तैयार कर पाए, जहाँ लोग स्वेच्छा से उपभोग छोड़ सकें और राज्य द्वारा दी गई ज़िम्मेदारियाँ निभा सकें। इस सब से तो व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र बाधित ही होता है। तो लोकतंत्र बचाने के लिए ऐसा रास्ता बताया जा रहा है, जहाँ लोकतंत्र का गला घोंटा जा रहा है।

लोकतंत्र केंद्रीय योजना और राज्य निर्देशन के लिए कितना तैयार है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि लोकतंत्र की जड़ें किसी राष्ट्र में कितनी गहरी हैं। विकसित देशों में जहाँ लोकतंत्र अपनी जड़ें जमा चुका है, राज्य लोगों के लोकतांत्रिक जीवन को प्रभावित किए बग़ैर काफ़ी कुछ कर सकता है। परंतु नए देशों में राज्य की अधिक दखलंदाज़ी लोकतंत्र को सिर उठाते ही कुचल देने के समान है।

पश्चिमी सिद्धांतवेत्ता लोकतंत्र की हिमायत के बावजूद स्पष्ट तौर पर समस्या का सही समाधान देने में असफल हुए हैं, चाहे वे मार्क्सवादी हों या अन्य दर्शन को मानने वाले। भारत में योजना के परिप्रेक्ष्य में यह समाधान क्या हो सकता है, इसकी चर्चा आगे की जाएगी।

---

8. गुन्नार म्यरदल : एन इंटरनेशनल इकोनॉमी, पृष्ठ 211।
9. अविकसित देशों का आर्थिक विकास उनकी योजना बनाने, निवेश करने और उत्पादन की क्षमता पर निर्भर करता है—गुन्नार म्यरदल, उपरोक्त, पृष्ठ 210।

2

भारत में योजना की ऐतिहासिक समीक्षा

हालाँकि पहली पंचवर्षीय योजना 8 दिसंबर, 1952 को आधिकारिक तौर पर संसद् में प्रस्तुत की गई, तथापि योजना के प्रयास सन् 1933 से ही चल रहे थे, जब श्री एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक 'प्लान्ड इकोनॉमी फॉर इंडिया' प्रकाशित की। एक सफल प्रशासक और इंजीनियर श्री विश्वेश्वरैया का मानना था कि समन्वित प्रयासों के द्वारा देश की राष्ट्रीय आय दस वर्षों के भीतर दुगुनी की जा सकती है। विश्व आर्थिक मंदी के चंगुल में जकड़ा हुआ था और अर्थशास्त्री तथा प्रशासक पूँजीवादी व्यवस्था एवं उदारवाद की असफलता को समझ रहे थे। जबकि सोवियत रूस ने पंचवर्षीय योजना को पहले ही अपना लिया था, लेकिन वहाँ भी ऐसे परिवर्तन नज़र नहीं आ रहे थे, जिससे बाक़ी लोग आकर्षित हो सकें। अपने यहाँ और बाक़ी देशों में भी आर्थिक स्थितियों ने अधिकारियों को इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया कि राज्य को अब हस्तक्षेप करना पड़ेगा। राष्ट्रपति रुज़वेल्ट एक नए समझौते को लेकर सामने आए। इसके पीछे यही विचार था कि एक ऐसी वृहत् आर्थिक योजना बनाई जाए जिससे उत्पादन की सुविधाओं का बेहतर संचालन एवं पुनर्वितरण हो तथा क्रयशक्ति का विस्तृत आधार तैयार किया जाए। आर्थिक मंदी की जड़ लोगों की गिरती क्रयशक्ति थी। इसलिए अर्थशास्त्रियों का एक लक्ष्य इसको उठाना था। ब्रिटेन के जे.एम. केयन्स ने इसी समय में अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उन्होंने दिखाया कि ''सरकार द्वारा सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में सोची-समझी राजकोषीय एवं वित्तीय नीतियों के परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं, मकानों और सार्वजनिक सुविधाओं की माँग बढ़ाई जा सकती है और निवेश की क्षमता भी कुछ हद तक बढ़ सकती है।''[1]

श्री विश्वेश्वरैया का यह भी मानना था कि विभिन्न देशों की उत्पादक शक्तियों

---

1. भब्तोश दत्ता : द इकोनॉमिक्स ऑफ़ इंडस्ट्रिलाइज़ेशन, पृष्ठ 145।

और वितरण की प्रवृत्तियों में कुछ फेरबदल करने से न केवल राष्ट्रीय अपितु विश्व अर्थव्यवस्था में सुधार लाया जा सकता है। उन्होंने लिखा, 'वर्तमान में औद्योगिक देशों की उत्पादक शक्ति विश्व की उपभोक्ता शक्ति से पचास प्रतिशत अधिक है। यदि इस उत्पादन और क्रयशक्ति के बीच संतुलन बिठाने का कोई तरीक़ा निकाला जाए तो एक औसत नागरिक के जीवन में बहुत क्रांतिकारी सुधार लाया जा सकता है।' उनके अनुसार ऐसा न्यायोचित संतुलन बनाने के लिए संसाधनों का अपव्यय रोके जाने के प्रयास होने चाहिए। उन्होंने लिखा, 'यहाँ तक कि अमरीका में 100 में से 60 उद्यम ही एक साल के अंत तक टिके रहते हैं। इसलिए भारत जैसे अविकसित देश में इन उद्यमों के बंद होने की दर तो और भी अधिक ही रहेगी, यदि इनका प्रसार अनियोजित एवं लापरवाह ढंग से होगा। भारत जैसा ग़रीब देश अशुद्ध गणना और सनकपूर्ण उद्यमिता की मौज-मस्ती वहन नहीं कर सकता।'

श्री विश्वेश्वरैया यह भी जानते थे कि योजना अपनाने से हम लोकतांत्रिक परंपरा से दूर चले जाएँगे, इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि 'भारतीय योजना को वामपंथी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए। इसका आधार बिना व्यक्तिगत पहल को बाधित किए सामूहिक प्रयासों को प्रोत्साहन देना होना चाहिए।'

अपनी योजना के स्वरूप को बनाते समय श्री विश्वेश्वरैया ने सही आँकड़ों की कमी (जो स्थिति आज भी बनी हुई है) को गंभीरता से अनुभव किया। उन्होंने लिखा, 'आर्थिक विकास मज़बूत नींव पर तभी खड़ा हो सकता है, जब व्यक्ति अनुमानों के बारे में तथ्यों पर आधारित प्रयास करे। उन्होंने तथ्यों पर आँकड़ों को संकलित कर काम करने का प्रयास किया। लेकिन उनके कार्यों की महत्ता इसलिए नहीं है कि उन्होंने निगमनात्मक तरीक़े अपनाकर निष्कर्ष निकाले, बल्कि इसमें है कि एक व्यावहारिक योजक के तौर पर अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने अपनी सहज प्रज्ञा से सुझाव प्रस्तुत किए। लेकिन योजना की अनिवार्यता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के अलावा श्री विश्वेश्वरैया के सुझावों को कोई व्यावहारिक स्वरूप नहीं दिया जा सका। तब विदेशी सरकार थी और उसे अपने पर निर्भर लोगों के हितों के बजाय केंद्रीय सरकार के हितों की चिंता थी। परंतु जब 1937 में कुछ प्रांतों में कांग्रेस की सरकार गठित हुई तो यह संभावना बन गई कि सीमित रूप में ही लेकिन राष्ट्र निर्माण की दिशा में हमारे प्रयास लग सकते हैं और इसके लिए एक ठोस प्रयास की आवश्यकता गंभीर रूप से महसूस की गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाष चंद्र बोस की अध्यक्षता में अक्तूबर 1938 को उद्योग मंत्रियों की बैठक बुलाई गई। इसमें एक प्रस्ताव पारित हुआ, जिसमें कहा गया, 'ग़रीबी, बेरोज़गारी, देश की रक्षा और व्यापक आर्थिक विकास की समस्या औद्योगीकरण के बिना नहीं सुलझाई जा सकती।

औद्योगीकरण की दिशा में क़दम बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय योजना की एक विस्तृत व्यवस्था बनानी पड़ेगी, इसी के अनुरूप एक राष्ट्रीय योजना समिति पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित की गई। समिति का काम युद्ध तथा देश में व्याप्त अन्य स्थितियों के कारण बाधित हुआ और 1950 में योजना आयोग के गठन के बाद राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष पं. जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय योजना आयोग के अध्यक्ष पं. जवाहर लाल नेहरू को अपनी रिपोर्ट पेश की। इन रिपोर्टों की अहमियत केवल इस व्याख्या में है कि कांग्रेस के नेताओं का आर्थिक समस्याओं के प्रति रुख़ सत्ता में आने के बाद कैसे बदला है।

राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष ने एक ज्ञापन में ज़ोर दिया कि 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता, योजना के तमाम पहलुओं के क्रियान्वयन के लिए उठाए जानेवाले अनिवार्य क़दमों के लिए एक आवश्यक प्राथमिकता है। किसी और आधार योजना की रूपरेखा तैयार करना संभव नहीं। बहुत से प्रतिबंध और बाधाएँ, बहुत सी सावधानियाँ और संदेह हमारे योजना और विकास के पथ को रोक रहे हैं।' स्वतंत्रता के बाद भी इन बाधाओं का मूल नहीं बदला है। केवल स्वरूप में कुछ ठहराव आया है।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान भारत की अंग्रेज़ी सत्ता को भी लोगों के कल्याण एवं देश के विकास के लिए चिंता दिखाने की आवश्यकता अनुभव हुई। इसलिए उन्होंने 1941 में कॉमर्स मेंबर की अध्यक्षता में योजना के लिए एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त की। 1943 में इस समिति को बिना किसी कार्य को अंजाम दिए ही हटाकर कैबिनेट की पुनर्रचना समिति का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष वायसराय थे। यह समिति भी अधिक दिन नहीं चली। एक साल बाद ही इसके बदले योजना एवं विकास का एक पूरा विभाग ही अर्दशिर दलाई की अध्यक्षता में गठित किया गया। इस बीच पुनर्रचना समिति ने अपनी दो रिपोर्टों में भारत की योजना के लक्ष्य निर्धारित कर दिए थे। एक, लोगों का जीवन स्तर उठाना और दूसरा, सबको रोज़गार देना।

योजना और विकास विभाग की मुख्य चिंता सेना की नौकरी से मुक्त सिपाहियों के योजनाबद्ध विकास से संबंधित थी। सरकार जानती थी कि विश्व भर में महान् परिवर्तनों की संभावना युद्ध उपरांत परिस्थितियों में जन्म लेगी, जब लाखों सिपाही व अन्य कर्मचारी अपनी नौकरी गँवा बैठेंगे। उसे यह भी अनुभव हुआ कि युद्ध संबंधी उत्पादनों में रोक के बाद आर्थिक मंदी का दौर आएगा, जिससे लोगों की समस्याएँ बढ़ जाएँगी। यह चिंता भी थी कि भारत के खातों में ज़मा स्टर्लिंग भंडार योजनाबद्ध रूप में प्रयोग किया जाए, ताकि ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था पर भार न पड़े। भारत में ब्रिटेन के सामान को बेचने के लिए फिर से बाज़ार तैयार करना था और स्टर्लिंग क्रेडिट को धीरे-धीरे बाहर लाना था, क्योंकि ब्रिटेन के उद्योग अब युद्ध संबंधी उत्पाद तैयार न

करके शांति काल की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने लगे।[2]

केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों द्वारा कई योजनाएँ तैयार की गईं। लेकिन राजनीतिक हालात ने नई करवट ली और ब्रिटिश सरकार का जाना तय हो गया, तो योजना एवं विकास विभाग भंग कर दिया गया और योजनाओं को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

सितंबर 1946 में पं. जवाहरलाल नेहरू अंतरिम मंत्रिमंडल के उपाध्यक्ष बन गए और सत्ता हस्तांतरण की तैयारियाँ शुरू हो गईं। एक द्रष्टा के तौर पर और योजना के विचार से रँगे हुए पंडित नेहरू ने इस विषय पर श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में एक परामर्शदाता योजना बोर्ड का गठन करके सरकारी कार्रवाइयाँ पुनः शुरू कर दीं। बोर्ड का काम अब तक हुए सभी कार्यों का पुनर्निरीक्षण करना और समन्वित योजना के लिए सिफ़ारिशें तैयार करना था। बोर्ड को कोई योजना तैयार नहीं करनी थी, अब तो योजना के लिए सिद्धांत और मूल अभिधारणाएँ बनानी थीं। लेकिन बोर्ड ने दिसंबर 1946 में एक रिपोर्ट दर्ज की, जिसमें कहा गया था कि 'योजना के सिद्धांतों पर वक़्त लगाने के बजाय एक योजना तैयार करना और उस पर कार्रवाई करना अच्छा रहेगा।' लेकिन साथ ही बोर्ड का यह भी मानना था कि भारत अभी योजना के सफलतापूर्वक और प्रभावी कार्यान्वयन के लिए साधन संपन्न नहीं है। रिपोर्ट में कहा गया कि 'इस सत्य को ईमानदारी से समझा जाना चाहिए कि हमारे पास पर्याप्त विस्तृत ज्ञान और सांख्यिकीय (आँकड़ों की) जानकारी या आर्थिक गतिविधियों पर विस्तृत नियंत्रण नहीं है, जिसके कारण हम इस प्रकार की योजनाएँ बना या लागू नहीं कर सकते जिनके सामूहिक व संचयी प्रभाव से प्रति व्यक्ति आय में पूर्व निर्धारित वृद्धि को प्राप्त किया जा सके। प्रांतों में बने लोकप्रिय मंत्रालय अपना अस्तित्व बनाने के लिए कुछ विशिष्ट करना चाहते थे। इन मंत्रालयों को ऐसे लोग चला रहे थे, जो लगातार ब्रिटिश सरकार की इस आधार पर आलोचना करते आए थे कि उसने लोगों के आर्थिक विकास को नज़रंदाज़ किया है। अब वे सत्ता में आए थे तो उनका कर्तव्य बनता था कि लोगों की सरकार के रूप में कार्य करे।

सत्ता हस्तांतरण शांतिपूर्ण चला परंतु अपने साथ विभाजन की अकथनीय वेदनाएँ लेकर आया। लाखों लोग बेघर हो गए, आज़ादी की चमक ग़ायब थी। विभाजन का डर आज़ादी की ख़ुशी से बढ़कर था। लोगों को इस हताशा से मुक्ति दिलाने के लिए

---

2. और भी देखें—गुन्नार मिर्दल : पूर्व औपनिवेशिक शक्तियों का फ़ायदा उपनिवेशों की आर्थिक स्वतंत्रता और औद्योगिक विविधता में नहीं वरन् उन्हें अपने घरेलू बाज़ारों के विस्तार के रूप में बनाए रखने और अपनी बस्तियों के हित के लिए प्रयोग करने में था। उनका राजनीतिक लक्ष्य मुख्य रूप से शांति, स्थायित्व बनाए रखना और सामाजिक अव्यवस्था को रोकना था। युद्धोपरांत भारत की तथाकथित पुनर्रचना की योजना के लिए ब्रिटिश सरकार जिस पारंपरिक औपनिवेशिक नीति पर चली, उसके ये ही दो आधार थे।

कुछ तो करना था। अब सरकारों को युद्ध उपरांत विकास योजनाओं का सहारा मिल गया। ये लोकप्रिय मंत्रालय जिस सचिवालय पर निर्भर कर रहे थे, वे एकदम से तो नई योजनाएँ नहीं ला सकते थे, चाहे कितनी ही इच्छाशक्ति या योग्यता वे लगा देते, तो पुरानी योजनाओं को अलमारियों से निकालकर विकासशील भारत को साकार करने के लिए 'पुनर्रचना की योजनाओं' के रूप में प्रस्तुत किया गया।

जैसा कि हमने पहले देखा, ये योजनाएँ कभी भी विस्तार से नहीं बनाई गई थीं। इधर-उधर बिखरी हुई ये योजनाएँ अपरिपक्व और एक-दूसरे से कटी हुई थीं। इनके कार्यान्वयन की कोई पद्धति भी सोची नहीं गई थी। देश ने जो नौकरशाही पाई थी, वह इस कार्य को करने में सक्षम नहीं थी। लेकिन योजनाओं को लागू किया जाने लगा और कुछ ही सालों में उनमें से ज़्यादातर की असफलता सामने आ गई। पैसा ख़र्च हो रहा था, परंतु परिणाम नहीं दिख रहे थे। बहुत सी नदी-घाटी परियोजनाओं पर संवैधानिक अड़चनों के कारण काम बढ़ नहीं पाया। नदियाँ और भू-भाग अलग-अलग प्रांतों की सीमाओं के दायरे में नहीं बँधे थे। और ऐसी कोई संस्था नहीं थी, जो विभिन्न सरकारों या एक सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की गतिविधियों में समन्वय ला सके। चारों ओर गड़बड़, अपव्यय और विफल प्रयास थे। कुछ योजनाओं को ख़ारिज कर देना पड़ा, कुछ योजनाएँ जैसा सोचा गया था, उस रूप में या उस गति से आगे नहीं बढ़ पाईं, तो कुछ के लिए भौतिक एवं वित्तीय साधनों की कमी हो गई। ऐसी परिस्थिति में स्पष्ट हो गया था कि देश के संसाधनों का विकास और प्रयोग संतुलित एवं समन्वित रूप से किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप मार्च, 1950 में भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना का निश्चय किया।

सन् 1944-46 के दौरान कई ग़ैर-सरकारी योजनाएँ भी प्रकाशित हुईं। यह सिलसिला 1944 में उस योजना के प्रकाशन से शुरू हुआ, जिसे अब 'बॉम्बे प्लान' के नाम से जाना जाता है, जिसके पीछे देश के दस उद्योगपतियों की भूमिका थी। इसके बाद 'जन योजना' और 'गांधी योजना' आई। इनके विस्तार में जाने की हमें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इनका भी प्रभाव लोगों की या सरकार की गतिविधियों पर नहीं पड़ा। न ही इन योजनाओं से देश के आर्थिक विकास के विषय में कोई अभिधारणा ही बन पाई थी। इनमें केवल मनमाने लक्ष्य और अपनी-अपनी अक़्ल लगाकर कुछ पूर्वानुमान निर्धारित कर लिए गए थे। यह सही है कि योजना आयोग के मुक़ाबले इनके कुछ निष्कर्ष व्यावहारिक रूप भी ले सकते थे, परंतु देश के विकास की कोई समन्वित और विस्तृत तसवीर इनमें दिखाई नहीं दे रही थी। पहली पंचवर्षीय योजना के निर्माण में इनका कोई योगदान भी नहीं रहा। एक लेखक ने इन्हें 'आँकड़ों की गुत्थी' की संज्ञा दी है।

हम केवल योजना आयोग द्वारा तैयार की गई पंचवर्षीय योजनाओं का विचार

करेंगे। पृष्ठभूमि काफ़ी विस्तार में दी जा चुकी है, क्योंकि योजना आयोग की गतिविधियों पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। हम यह कह सकते हैं कि योजना आयोग एक ऐसी विरासत लेकर जन्मा, जिसने इसके भविष्य की पूरी रूपरेखा तय की। यह रूपरेखा क्या थी, उसकी चर्चा हम आगे के पृष्ठों में करेंगे।

3

योजना आयोग

योजना आयोग का गठन सन् 1949 में किया गया। भारत सरकार के मार्च 1950 प्रस्ताव के तहत इसके कार्यों को परिभाषित किया गया। प्रस्ताव में कहा गया :

(1) योजना आयोग देश भर के कच्चे माल, पूँजी और मानव संसाधन का, जिसमें तकनीकी कौशल भी शामिल है, एक अनुमान लगाएगा और पता लगाएगा कि देश की ज़रूरतों के मुक़ाबले जहाँ-जहाँ इनकी कमी है, किन संभव तरीक़ों से उसे दूर किया जा सकता है;

(2) देश के संसाधनों का संतुलित और अधिकतम उपयोग करने के लिए एक योजना बनाए;

(3) प्राथमिकताओं के निर्धारण के अनुसार योजना के चरणों को परिभाषित करे तथा प्रत्येक चरण को पूरा करने के लिए संसाधनों का आवंटन प्रस्तावित करे;

(4) आर्थिक विकास में बाधक कारणों को इंगित करे तथा वर्तमान सामाजिक और आर्थिक हालात के मद्देनज़र ऐसी परिस्थितियों को निर्धारित करे, जो योजना के सफल नियोजन के लिए लागू की जा सकें;

(5) योजना के हर पहलू का प्रत्येक चरण में सफलता से क्रियान्वयन के लिए अनिवार्य ढाँचे का रूप तय करे;

(6) योजना के हर चरण की सफलता का समय-समय पर मूल्यांकन करे और उस पर आधारित अनिवार्य परिवर्तन लाए;

(7) अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए या मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों, वर्तमान नीतियों और विकास के कार्यक्रमों के मद्देनज़र या राज्य एवं केंद्र सरकारों द्वारा सुझाव के लिए प्रेषित विशेष समस्याओं पर अंतरिम या अतिरिक्त सिफ़ारिशें दे।

आयोग में अध्यक्ष पंडित नेहरू तथा पाँच सदस्य थे। आयोग योजना का काम शुरू कर पाए, इससे पहले ही 'कोलंबो प्लान कंसल्टेटिव कमेटी' ने इसे छह वर्षीय 'प्लान फॉर कॉपरेटिव डेवलपमेंट ऑफ साउथ एंड साउथ ईस्ट एशिया,1950' तैयार करने के लिए कहा।

दक्षिण एवं दक्षिण एशियाई राष्ट्रमंडल देशों में राजनीतिक उठा-पटक का बढ़ता ख़तरा भाँपते हुए ब्रिटेन ने अन्य राष्ट्रमंडल देशों के साथ मिलकर इस संयुक्त योजना का विचार रखा। 1950 में कोलंबो में आयोजित विदेश मंत्रियों के सम्मेलन में एक छह वर्षीय योजना स्वीकृत हुई।

योजना के लिए 1951-57 का छह वर्षीय काल लिया गया था। इसमें उत्पादन के लक्ष्य एवं प्रस्तावित व्यय का ब्योरा इस प्रकार था—

(क) 1957 के लक्ष्य :

	अतिरिक्त इकाइयाँ	प्रतिशत वृद्धि
कृषि क्षेत्र (दस लाख एकड़)	13	3.5
सिंचाई क्षेत्र (दस लाख एकड़)	13	17
खाद्यान्न (दस लाख टन)	6	10
बिजली (दस लाख किलोवाट)	1.1	67

(ख) कुल अनुमानित व्यय :

देश का नाम	अतिरिक्त इकाइयाँ £	प्रतिशत वृद्धि
भारत	1, 739 मिलियम	75
पाकिस्तान	280 "	15
श्रीलंका	104 "	5
मलायाज़ बोरनियो	104 "	5

योजना में पूर्ति के रूप में प्रस्तावित मदद—

(1) सिविल, मेकैनिकल, इलेक्ट्रिकल तकनीशियनों और हाइड्रोलिक इंजीनियरों, कृषि विज्ञानियों, पर्यावरणविदों एवं कृषकों की पूर्ति।

(2) इसके लिए 8.3 करोड़ पाउंड्स की राशि राष्ट्रमंडल देशों से और 24.5 करोड़ पाउंड्स की राशि स्टर्लिंग भंडार से आनी थी। विभिन्न देशों को आंतरिक तौर पर 78.4 करोड़ पाउंड्स की राशि देनी थी; 2.2 करोड़ की राशि आईबीपीडी तथा बाक़ी अमरीका एवं निजी निवेशकों से आना था।

भारत के लिए प्रस्तावित राशि थी 1,840 करोड़ रुपए, जिसमें से 1,030 करोड़ रुपए आंतरिक एवं 810 करोड़ रुपए बाहरी स्रोतों से जमा होना था। योजना महत्त्वाकांक्षी न होकर केवल सद्भाव एवं एकता का प्रतीक थी। भारत के लिए इस योजना का महत्त्व दो कारणों से था :

(1) इसे पंचवर्षीय योजना में बदल दिया गया। इसलिए हमारे विकास के कार्य में प्राथमिकताएँ भी इस योजना पर आधारित थीं,

(2) स्टर्लिंग भंडार से पैसा निकाले जाने की सीमा तय करके इसने हमारे औद्योगिक विकास को विदेशी आयोग पर निर्भर कर दिया।

कोलंबो योजना के तहत चल रहे भारत के विकास के कार्यक्रम में अब संशोधन कर दिया गया है। व्यय का आकलन 1,840 करोड़ से बढ़ाकर 2,300 करोड़ कर दिया गया है। 50 करोड़ की अतिरिक्त राशि नदी घाटी परियोजनाओं के लिए रखी गई है। हालाँकि योजना के तहत विदेशी सहायता की राशि बढ़ाई नहीं गई है।

पहली योजना की तैयारी

प्रथम आम चुनाव से बिल्कुल पहले, जुलाई 1951 में योजना आयोग ने पाँच वर्ष के लिए एक प्रारूपी योजना प्रकाशित की। इसके लिए एकदम ग़लत समय चुना गया था। चुनाव की सरगर्मियों में प्रारूप पर वस्तुनिष्ठ चर्चा संभव न हो पाई। योजना का विचार और प्रस्तावित योजना दलीय मुद्दा बन गए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने चुनावी घोषणा-पत्र में योजना आयोग के कार्यों का स्वागत किया और देश के विकास के लिए योजनाबद्ध विकास के तरीक़ों को अनिवार्य बताते हुए इन्हें जारी रखने को कहा। घोषणा-पत्र में आर्थिक विकास संबंधी मुख्य धाराओं की रूपरेखा भी दी गई, जिन्हें बाद में प्रारूपी योजना में शामिल किया गया। योजना एकपक्षीय रूप में चलने के कारण अन्य दलों को किसी भी स्तर पर विश्वास में नहीं लिया गया। परिणामतः या तो वे योजना के प्रति उदासीन रहे या आलोचक बन गए। राष्ट्रीय योजना बनने की बजाय यह दलीय योजना बन गई।

नए मंत्रालयों के गठन के बाद ही 9 नवंबर, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद्, जिसमें योजना आयोग के सदस्य शामिल थे, केंद्रीय मंत्रिमंडल के मंत्रियों और राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया, 'पहली पंचवर्षीय योजना के मद्देनज़र

राष्ट्रीय विकास परिषद्, योजना में निहित उद्देश्यों, प्राथमिकताओं और कार्यक्रमों के प्रति अपनी आम स्वीकृति और अनुमोदन दर्ज करती है तथा भारतीय संघ और सभी राज्य सरकारों के इस साझा संकल्प को दृढ करती है कि केंद्रीय सरकार, आपसी व लोगों के सहयोग से योजना को दृढ निश्चय के साथ लक्ष्य तक पहुँचाएगी, साथ ही भारत के सभी नागरिकों को राष्ट्रीय योजना की सफलता के लिए कार्य करने का आह्वान भी करती है।'

भारत सरकार के सम्मुख यह प्रस्ताव 7 दिसंबर, 1952 को तथा संसद् के सम्मुख 8 दिसंबर, 1952 को प्रस्तुत किया गया। 15 दिसंबर तथा बाद के कुछ दिन संसद् में इस पर बहस चली और इसे स्वीकृत कर लिया गया। सभी तिथियों का देना ज़रूरी है, क्योंकि यह दरशाता है कि योजना के बारे में लोकतांत्रिक विधियों में कैसा असंतुलन रखा गया, जो कि अगले पाँच वर्षों के लिए लोगों का भाग्य तय करनेवाली थीं। क़रीब-क़रीब यही प्रक्रिया दूसरी पंचवर्षीय योजना को तैयार करने और स्वीकार करने में अपनाई गई।

संसद् के सामने पूर्व निर्धारित परिस्थिति है और इस महान् योजना के गुणों और कमियों पर लच्छेदार भाषणों के अलावा वह कुछ और कर नहीं सकती। यह जानना भी दिलचस्प रहेगा कि पहली पंचवर्षीय योजना अप्रैल 1951 से ही शुरू हो गई थी, जबकि उसका प्रारूप भी तैयार नहीं हुआ था। पहली पंचवर्षीय योजना मार्च 1956 में समाप्त हुई और 1 अप्रैल, 1956 से दूसरी पंचवर्षीय योजना का काल प्रारंभ हो गया। लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् में 2 मई, 1956 को विचार के लिए रखा गया और स्वीकृत किया गया था। मई के आख़िर में यह संसद् में रखा गया और इस पर चर्चा हुई। यद्यपि योजना को केंद्र तथा राज्य सरकार की सभी वित्तीय और राजकोषीय नीतियों का एकमात्र मार्गदर्शक नियत किया गया है, तथापि इसका कोई संवैधानिक आधार नहीं है।

योजना आयोग की कोई कार्यकारी शक्ति नहीं है, न ही किसी के प्रति यह उत्तरदायी है। इसके द्वारा बस निर्णय लिये जाते हैं और योजनाएँ बनाई जाती हैं। केंद्रीय सरकार, संसद्, राज्य सरकारें और विधायिकाएँ इन पर बाद में चर्चा करती हैं और इन्हें लागू करने के साधन उपलब्ध कराती हैं। यह सही है कि योजना में सम्मिलित परियोजनाएँ विभिन्न सरकारों द्वारा ही भेजी जाती हैं और योजना आयोग केवल उनमें समन्वय और प्राथमिकताएँ नियत करता है। परंतु योजनाओं का विस्तृत क्षेत्र फैलने के कारण और आम लोगों पर उसका भार पड़ने के कारण, यह आवश्यक है कि लोगों के परिश्रम और बलिदान से पहले उनकी स्वीकृति भी ली जाए। पंचवर्षीय योजनाओं के नाम पर बजट प्रस्तुत होते हैं, योजना के समर्थन में क़ानून लागू किए जाते हैं, लेकिन योजनाओं के

पीछे कोई क़ानूनी स्वीकृति नहीं होती। संसद् में कभी-कभार की बहस और राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों के अलावा इन योजनाओं के पीछे कोई संवैधानिक प्रक्रिया काम नहीं करती। योजना की प्रकृति अखिल भारतीय होने के कारण हमारा संघात्मक ढाँचा इसके उचित निर्माण एवं सफलतापूर्ण कार्यान्वयन के लिए अनुकूल नहीं है।

अभी तक केंद्रीय सरकार इसपर कुछ नियंत्रण कर पा रही थी। लेकिन दूसरे वित्तीय आयोग की सिफ़ारिशों के मद्देनज़र राज्य बेहतर वित्तीय स्थिति में दिखाई दे रहे हैं। केंद्र एवं राज्यों में विभिन्न दलों के सत्ता में होने के कारण प्रतिकूल दावों की स्थिति पैदा हो सकती है।

योजना आयोग के संविधान में ऐसा कुछ नहीं है, जो विरोध प्रकट करनेवाली राज्य सरकार को निर्धारित पथ पर लाने के लिए बाध्य कर सके।

आर्थिक एवं सामाजिक योजना को भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत समवर्ती सूची में रखा गया है। इससे यह साझा ज़िम्मेदारी का रूप ले लेती है और जब तक इसे क़ानूनी जामा नहीं पहनाया जाता, केंद्र सरकार का कोई निर्णय राज्य सरकार पर बाध्य नहीं होगा। भारत की एकता और एकीकृत योजना के हित में इसको केंद्रीय सूची में ले जाना चाहिए। यह भी अनिवार्य है कि योजना आयोग संसद् के प्रति उत्तरदायी हो और योजना का निर्माण पूर्व सम्मति से ही हो।

भाग-दो

पहली पंचवर्षीय योजना

4

विधि और लक्ष्य

पहली एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना 600 से अधिक पृष्ठों वाले बड़े-बड़े दस्तावेज़ हैं। बड़े-बड़े खंडों के साथ इसमें सहायक दस्तावेज़ हैं, जिनमें केंद्र एवं राज्य सरकारों की विकास संबंधी योजनाएँ और औद्योगिक विकास एवं समाज सेवाओं के कई कार्यक्रम भी शामिल हैं। यह भारी-भरकम साहित्य आयोग के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए काफ़ी है, लेकिन यह भावना समझ एवं प्रशंसा से नहीं वरन् रोब के कारण पैदा होती है। आम आदमी के लिए तो यह फूस से अनाज साफ़ करने के बराबर है।

योजना की विषय-सामग्री को तीन खंडों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) योजना का आम स्वरूप एवं योजना विशेष के लिए अपनाई गई विधि;
(2) प्राथमिकताओं के क्रम के अनुसार विकास के कार्यक्रम, निर्धारित एवं प्रस्तावित व्यय तथा वित्तीय संसाधनों का अनुमान;
(3) विभिन्न सरकारों द्वारा अपनाई जानेवाली नीति संबंधी कई पवित्र प्रस्ताव, सुझाव एवं सिफ़ारिशें, जिनकी प्रकृति इतरोक्ति जैसी है, जो सत्ताधारी दल के चुनावी घोषणा-पत्र का काम करती हैं, लेकिन सरकारी नीतियों को इंगित नहीं करतीं।

योजना आयोग द्वारा योजना के लिए बताई गई विधि को हम 'हेवॉड डोमार विधि' के नाम से जानते हैं। इस विधि के अनुसार लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं तथा अनुमानित पूँजी गुणांक के आधार पर निवेश की दर तक पहुँचने के लिए संसाधनों को तलाशा जाता है और नीतियाँ एवं कार्यक्रम तय किए जाते हैं। यह विधि कितनी पूर्ण है एवं भारत के लिए कितनी अनुकूल है, इस प्रश्न का उत्तर ही इन दोनों योजनाओं की उपयुक्तता तय करेगा। विषय पर विचार से पहले चलिए इन दोनों योजनाओं के संदर्भ में योजना आयोग द्वारा रखे गए लक्ष्यों और अनुमानों पर एक नज़र डाल लें।

'पहली पंचवर्षीय योजना का शुरुआती अनुच्छेद कहता है, 'भारत में योजना का केंद्रीय लक्ष्य लोगों के जीवन स्तर को उठाना और उनके सम्मुख अधिक संपन्न एवं विभिन्न अवसरों से युक्त जीवन उपलब्ध कराना है। अतएव योजना दोनों स्तरों पर कार्य करे। एक, समुदायों को उपलब्ध संसाधनों, मानव एवं कच्चे माल का इस प्रकार से प्रभावकारी उपयोग करे जिससे कि उनसे वस्तुओं एवं सेवाओं का अधिकतम उत्पादन किया जा सके। दूसरे, आय, संपत्ति एवं अवसरों की असमानता भी घटे।'

इन लक्ष्यों को परिभाषित करने के बाद आयोग तर्क रखता है कि संपत्ति में वृद्धि, निवेश में वृद्धि के बिना संभव नहीं। 'आर्थिक प्रगति की कुंजी पूँजी निर्माण है, लेकिन एक ग़रीब देश में निम्न जीवन स्तर और निम्न आय के चलते पूँजी निर्माण का स्तर भी निम्न रहता है। आय में कमी इसलिए है कि कमाने के अवसर कम हैं। इनमें बढ़ोतरी के लिए हमें पूँजी की आवश्यकता है जो कि निम्न उत्पादकता के कारण कम है। यह विषम चक्र चलता रहता है।' एक बार निम्न उत्पादन, निम्न बचत और निम्न पूँजी निर्माण का कुचक्र टूट जाता है तो अर्थव्यवस्था ऊपर की ओर जाना शुरू हो जाती है। लेकिन यहाँ पर दो मूल प्रश्न हैं। कुछ निश्चित वर्षों में प्रति व्यक्ति आय में कितनी वृद्धि वांछनीय है? और इसे हासिल करने में पूँजी निर्माण की क्या दर अनिवार्य होगी?

आयोग ने 1978 तक जनसंख्या में 1.25 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का अनुमान लगाते हुए प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने का अनुमान लगाया है, बशर्ते उत्पादन वृद्धि की दर जनसंख्या वृद्धि की दर को मात दे दे। आयोग ने यह भी अनुमान लगाया है कि 1951 से लेकर अगले 10 साल में निवेश एवं उत्पादन का अनुपात 3 और 1 का रहेगा फिर शनैः-शनैः उठकर 4 और 1 तक पहुँच जाएगा। 1970 से आगे भी यही अनुपात जारी रहेगा। '1978 तक प्रति व्यक्ति आय को अनुमानित पूँजी गुणांक के आधार पर दुगुना करने के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला कि निवेश की दर जो राष्ट्रीय आय का लगभग 4 प्रतिशत थी, इतनी बढ़नी चाहिए कि 1977-78 तक वार्षिक बचत कुल राष्ट्रीय आय की 20 प्रतिशत से कम न हो।

जहाँ तक आय एवं संपत्ति की असमानताएँ घटाने के दूसरे लक्ष्य की बात है तो आयोग को लगा कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के अल्पकालिक उपाय पूँजी निर्माण के प्रयासों पर असर डाल सकते हैं। लेकिन इसमें दीर्घकालिक विधियों और योजना के सर्वोच्च लक्ष्य का सुझाव रखा गया। रिपोर्ट में कहा गया—''दीर्घकालिक दृष्टि के आधार पर इस निष्कर्ष को नकारा नहीं जा सकता कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था में उत्पादक ताक़तों और वर्गों के संबंधों के पुनर्संगठन को सुनिश्चित करने के लिए राज्य के आर्थिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों का तेजी से विस्तार होगा। इसके लिए कृषि, उद्योग और व्यापार में निजी एजेंसियों को ख़त्म करने और उत्पादन एवं वितरण के साधनों का पूर्ण

राष्ट्रीयकरण करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसका अर्थ योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की ज़रूरतें पूरी करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का प्रगतिशील फैलाव और निजी क्षेत्र पर सरकार के निर्देशन एवं नियंत्रण का प्रगतिवादी विस्तार नहीं है।''[1]

इस बिंदु को आगे स्पष्ट करते हुए इसी अध्याय के आख़िरी अनुच्छेद में रिपोर्ट कहती है, 'बात साफ़ है कि सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार और निजी क्षेत्र पर बढ़ते नियंत्रण के कारण आय और संपत्ति की बड़ी असमानताएँ टिक नहीं पाएँगी और आर्थिक विकास एवं सामाजिक स्थिरता पर किसी भी ख़तरे के बिना इन असमानताओं को घटाना आसान होता जाएगा।'

और देखने से यह साफ़ हो जाता है कि योजनाकर्ताओं की दृष्टि आख़िरकार ऐसे समाज पर है, जहाँ सारी आर्थिक सत्ता राज्य में निहित है। योजना के तहत प्राथमिकताओं का निर्धारण करने के लिए अपनाई जानेवाली विधि पर बहस के दौरान आयोग ने प्रभावकारी नियंत्रणों की कल्पना की। निजी बचतों का उपयोग वांछित निकायों और विधियों से करने के लिए वित्तीय आय, ऋण और वाणिज्यिक नीतियाँ एक बड़ी भूमिका अदा करती हैं। योजना कहती है, 'लेकिन निजी क्षेत्र में बचतों का आवंटन मुख्यतः क़ीमतों के संबंधों से नियंत्रित होता है। वर्तमान क़ीमतों के मद्देनज़र बचतें कहाँ जा रही हैं, यह देखने से सर्वाधिक लाभकारी निकायों का निर्धारण होता है, साथ ही क़ीमतों की संरचना साधनों के आवंटन के अनुसार बनी रहे, जो योजना के तहत परिभाषित प्राथमिकताओं और लक्ष्यों के अनुकूल हो, यही आर्थिक नीति का दृढ लक्ष्य होना चाहिए।

आयोग ने पूँजी और ऋण के मुद्दों पर नियंत्रण के साथ-साथ यह सुझाव भी दिया कि चुनिंदा वस्तुओं के थोक व्यापार में शासकीय कारोबार अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में नियंत्रण पाने की सशक्त विधि होगी। इस देश में अधिकतर लोगों को जीवन-यापन की लागत कुछ ही वस्तुओं, जैसे—अनाज, कपड़ा, चीनी, मिट्टी का तेल और नमक पर निर्भर करती है। इन वस्तुओं पर सरकारी व्यापार से इनकी मूल क़ीमतों पर नियंत्रण संभव हो सकेगा, जिससे संसाधनों का वांछित आवंटन एवं जीवनयापन की लागत निश्चित रूप से प्रभावित की जा सकेगी।'

नियंत्रणों के बारे में योजना का कहना है कि विवेकपूर्ण तरीक़े से नियोजित एवं सक्षमता से क्रियान्वित नियंत्रणों की प्रणाली योजनाबद्ध विकास के कार्यक्रमों में आवश्यक सहयोगी है। नियंत्रणों को बिल्कुल छोड़ देना आर्थिक योजना के साथ असंगत है। इस तरह की योजना का अर्थ लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का ह्रास एवं राजनीतिक सत्ता की वृद्धि होने की संभावना को आयोग स्वीकारता है, परंतु इसकी अभिव्यक्ति बहुत कम शब्दों में

---

1. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान (पीपल्स एडिशन), पृष्ठ 18।

करता है। सफल योजना के लिए अनिवार्य राजनीतिक परिस्थिति की गणना इस प्रकार की गई है—

(क) नीति के लक्ष्यों के प्रति समाज में एक विस्तृत सहमति;

(ख) नागरिकों के सक्रिय सहयोग पर आधारित शासन के हाथ में प्रभावकारी सत्ता और उस सत्ता के उत्साही, ईमानदार एवं दृढ पालन से इन लक्ष्यों को आगे बढ़ाना;

(ग) सक्षम प्रशासनिक ढाँचा, जिसमें आवश्यक क्षमता एवं गुणवत्ता वाले कर्मचारी हों।

ज़ाहिर तौर पर 'प्रशासनिक कर्मचारियों में सुधार' और 'समाज में विस्तृत सहमति' जुमले ही हैं। पहले से तय नीतियों को थोपकर सहमति हासिल की जा रही है, जैसे कि हमने इन योजनाओं के लिए संसद् से स्वीकृति पाने के मामले में देखा। कर्मचारियों में क्षमता एवं ईमानदारी की कमी का हवाला सरकार द्वारा अधिक-से-अधिक सत्ता हथियाने का बहाना बनाया जा रहा है।

जो लोग यह सोचते हैं कि कांग्रेस के आदर्शों के रूप में समाजवाद अपनाने के बाद हमारी सरकारी नीति में कोई बदलाव आया है, उसके लिए उपरोक्त तथ्य आँखें खोलने के समान हैं। जुमलों में बदलाव के अतिरिक्त योजना आयोग द्वारा निरूपित मूल नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। यदि पहली और दूसरी योजना में कोई अंतर है तो वह यह है कि दूसरी योजना में पहली योजना के अंतर्गत रखे गए लक्ष्यों की सफलता के लिए भी एक कार्यक्रम बनाया गया है।

5

पहली योजना की रूपरेखा

पहली पंचवर्षीय योजना में विकास के जिन तमाम कार्यक्रमों को शामिल किया जाना था, वे सभी क्योंकि कुछ सालों से क्रियान्वित किए ही जा रहे थे, अतएव आयोग कोई लक्ष्यबद्ध समन्वित योजना नहीं दे पाया। यदि पहले की योजनाएँ 'आँकड़ों की गुत्थी' बताई जा रही थीं तो पहली योजना को 'परियोजनाओं की गुत्थी' कहा जा रहा था। केवल उन योजनाओं की प्राथमिकताएँ तय करने के अलावा, जिन पर अभी कार्य शुरू नहीं हुआ था, योजना आयोग उन योजनाओं पर ठोस रूप से कोई बदलाव नहीं ला पाया, जिन्हें पिछली सरकार के तहख़ाने से बाहर लाया गया था। इसलिए भारत की आर्थिक योजना के लिए तय लक्ष्यों की दिशा में भी यह कोई क़दम नहीं उठा सका। इस काम को बाद के सालों के लिए स्थगित करना पड़ा।

पहली पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के तथा निजी क्षेत्र में उत्पादन के तय लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु 2,069 करोड़ रुपए का व्यय रखा गया। ऐसा करते समय आयोग ने निम्न बिंदुओं को विचार में रखने का दावा किया—

(1) भविष्य में आवश्यक बड़े प्रयासों का आधार बनाने के लिए विकास की एक प्रक्रिया को शुरू करने की ज़रूरत;

(2) विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए देश में उपलब्ध सभी संसाधन;

(3) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में आवश्यक संसाधनों एवं विकास की दरों के बीच नज़दीकी संबंध;

(4) योजना को प्रारंभ करने से पहले केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा चलाई जा रही विकास की योजनाओं को पूर्ण करने की आवश्यकता, और

(5) युद्ध एवं विभाजन के कारण अर्थव्यवस्था में उपजी विसंगतियों में सुधार करने की आवश्यकता।

क्योंकि देश खाद्यान्न की विषम परिस्थिति से जूझ रहा था और पिछले एक दशक से 'अधिक अनाज उपजाओ' जैसी योजनाएँ चल रही थीं, इसलिए कृषि विकास और सिंचाई एवं ऊर्जा परियोजनाएँ सर्वोपरि प्राथमिकताएँ बनीं। रु. 2,069 करोड़ का प्रारंभिक व्यय बढ़ाकर रु. 2,356 करोड़ कर दिया गया। लेकिन वास्तविक व्यय लगभग रु. 1,960 करोड़ ही है, जो कि बढ़ाए गए व्यय से 17 प्रतिशत कम है। निम्न तालिका में विभिन्न मदों के अंतर्गत दिखाए गए व्यय से पहली पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओं का क्रम भी स्पष्ट हो जाता है —

पहली पंचवर्षीय योजना के तहत विकास की मुख्य मदों के लिए आवंटन एवं व्यय—

तालिका

रुपए (करोड़ में)	केंद्र एवं राज्य	केंद्र	राज्य
नियोजित परिव्यय	2356.8	1374.6	962.2
बजट संबंधी संसाधन			
1. चालू खातों की बचतें	599.0	160.0	439.0
2. रेल	170.0	170.0	–
3. जन ऋण / जन उधारियाँ	115.0	36.0	79.0
4. छोटी बचतें और अपव्ययी ऋण	270.0	270.0	–
5. जमा, निधि और अन्य संसाधन	132.8	90.0	42.8
6. केंद्र से राज्य को सहायता	00.0	(–)360.0	360.0
7. संसाधनों में अंतर	1070.0	1008.6	61.4

तालिका

	कुल योजना प्रावधान (समायोजन सहित)		परिव्यय	
	रुपए (करोड़)	प्रतिशत	रुपए (करोड़)	प्रतिशत
1. कृषि और सामुदायिक विकास	**354**	**14.9**	**299**	**14.8**
(i) कृषि	249	10.5	227	11.3

(ii) सामुदायिक विकास	90	3.8	57	2.8
(iii) स्थानीय विकास कार्यक्रम	15	0.6	15	0.7
2. सिंचाई और ऊर्जा	**647**	**27.2**	**585**	**29.1**
(i) बहुउद्देशीय परियोजना	256	10.8	241	12.0
(ii) सिंचाई परियोजना	213	9.0	191	9.5
(iii) ऊर्जा परियोजना	178	7.4	153	7.6
3. उद्योग और खनन	**188**	**7.9**	**100**	**5.0**
(i) ग्राम और लघु उद्योग	49	2.1	44	2.2
(ii) बड़े उद्योग, खनन, वैज्ञानिक अनुसंधान	139	5.8	56	2.8
4. परिवहन और संचार	**571**	**24.0**	**532**	**26.4**
(i) रेल	267	11.2	267	13.3
(ii) सड़क एवं सड़क परिवहन	147	6.2	147	7.3
(iii) पोत, बंदरगाह, जहाज़रानी एवं अन्य परिवहन	97	4.1	71	3.5
(iv) डाक, तार, संचार एवं प्रसारण	60	2.5	47	2.5
5. समाज सेवाएँ	**532**	**22.4**	**423**	**21.0**
(i) शिक्षा	170	7.2	153	7.6
(ii) स्वास्थ्य	138	5.8	101	5.0
(iii) आवास	49	2.1	35	1.7
(iv) श्रम, पिछड़े वर्ग का श्रम कल्याण	39	1.6	37	1.8
(v) पुनर्वासन	136	5.7	97	4.8
6. विविध	**86**	**3.6**	**74**	**3.7**

* पाँचवें वर्ष के आँकड़े 'संशोधित अनुमानों' पर आधारित हैं। पाँच वर्षों का वास्तविक अनुमानित व्यय 1,960 करोड़ रुपए है।

संसाधनों में लगभग 1,070 करोड़ रुपए की पूर्ति बाहरी सूत्रों या आंतरिक करों या घाटे की वित्तीय व्यवस्था या ऋणों से किए जाने का प्रस्ताव रखा गया।

उत्पादन के लक्ष्य भी निर्धारित किए गए। यह एक लंबी तालिका है और इसको

यहाँ अभी छोड़ा जा सकता है। आयोग द्वारा प्रशासन, पट्टेदारी, औद्योगिक संबंध और समाज कल्याण के विषय में जिन क्षेत्रीय कार्यक्रम, सुधार और परिवर्तनों की सिफ़ारिशें की गई थीं, उसके विस्तार में भी जाने की हमें ज़रूरत नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि आयोग का उद्देश्य मुख्यत: देश की खाद्य समस्या का हल खोजना और क़ीमतों की एक समन्वित व्यवस्था का प्रस्ताव देना था।

औद्योगिक विकास मुख्यत: निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया, चाहे योजनाकर्ता, जो भी समाजवादी विचारों को मन में लिये हों, परंतु तत्काल कार्यक्रम मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का निवेश 50-50 के अनुपात में हो, करना था।

भारत सेवक समाज की कल्पना एक अराजनीतिक संगठन के तौर पर जन सहयोग हेतु की गई थी। इसके प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार थे —

(1) भारत के नागरिकों के लिए स्वेच्छा से समर्पित सेवाओं का विकास, जिसके तहत—

(क) राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन और देश की आर्थिक मज़बूती को बढ़ाना;

(ख) समुदायों, सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहन और कमज़ोर तबकों के अभावों और मुश्किलों में कमी लाना, और

(ग) अव्यवहृत समय, ऊर्जा और अन्य संसाधनों की पहचान कर सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों के विभिन्न क्षेत्रों में उसका उपयोग करना था।

प्रशंसनीय किंतु बहुत ही महत्त्वाकांक्षी आदर्श, जो हर तरह से शक्तिशाली राज्य के लिए भी क्षमता से परे है। हाँ, एक अन्य संस्था भी गठित की गई, जो कि जनता व योजना आयोग के बीच संपर्क का काम करेगी, वह है, 'जनसहयोग हेतु राष्ट्रीय परामर्श समिति'; समिति का गठन अगस्त, 1952 में इस लक्ष्य से किया गया था कि यह जनता के विभिन्न वर्गों के मतों का प्रतिनिधित्व करेगी। समिति के कार्य इस प्रकार थे — (1) राष्ट्रीय विकास के संबंध में जन सहयोग के कार्यक्रमों में सहयोग और निरीक्षण, (2) योजना के संचालन के लिए समय-समय पर आयोग को सुझाव देना (3) भारत सेवक समाज की परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करना।

प्रारंभ में इनका स्वरूप अराजनीतिक एवं ग़ैर-दलीय संगठनों का होने का अनुमान लगा सब दलों ने अपना समर्थन प्रस्तुत किया। लेकिन जल्द ही उनका भ्रम टूटा और वे समझ गए कि कांग्रेसियों के अलावा इसमें अन्य किसी का स्थान नहीं है। धीरे-धीरे उन्होंने अपने पाँव खींच लिये और अब इन संगठनों को मिलनेवाला जन सहयोग कभी-कभार के श्रमदान, प्रचार अभियानों के कर्ताधर्ता होने के दावों तथा निधि के नियंत्रण

की कोशिशों तक सीमित है।

सामुदायिक विकास के प्रकल्प और राष्ट्रीय विस्तारण खंड, पंचवर्षीय योजना में गौरवशाली स्थान रखते हैं, इनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की योजना है। इस योजना को भारत-अमरीकी तकनीकी सहयोग निधि और फोर्ड फाउंडेशन से धन प्राप्त हो रहा है। सामुदायिक विकास के प्रकल्प गाँवों के बहिर्मुखी विकास को लक्षित करते हैं, इसलिए गाँव में कार्यरत कार्यकर्ता और खंड अधिकारी ग्रामीण जीवन के हर पहलू से परिचित होने चाहिए, चाहे वे कृषि विकास की योजनाएँ हों या मलेरिया नियंत्रण की, वन अनुसंधान हो या मरुस्थल नियंत्रण। एक आधारभूत ग्रामीण सामुदायिक प्रकल्प का तीन साल का अनुमानित ख़र्च 65 लाख रुपए था। इस रकम में से 58.47 लाख की राशि रुपए में तथा बाक़ी रकम डॉलर में ख़र्च होनी थी। एक प्रकार से सम्मिश्रित प्रकार की योजना, जिसमें एक शहरी यूनिट भी रहता, उसका अनुमानित व्यय 111 लाख रुपए रहता। 'भारत अमरीकी तकनीकी सहयोग' कार्यक्रम में निहित इस पूरी योजना के तहत भारत के लिए ट्यूबवेल, खाद, लोहा और इस्पात, कृषि उपकरण, ग्राम स्तर पर कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण और प्रकल्प निरीक्षकों के सहयोग की व्यवस्था थी। ऐसा एक जन-आंदोलन चलाने की योजना थी, जिसके लिए प्रेरणा, मार्गदर्शन, विशेषज्ञ और धन अमरीका से आना था। हैरानी की कोई बात नहीं कि ये योजनाएँ भारत के विशेषज्ञों को प्रभावित नहीं कर पाई हैं।

भाग-तीन
पहली योजनावधि का मूल्यांकन

6

सामान्य आर्थिक परिस्थितियाँ

पहली आर्थिक योजना किस हद तक सफल रही, यह बताना मुश्किल है। योजना आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इसकी भारी सफलता का दावा किया है। इसने दावा किया है कि पहली पंचवर्षीय अवधि में घरेलू उत्पादन और स्फीति विषयक दबावों को मिटाने या कहें कि नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण सफलता मिली है। लेकिन बेरोज़गारी की समस्या और क़ीमतों का समन्वित तथा नियंत्रित स्तर बनाए रखने में मिली असफलता भी ध्यान देने योग्य है। सफलताएँ और असफलताएँ योजना के कारण हुई आकस्मिक परिस्थितियों या फिर सरकार द्वारा योजना में पहले से न सोची गई नीतियों और कार्यक्रमों को अपनाने के कारणों का फल थीं, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। ऐसे लोग भी हैं, जो मानते हैं कि विशेषत: कृषि एवं निजी क्षेत्र में मिली सफलताओं का जो श्रेय योजना के तहत लिया जा रहा है और जिनसे देश की अर्थव्यवस्था पर दवाब में कमी भी आई, वह तो कभी नियोजित हुआ ही नहीं।

सरकार ने जिन वित्तीय और राजकोषीय नीतियों का क्रियान्वयन किया, वे तो योजना आयोग द्वारा योजना की सफलता के लिए बनी अनिवार्य नीतियों से अलग थीं। आयोग ने कहा था कि कोई भी योजना बिना नियंत्रण के सफल नहीं हो सकती। फिर भी सरकार ने श्री रफी अहमद किदवई के कहने पर विनियंत्रण की नीति अपनाई। राष्ट्रीय आय और उत्पादन में ही आयोग के अनुमानों से कहीं अधिक वृद्धि हुई है और संसाधनों की उपलब्धता उम्मीद से कम रही है। अलग दिशाओं में गई इन भिन्नताओं के पीछे क्या कारण रहा होगा?

अपर्याप्त आँकड़े

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, योजना एकीकृत संपूर्णता लिये नहीं थी। प्रख्यात अर्थशास्त्री श्री डी.आर. गाडगिल ने योजना के बारे में कहा था, 'यह सार्वजनिक व्यय

के कार्यक्रम से अधिक कुछ नहीं, खासतौर पर सार्वजनिक कार्यों के निर्माण का।' इसलिए इन पाँच सालों की आर्थिक स्थिति से योजना की तकनीकों के बारे में कोई नतीजे निकालना बेकार है। विभिन्न मदों के अंतर्गत रखे ख़र्चों की कमी, प्राप्त सफलता पर कोई रोशनी नहीं डालती। अभी तक कोई ऐसा तरीक़ा नहीं है, जिसमें वित्तीय ख़र्चों और भौतिक सफलताओं के बीच संबंध देखा जा सकता है। इसलिए किसी को भी विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे अलग प्रकल्पों की योजना के बारे में कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता है।

कुछ सफलताओं के लिए सरकार को श्रेय दिया जा सकता है, लेकिन वैज्ञानिक तौर पर उन्हें पहली पंचवर्षीय योजना से जोड़ना उचित नहीं है। उपलब्ध आँकड़े केवल उद्योग के संगठित क्षेत्रों से ही संबंधित हैं। असंगठित क्षेत्रों में स्वरोज़गार करनेवाले औद्योगिक मज़दूरों, हमारी रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करनेवाले कुटीर एवं लघु उद्यमों के बारे में इनसे कोई जानकारी नहीं मिलती। 'ऐसा हो सकता है कि तेजी से बढ़ते मशीन चालित उद्योगों के साथ-साथ एक रुका हुआ हस्तचालित उद्योग भी अस्तित्व में है।'[1]

यदि हम प्रति व्यक्ति भोजन की पौष्टिकता के आँकड़ों में प्रति व्यक्ति चीनी की खपत लें, लेकिन गुड़ और खाँड़सारी की मात्रा न जोड़ें, तो सही चित्र सामने नहीं आएगा।

कपड़ा मिलों के उत्पादन आँकड़ों से निर्वस्त्र लोगों की मात्रा नहीं गिनी जा सकती। रोज़गार की स्थिति, बेरोज़गारी या कम रोज़गारी की स्थिति या विभिन्न वर्गों में आय के वितरण के तरीक़ों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।

आँकड़ों में कमी के कारण यह फ़ैसला करना मुश्किल है कि पहली पंचवर्षीय योजना के दो लक्ष्य-उत्पादन में वृद्धि और असमानताओं में कमी कहाँ तक शामिल किए जा सके हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति में योजना के योगदान को मापना तो और भी मुश्किल है।

हालाँकि योजना आयोग ने पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होने के एक साल बाद 1957 में एक समीक्षा छापी है। इस समीक्षा की भी समीक्षा होनी चाहिए, क्योंकि इसका आधार योजनावधि के दौरान हुई आर्थिक उन्नति और उससे प्राप्त अनुभवों का मूल्यांकन है, जिस पर अब दूसरी योजना बनाई जाएगी।

योजना पूर्व आर्थिक स्थिति

आयोग के अनुसार योजना आरंभ होने से पूर्व की आर्थिक स्थिति निवेश के स्तर में वृद्धि करने के लिए कुछ खास अनुकूल नहीं थी। खाद्य और कच्चे माल की बेहद कमी

---

1. डी.आर. गाडगिल : प्रोस्पेक्ट्स फॉर द सेकंड फाइव ईयर प्लान पीरियड, इंडिया क्वार्टरली : वॉल.13 न. 1, पृष्ठ 9, इंडियन काउंसिल ऑफ़ वर्ल्ड अफेयर्स, न्यू डेल्ही

थी। औद्योगिक उत्पादन भी क्षमता के स्तर से कम था। भुगतान संतुलन भी पक्ष में नहीं था और पूरी अर्थव्यवस्था स्फीति दवाबों में थी। क़ीमतें बढ़ रही थीं और सरकार के लिए युद्ध उपरांत चल रही विकास योजनाओं में पैसा देना मुश्किल हो रहा था। प्रशासनिक अधिकारी अपने कंधों पर आए इस बहुमुखी उत्तरदायित्व को पूरा करने में सक्षम नहीं बताए गए।[2]

यदि इस वर्तमान स्थिति को शब्दों में बयान करना हो तो कमीशन द्वारा प्रयोग किए गए उपर्युक्त शब्दों से बेहतर कुछ नहीं होगा, लेकिन कमीशन के विचार कुछ और हो सकते हैं। योजना अब तक की असमन्वित योजनाओं को समन्वित करने का और साथ ही 'नियत प्राथमिकताओं के आधार पर अर्थव्यवस्था में संतुलन लाने और एक सुव्यवस्थित विकास की आधारशिला मज़बूत बनाने' का प्रयास था।[3]

दो चरण

पाँच वर्ष की अवधि को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण वास्तव में योजना के एक वर्ष पूर्व ही शुरू हो गया था और 1953-54 तक चलता रहा। उसके बाद दूसरा चरण प्रारंभ हुआ, जो कि वस्तुत: योजनावधि के साथ समाप्त नहीं हुआ। आर्थिक गतिविधियाँ एक सतत एवं व्यापक प्रक्रिया होने के नाते किसी समय विशेष की कसौटी पर परिभाषित नहीं की जा सकतीं। लेकिन इन दो उप चरणों की अवधि में उत्पादन, क़ीमतों, निवेश और सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में स्पष्ट प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं।

उत्पादन

उत्पादन में प्रवृत्तियाँ : कृषि—औद्योगिक क्षेत्र को दी जानेवाली राजनीतिक महत्ता के बावजूद भारत की अर्थव्यवस्था का आधार एवं प्रभुत्व कृषि ही रहा है। कृषि उत्पादन का बढ़ता ग्राफ आर्थिक क्षेत्र में उछाल का द्योतक है, जबकि किसी भी कृषि फ़सल में गिरावट का अर्थ है—मंदी। दो लगातार वर्षों में भाग्य से बहुत अच्छी फ़सल होने के कारण यह ग्राफ़ बढ़ा है। वर्ष 1953-54 में खाद्यान्न उत्पादन ने 6.88 करोड़ टन पर अपने उच्चतम शिखर को छुआ। अगले वर्ष यह 6.66 करोड़ टन रहा। अन्य व्यावसायिक फ़सलों का उत्पादन भी बढ़ा। हम इस स्तर को बनाकर नहीं रख पाए, यह इस बात का द्योतक है कि बढ़ोतरी अच्छे मानसून और प्रकृति की मेहरबानी के चलते हुई, न कि योजना के तहत चलाई जा रही 'ग्रो मोर फूड स्कीम्स' अर्थात् अधिक खाद्यान्न उत्पादन की योजनाओं जैसे प्रयासों के कारण।

औद्योगिक उत्पादन : औद्योगिक उत्पादन में भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। अधिकतर

---

2. रिव्यू ऑफ़ फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 1।

3. उपरोक्त, पृष्ठ 2।

तालिका
कृषि उत्पादन के सूचकांक
(कृषि वर्ष समापन जून, 1950=100)

वस्तुएँ	1951-52	52-53	53-54	54-55	55-56
चावल	90.1	96.8	118.6	105.6	109.6
गेहूँ	93.9	112.7	120.0	133.7	127.1
ज्वार	96.4	106.6	117.0	133.4	101.8
बाजरा	75.8	94.8	135.0	106.3	105.7
मक्का	101.3	123.3	130.2	130.2	109.6
कुल अनाज	**91.2**	**101.4**	**120.1**	**114.0**	**111.7**
चना	88.2	109.2	125.4	142.2	128.3
कुल दालें	**90.3**	**98.8**	**112.0**	**117.3**	**108.9**
कुल खाद्यान्न	**91.1**	**101.1**	**119.1**	**114.4**	**111.3**
मूँगफली	93.0	85.3	100.3	122.3	112.5
कुल तिलहन	**97.4**	**91.9**	**103.7**	**121.7**	**107.7**
सूत	119.2	121.0	151.8	163.1	154.3
जूट	151.4	148.6	100.0	94.7	133.8
मेस्टा	104.8	103.3	98.5	154.3	182.0
कुल रेशा	**128.3**	**128.4**	**132.1**	**141.2**	**149.8**
चाय	109.6	115.4	100.6	110.7	114.2
काफ़ी	112.7	125.9	146.5	148.1	169.9
रबड़	94.4	106.1	131.8	127.6	133.5
कुल बागान फ़सल	**109.4**	**115.7**	**104.0**	**113.2**	**117.8**
गन्ना	122.8	101.6	89.5	116.7	118.7
तंबाकू	78.0	91.3	101.5	93.9	99.5
कुल विविध	**114.0**	**101.5**	**97.4**	**115.0**	**116.9**
कुल गैर-खाद्यान्न	**110.5**	**103.8**	**104.7**	**120.4**	**11.87**
सभी वस्तुएँ	**97.5**	**102.0**	**114.3**	**116.4**	**113.7**

नोट : 1954-55 के सूचकांक आंशिक संशोधित अनुमानों पर आधारित हैं और 1955-56 के आँकड़े अंतिम अनुमानों पर, इसलिए इनमें परिवर्तन आ सकता है।

स्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार।

क्षेत्रों में योजना के लक्ष्यों से अधिक सफलता प्राप्त हुई। दरअसल इस सफलता के पीछे ग़ैर-योजना क्षेत्र में निजी प्रयास निर्णयात्मक कारण रहे, नकि सरकारी नीतियाँ। मिल में निर्मित कपड़े का उत्पादन वर्ष 1950-57 के 371.8 करोड़ ग़ज़ के स्तर से उठकर वर्ष 1955-56 में 510.2 करोड़ ग़ज़ तक पहुँच गया। यह अपने लक्ष्य से 40 करोड़ ग़ज़ अधिक रहा। चीनी, सिलाई मशीन, पेपर बोर्ड एवं साइकिल निर्माण के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। हालाँकि सीमेंट उत्पादन वर्ष 1950-51 में 27 लाख टन से बढ़कर वर्ष 1955-56 में 46 करोड़ टन पहुँच गया, किंतु अधिक माँग के चलते काफ़ी मात्रा में इसका आयात करना पड़ा। कुछ नई वस्तुओं का भी उत्पादन हुआ। मोटे तौर पर देखा जाए तो निजी क्षेत्र उत्पादन के लक्ष्यों से कहीं आगे निकल गया, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र में या तो उद्यम लगाए ही नहीं गए या फिर वक़्त पर ज़्यादातर अपने लक्ष्यों को पूरा करने में पिछड़े रहे। योजना आयोग ने निजी क्षेत्र की क्षमता को कम आँका था। समीक्षा के अनुसार—'कच्चे माल की प्रचुर उपलब्धता और अभी तक अप्रयुक्त क्षमता का भारी पैमाने पर उपयोग होने के कारण औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई।'

जहाँ तक औद्योगिक क्षमता का प्रश्न है, अभी भी उसकी परिभाषा का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। औद्योगिक सांख्यिकी निदेशालय द्वारा मूल्य निरूपण के किसी दिशा-निर्देश के तहत इसको मनमाने रूप से तय कर दिया गया है। किसी उद्योग में दो शिफ्ट में काम करना सामान्य माना जाता है तो किसी में एक शिफ्ट में ही। कार्य दिवसों की संख्या भी अलग-अलग आधारों पर तय की जाती है। रासायनिक और खाद्य के उद्योगों में 330 कार्य दिवस हैं और तीन शिफ्ट हैं, जबकि बाक़ी उद्योगों में एक शिफ्ट और 300 कार्य दिवस हैं। इस परिभाषा को कुछ उद्योगों में क्षमता से अधिक उत्पादन पर आधारित कर दिया गया है। जब तक कि योजना आयोग क्षमता और अप्रयुक्त हिस्से का ठीक से आकलन नहीं कर लेता, तब तक वह निश्चित लक्ष्यों का व उसके हेतु अनिवार्य दिशा में निवेश का प्रबंध कैसे कर सकता है?[4]

उत्पादन वृद्धि के बावजूद अभाव—औद्योगिक उत्पादन एवं कुछ नए उत्पादों के पहली बार निर्माण में खासी वृद्धि के बावजूद पहली योजना ऐसा कोई आधार नहीं बना पाई, जिस से दूसरी योजना में पूर्वानुमानित वृहत् औद्योगिक कार्यक्रमों को बल मिलता। यहाँ तक कि पहली योजनावधि के दौरान भी सीमेंट, लोहा और इस्पात की बेहद कमी रही। बंदरगाहों, जहाज़रानी और रेलमार्ग पर ध्यान नहीं दिया गया, पर भारी व्यय के बावजूद ट्रैफ़िक परिवहन की भारी माँग को पूरा नहीं किया जा सका। किसी योजना का पहला लक्ष्य इन मार्ग अवरोधों को दूर करना होता है। इस कसौटी पर पहली योजना बिल्कुल असफल रही।

4. इकोनॉमिक वीकली, 10 अगस्त, 1957।

क़ीमतें

पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से अप्रैल 1951 में योजना के मध्य तक क़ीमतों का स्तर अब तक के उच्चतम शिखर 462 (बेस 1939=100) पर था। यह कोरियाई युद्ध का परिणाम था। पूरी दुनिया में क़ीमतों में भारी वृद्धि हुई थी।

योजना आयोग के अनुसार योजना अवधि की समाप्ति पर यह स्तर 13 प्रतिशत नीचे आ गया है। इस बात पर संतुष्टि प्रकट करते हुए योजना आयोग यह भूल जाता है कि ऊँचाई से नीचे आने का मतलब क़ीमतें सामान्य होना नहीं हैं। सच है कि योजनावधि के दौरान मूल्य सूचकांक में गिरावट दर्ज हुई थी और सरकार को मूल्य समर्थन के लिए आवश्यक क़दम उठाने पड़े थे। वास्तव में इन्हीं उतार-चढ़ावों के कारण आर्थिक संतुलन डगमगा जाता है, जिससे समाज के कुछ वर्गों के लिए मुश्किलें पैदा हो जाती हैं।

योजना में एक स्थिर क़ीमत प्रणाली का वादा किया गया था, जिसे पूरा नहीं किया गया।

कृषि उत्पादों एवं औद्योगिक उत्पादों की क़ीमतों के बीच संतुलन न होने के कारण प्राथमिक उत्पादकों और मज़दूरों को बहुत बलिदान देने पड़े हैं।

क़ीमतों में किस हद तक असंतुलन है, यह निम्न तालिका से जाना जा सकता है—

तालिका

मुख्य तिथियों पर थोक क़ीमतों का सूचकांक

(आधार : वर्ष समापन अगस्त, 1939=100)

अवधि	*खाद्य वस्तुएँ*	*औद्योगिक कच्च माल*	*अर्द्ध-निर्मित वस्तुएँ*	*निर्मित माल*	*सामान्य सूचकांक*
कोरियाई युद्ध से पूर्व					
24 जून, 1950	407.1	494.2	335.5	346.9	397.1
कोरियाई युद्ध के बाद					
14 अप्रैल, 1951	414.3	699.8	390.1	413.1	462.4
29 मार्च, 1952	339.3	337.1	340.6	382.4	378.2
अगस्त, 1953	307.0	488.7	364.7	370.0	410.4
27 मार्च, 1954	378.0	461.4	357.2	375.8	396.8
10 अप्रैल, 1954	389.0	472.2	359.9	380.6	404.4
26 जून, 1954	338.0	431.0	350.7	378.7	378.4
25 सितंबर, 1954	362.3	428.2	352.2	378.6	384.3

26 मार्च, 1955	293.0	400.1	332.0	376.1	349.7
4 जून, 1955	276.7	386.2	330.9	371.0	340.6
31 मार्च, 1956	358.8	477.9	375.5	373.7	390.4

स्रोत : आर्थिक सलाहकार, भारत सरकार के कार्यालय द्वारा प्रकाशित आँकड़ों पर आधारित।

पहली पंचवर्षीय योजनावधि अप्रैल 1951 से मार्च 1956 तक का काल क़ीमतों की गति के लिहाज़ से निम्न चरणों में बाँटा जा सकता है—

(1) 15 अप्रैल, 1951 से 9 मार्च, 1952 : कोरियाई उत्पादन वृद्धि के कारण आए उछाल से वापसी।

(2) 29 मार्च, 1952 से अगस्त 1953 : सुधार एवं ऊर्ध्वगति।

(3) अगस्त 1953 से सितंबर 1954 : सामान्य क़ीमतें वार्षिक बदलाव, अधिक असंतुलन नहीं।

(4) दिसंबर 1954 से जून 1955 : कृषि में गिरावट का काल।

(5) जून 1955 से आगे : लगातार वृद्धि का काल।

इन चरणों में क़ीमतों की स्थिति पर विमर्श और आवर्ती उतार-चढ़ाव का मूल्यांकन करने से पहले यह जानना चाहिए कि कृषि उत्पादों के संदर्भ में ही क़ीमतों की गति को मापा जाता है। जहाँ तक कि निर्माता और उपांत-निर्माताओं का प्रश्न है, वहाँ कम असंतुलन देखा गया। निर्मित उत्पादों में क़ीमतों के उच्चतम एवं निम्नतम अभिसूचक क्रमश: 413.1 और 370.8 रहे।

अनौपचारिक निर्माताओं के लिए यह अंक क्रमश: 390.1 और 330.9 रहे। इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कृषिविदों की आय में इन बदलावों के चलते एक अनिश्चितता का तत्त्व शामिल हो जाता है। लेकिन इनसे यह नतीजा भी निकालने की आवश्यकता नहीं है कि मुख्य निर्माता किसी भी प्रकार से एक समय की उच्च क़ीमतों के परिवर्तन से लाभ पाता है, जबकि हो सकता है, मंदी के समय उसे कम मिला हो। ख़रीदी जा रही वस्तुओं में कोई समतुल्य अंतर न होने के कारण चरम लाभ की अवधि में हुआ फ़ायदा भी क्रय बाज़ार में लगातार चल रही ऊँची क़ीमतों के चलते शून्य हो जाता है। और फिर जो उत्पाद वह बेचता है, उस बाज़ार को क्रेता नियंत्रित करते हैं और जिनके लिए वह ख़रीदता है, वहाँ विक्रेता का प्रभाव रहता है। चलिए, विभिन्न वस्तुओं की क़ीमतों के स्तर को ध्यान से देखें, ताकि यह बात समझी जा सके।

पहला चरण

जून, 1950 में कोरियाई युद्ध के शुरू होने के बाद विश्व उत्पाद बाज़ार में काफ़ी

उछाल आया। 14 अप्रैल, 1951 में पहली योजना के प्रारंभ होते ही शिखर के स्तर प्राप्त कर लिये गए। राजकोषीय, मौद्रिक और नियंत्रण संबंधी सरकारी क़दम उठाए गए और जून 1951 में कोरिया में आपसी हमलों में विराम के साथ ही ऊपर जाता स्तर रुक गया और कुछ गिरावट शुरू हो गई।

कोरियाई युद्ध से पहले और बाद की अवधि के क़ीमत सूचकांक की तुलना से पता चलता है कि निर्मित वस्तुओं की क़ीमतों में खाद्य वस्तुओं की क़ीमतों की तुलना में उतार-चढ़ाव अधिक था। खाद्य पदार्थों की क़ीमतें 407.1 से 414.3 तक चढ़ीं, जो कि मुश्किल से 1.7 प्रतिशत की वृद्धि थी, जबकि निर्मित वस्तुओं के क़ीमत सूचकांक में 346.9 से 413.1 की वृद्धि, यानी 18.5 प्रतिशत का फ़र्क़ आया। कपड़े में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जूट एवं जूट से बने पदार्थों में सबसे अधिक वृद्धि हुई। लेकिन यह जानना ज़रूरी है कि बाज़ार में आने के बाद जूट की क़ीमतों में वृद्धि हुई, इसलिए उत्पादकों को इसका फायदा नहीं हुआ।[5] अन्य औद्योगिक कच्चे माल में भी वृद्धि दर्ज हुई। कच्चे कपास में केवल 11.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। इसकी तुलना निर्मित सूती वस्तुओं को 17.1 प्रतिशत की बढ़ोतरी से कीजिए।

योजना के प्रारंभ में जो गिरावट देखी जा रही थी, वह सामान्य स्तर पर आकर नहीं रुकी। शीघ्र ही यह सामान्य मंदी में परिवर्तित हो गई। अप्रैल 1951 में 462 के उच्चतम थोक मूल्य सूचकांक का स्तर गिरकर 1952 तक 365 तक पहुँच गया। यह रबी फ़सल से ठीक पहले का समय था। यह गिरावट बहुत चिंताजनक थी। औद्योगिक कच्चे माल में यह महत्त्वपूर्ण गिरावट थी। कपास में उछाल के दौरान केवल 61 अंकों की वृद्धि दर्ज हुई थी, जो कि अब कोरियाई युद्ध के पहले स्तर से भी नीचे आ चुका था। खाद्य पदार्थों का मूल्य सूचकांक 18.7 प्रतिशत की गिरावट के साथ 414.3 से 339.3 पहुँच गया। पहले की अवधि में इसमें केवल 1.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, निर्मित वस्तुओं में हालाँकि कोई महत्त्वपूर्ण गिरावट नहीं देखी गई।

सूती उत्पादों का सूचकांक कोरियाई वृद्धि के समय जो 410 के स्तर पर पहुँचा तो अभी भी बाक़ी कृषि उत्पादों में गिरावट के बावजूद वहीं टिका रहा। यह जानना दिलचस्प होगा कि लोहा एवं इस्पात में मूल्य नियंत्रण के बावजूद सूचकांक 210 से 219 पहुँच गया। जब प्राथमिक उत्पाद की क़ीमतें नीचे आ रही थीं तो सरकार ने लोहा एवं इस्पात के नियंत्रित मूल्य को बढ़ाना ठीक समझा और परिणामत: कृषि उपकरणों पर भी यही लागू किया गया। अत: खाद की क़ीमतें भी बढ़ गईं। अप्रैल 1951 में उनका मूल्य सूचकांक 248 था, जो दिसंबर, 1951 में 279 तक चढ़ गया। जनवरी, 1952 में

---

5. जूट का मौसम जुलाई में शुरू होता है, जब यह आम तौर पर बाज़ार में पहुँचता है।

आम चुनावों के समय इसमें गिरावट आई, परंतु नतीजों की घोषणा के बाद इसमें 295 के स्तर तक की वृद्धि हुई। मूल्य नियंत्रण की स्थिति में आर्थिक कारणों की तुलना में राजनीतिक कारण प्रभावशाली होते हैं।

सरकारी नीतियाँ, ऋण में बाधाएँ और बजटीय नीतियों के चलते इस दुर्दशा में इज़ाफ़ा हुआ। कुछ नीतियाँ बेशक इसलिए बनाई गई थीं कि कोरियाई युद्ध के दौरान चढ़ते क़ीमतों के स्तर को नियंत्रित किया जा सके। लेकिन जब तक नीतियाँ लागू की गईं गिरावट शुरू हो चुकी थी। सरकार एक अलग आर्थिक परिस्थिति में लिये गए नीतिगत फ़ैसलों को लागू करने से ख़ुद को रोक नहीं पाई और जब इंजन तेज गति पकड़ चुका था तो प्राथमिक उत्पादकों को कुचलते हुए मंदी का स्टेशन आने से पहले उसे रोका नहीं जा सका। यदि ताक़तवर सट्टेबाज एक तेज बाज़ार को मंद या इसका उलटा भी कर सकते हैं, तो सरकार द्वारा बाज़ार को सामान्य करने के प्रयास भी समान प्रभाव डालते हैं। विपरीत दिशा में बहुत आगे जाने के बाद पता चलता है कि पेंडुलम तो दूसरे छोर पर पहुँच गया है और ब्रेक लगाते बहुत देर हो जाती है, क्योंकि नौकरशाही शीघ्र फ़ैसले लेने नहीं देती। स्थिति का और विश्लेषण करने से यह तथ्य और साफ़ हो जाता है।

दूसरा चरण

मंदी ज्यों-ज्यों गहराती गई, सरकार को अपनी नीतियाँ विपरीत दिशा में ले जानी पड़ीं। कुछ उत्पादों में नियंत्रण हटाना, कुछ उत्पादों में निर्यात कर में छूट या कमी, सूती कपड़ों के निर्यात में छूट और रिज़र्व बैंक द्वारा आसान मौद्रिक नीतियों ने गिरावट को कुछ हद तक रोका। प्रथम चरण के दौरान स्टॉक संग्रह पर प्रतिबंधों को हटा दिया गया और जमाखोरी करनेवाले फिर से बाज़ार में दिखाई देने लगे। अगस्त 1953 तक वृद्धि चलती रही, जबकि आम मूल्य सूचकांक 410.4 तक चढ़ा। लेकिन यह अल्पकालिक वृद्धि थी। अगले ही महीने सितंबर, 1953 में 7 अंकों की गिरावट दर्ज हुई।

तीसरा चरण

तीसरा चरण सितंबर 1953 की गिरावट से शुरू हुआ, जो कि एक साल सितंबर, 1954 तक चलता रहा। वह सामान्य क़ीमतों की अवधि थी। क़ीमतों में उतार-चढ़ाव अल्पकालिक और मौसमी था। इस अवधि में उत्पादन भी स्थिरता से बढ़ रहा था।

औद्योगिक उत्पादन का आम सूचकांक 1953 के 105.6 अंक से बढ़कर 1954 में 112 अंक तक पहुँच गया। सूती कपड़े का सूचकांक 107 से 110 तथा लौह एवं इस्पात का 95.7 से 113.2 तक पहुँच गया।

लेकिन यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के

बावजूद निर्मित वस्तुओं की क़ीमत में गिरावट नहीं आई। इसके विपरीत उनमें लगातार वृद्धि हुई।

अगस्त 1953 में उत्पादकों के लिए मूल्य सूचकांक 370.8 था। 16 अप्रैल, 1954 को यह 380.6 था और थोड़ी सी गिरावट इसमें 26 जून, 1954 से आई तथा 378.7 अंक पर यह स्थिर हुआ।

रबी फ़सल आने से खाद्य पदार्थों की क़ीमत में तेजी से गिरावट आई। 10 अप्रैल, 1954 के मूल्य सूचकांक 389 से गिरकर 24 जून, 1954 को यह 338.0 अंक पर रहा और 25 सितंबर,1954 को इसमें 362.3 अंक पर सुधार देखा गया।

चौथा चरण

इस पूरी अवधि का चौथा चरण सबसे अधिक चिंताजनक रहा। इस चरण में 1 सितंबर, 1954 के बाद से कृषि मूल्यों में गिरावट के कारण खाद्य पदार्थों का मूल्य सूचकांक 25 सितंबर, 1954 को 362.3 अंक पर 26 मार्च, 1955 को 293.0 अंक और 4 जून, 1955 को 296.7 अंक तक गिर गया। यह गिरावट सितंबर 1954 के स्तर से 24 प्रतिशत और अगस्त 1953 के स्तर से 28 प्रतिशत नीचे थी।

जैसा कि हो रहा था, यह गिरावट उत्पादकों के लिए इकतरफ़ा थी। 378.6 और 371.1 अंक के बीच आई इस गिरावट का कोई समतुल्य प्रभाव कृषि मूल्यों पर नहीं था। इस संबंध में इसका असर एक वर्ग पर इतना था कि तीस के दशक की मंदी का असर भी इसके मुक़ाबले कम था।

यह भी अपने आप में खास था कि दुनिया भर के देशों में भारत ही ऐसा था, जहाँ कृषि मूल्यों में मंदी आई। नतीजतन उत्पादकों के लिए व्यापार की शर्तें बुरी तरह से उनके ख़िलाफ़ थीं। क़ीमतों में इतनी ज़्यादा गिरावट आई कि कृषकों की आय भी गिर गई, जबकि उत्पादन में वृद्धि हुई थी।

पाँचवाँ चरण

मूल्य समर्थन की लगातार चल रही माँगों के प्रति आख़िरकार सरकार जागी और उसने 7 दिसंबर, 1954 में ज्वार, बाजरा, मक्का का और जून 1955 में गेहूँ का स्तर मूल्य घोषित किया। सार्वजनिक व्यय बढ़ाने की भी बात की गई। सरकार के प्रयासों, 1954-55 एवं 1955-56 में उत्पादन में गिरावट और स्टॉक के संग्रहण पर नियंत्रण हटने के संचित नतीजों से क़ीमतों में सुधार शुरू हुआ। जून 1955 के पहले हफ्ते से परिवर्तन शुरू हुआ।

4 जून, 1955 को दालों और अनाज का थोक मूल्य सूचकांक क्रमशः 210 और 309 था। कच्चे कपास का 376 पर गिरा हुआ स्तर था।

जून 1955 के बाद क़ीमतों में अचानक उछाल आया। बाज़ार में खाद्यान्नों का छोटी-छोटी मात्रा में पहुँचना इसका कारण हो सकता है। जुलाई 1955 में पिछले महीने की तुलना में खाद्य पदार्थों का सूचकांक 281.8 से बढ़कर 309.7 तक पहुँच गया। एक महीने में 10 प्रतिशत की वृद्धि। तब से लगातार क़ीमतें बढ़ रही हैं और अभी तक सामान्य होने की कोई प्रवृत्ति नज़र नहीं आ रही।

पहली पंचवर्षीय योजना के अंत में 4 जून, 1955 के मुक़ाबले खाद्य पदार्थों का मूल्य सूचकांक 29.7 प्रतिशत बढ़कर 358.8 तक पहुँच गया। इन दो तारीख़ों के बीच औद्योगिक कच्चे माल की क़ीमतें 237 प्रतिशत बढ़ीं, उपांत निर्मित वस्तुओं की 13.4 प्रतिशत, वनस्पति तेल की 49.6 प्रतिशत, तेल पट्टियों (ऑयल केक) की 28.2 प्रतिशत, लोहा एवं इस्पात की 16.4 प्रतिशत, वनस्पति की 26.4 प्रतिशत, ज्वार की 120 प्रतिशत और दालों की 56.4 प्रतिशत क़ीमतें बढ़ीं। पहली योजना के अंत पर जो क़ीमतें थीं, उनका किसी भी अन्य अवधि से तुलना करने का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है, क्योंकि क़ीमतें दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में भी बढ़ती रहीं। आर्थिक अथवा अन्य सामाजिक ताक़तें योजना आयोग द्वारा तय किए गए समय के खंडों के अनुसार काम नहीं करतीं। इसलिए तभी तुलना करना उचित होगा, जब कोई निश्चित गिरावट का रुख नज़र आए।

पहली योजना में एक समन्वित क़ीमत का ढाँचा बनाए रखने का इरादा रखा गया था। इस लक्ष्य के मद्देनज़र योजना में लिखा गया था—"क़ीमतों के संबंध में किसी भी परिस्थिति की कसौटी पर खरा उतरनेवाले स्तर को परिभाषित करने की समस्या है और प्रत्यक्ष नियंत्रणों या यह निश्चित करना कि आर्थिक एवं अन्य तरीक़े अपनाते वक़्त खाद्यान्न का उत्पादक किसी भी प्रकार से व्यर्थ हानि का शिकार न हो, यह भी समस्या है।

क़ीमत स्थिर करने की नीति तय करते समय निश्चित उच्चतम एवं न्यूनतम का विचार होना चाहिए। यदि क़ीमतों का रुख लगातार नीचे की ओर हो तो नियंत्रणों की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें निश्चित अर्जनमूल्य इस्तेमाल किए जाएँ। यह क़दम उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए तथा क़ीमतों को बेवजह गिरने से बचाने के लिए उठाना चाहिए। सरकार द्वारा अच्छी मात्रा में क्रय किया जाना क़ीमतों को स्थिर रखने का उत्तम तरीक़ा है तथा इससे कुछ हद तक अंतरराज्यीय विषमताओं को भी कम किया जा सकता है।" व्यवहार में तो यह योजना बुरी तरह असफल रही और उतार-चढ़ाव की स्थिति पिछले दो दशकों में सबसे अधिक विकट है।

अब तक हमने अखिल भारतीय आधार पर क़ीमतों में उतार-चढ़ाव पर विमर्श किया। खाद्यान्न जाँच समिति 1957 ने स्थानीय केंद्रों में क़ीमतों की विभिन्नता में और अधिक खाई की ओर ध्यान खींचा है। हमने पहले देखा है कि इन खाइयों से बड़ी-बड़ी

मुश्किलों का जन्म होता है। आगे की तालिका को (पृष्ठ 57—58) जो समिति द्वारा बनाई गई है, अच्छी तरह समझने की ज़रूरत है, ताकि क़ीमतों में विषमता की पूरी तरह जाँच हो। तालिका में देखा जा सकता है कि जून 1953 में चावल की क़ीमत कोझीकोड में उच्चतम स्तर पर 33 रुपए प्रति मन थी और कटक में 12 रुपए प्रति मन के साथ निम्नतम स्तर पर थी। अन्य तारीख़ों पर भी इसी तरह की विषमता पाई जाती है। इन चार वर्षों में कटक, कोलकाता और मद्रास में क़ीमतों की विषमता नवगढ़, कोझीकोड और काकीनाड़ा के मुक़ाबले कम रही।

जहाँ तक गेहूँ की क़ीमतों को देखा जाए तो व्यावहारिक तौर पर क़ीमतों के उतार-चढ़ाव की खास समस्या नज़र नहीं आती। लेकिन जबलपुर, कानपुर और रीवा में भारी अंतर देखा गया। प्रांतीय स्तर पर ऐसी भारी विषमताएँ बताती हैं कि अखिल भारतीय औसत के आधार पर बनाई गई नीतियाँ उपयोगी सिद्ध नहीं होंगी। यदि विभिन्न प्रांतों के विभिन्न वर्षों की क्रयशक्ति की भारी विषमताओं को ध्यान में रखा जाए तो हमें केंद्रीकृत नीति के बजाय विकेंद्रीकृत नीति की आवश्यकता है।

मूल्य निर्धारक

पिछले पाँच वर्षों में तेजी और मंदी इतनी बार आई और सरकार की आर्थिक, मौद्रिक व प्रशासनिक नीतियाँ इतनी बार बदलीं कि एक विशेष अवधि की क़ीमतों के ढाँचे को किसी एक कारण या कारणों के समूह के साथ जोड़कर विश्लेषण करना मुश्किल है। वास्तव में उत्पादन, आय, रोज़गार, माँग, लागत, क़ीमतें सब आपस में जुड़े हुए हैं। इसमें प्रत्येक दूसरे कारक है और आर्थिक, मौद्रिक प्रशासनिक नीतियों और अंतरराष्ट्रीय स्थितियों का भी कारक है।

आर्थिक वृद्धि की समस्या इन सभी कारकों में विभिन्न स्तरों पर सामंजस्य बिठाना, भारी और अकस्मात् बदलावों को रोकने की चुनौती है, ताकि जो संतुलन बना हुआ है, उसको कोई झटका न लगे। अभी तक आर्थिक वृद्धि पर इन प्रभावों का कोई मूल्यांकन नहीं किया गया है।

तालिका
विभिन्न केंद्र पर मध्य वर्ष क़ीमतें
(आधार : वर्ष समापन अगस्त, 1939=100)

	जून 1953	जून 1955	जून 1957	1957 में तुलनात्मक प्रतिशत अंतर 1953	1955
(क) चावल					
1. अखिल भारतीय सूचकांक (आधार 1952-53=100)	109	77	106	-2.8	+37.6
	रु.	रु.	रु.		
2. पटना (बिहार)	24.00	13.00	23.00	-4.2	+76.9
3. नवगढ़ (पूर्वी उत्तर प्रदेश)	28.00	14.62	21.75	-22.4	+48.7
4. नंदगढ़ (मैसूर)	20.39	11.50	20.00	-2.0	+73.9
5. बलूरघाट (प. बंगाल)	21.50	14.75	22.50	+4.6	+52.5
6. काझीकोड (केरल)	33.00	13.50	20.55	-37.8	+52.2
7. इंफाल (मणिपुर)	14.75	5.00	7.25	-50.9	+45.0
8. काकीनाड़ा (आंध्र)	25.25	13.50	20.00	-20.8	+48.1
9. कल्याण (बॉम्बे)	26.08	14.00	21.00	-19.5	+50.0
10. कटक (उड़ीसा)	12.00	17.87	16.75	+39.6	-6.3
11. कलकत्ता शहर	16.75	17.50	22.50	+34.3	+28.5
12. मद्रास शहर	21.37	13.37	19.20	-10.2	+43.6
(ख) ज्वार					
1. अखिल भारतीय सूचकांक	109	57	127	+16.5	+122.8
2. अमरावती (बॉम्बे)	11.50	6.00	13.25	+15.2	+120.8
3. उज्जैन (मध्य प्रदेश)	11.00	5.00	14.00	+27.3	+180.0
4. नंद्याल (आंध्र)	13.50	5.75	16.00	+18.5	+178.2
5. झाँसी (उत्तर प्रदेश)	13.25	5.31	13.26	+2.3	+155.4
(ग) गेहूँ					
1. अखिल भारतीय सूचकांक	95	62	88	-7.4	+41.9
	रु.	रु.	रु.		
2. जबलपुर (मध्य प्रदेश)	20.62	12.50	17.75	-13.9	+42.0
3. कानपुर (उत्तर प्रदेश)	17.75	9.50	12.81	+27.8	+34.8

4. कोटा (राजस्थान)	14.40	9.00	14.62	+1.2	+62.4
5. अबोहर (पंजाब)	13.62	11.12	13.50	−1.9	+21.4
6. धांदुका (बॉम्बे)	19.42	11.00	18.50	−4.8	+68.2
7. रीवा (मध्य प्रदेश)	20.00	10.00	15.31	−23.5	+53.1
8. दिल्ली शहर	15.62	10.00	15.00	−4.0	+50.0
9. बॉम्बे शहर	19.42	12.87	19.25	−0.9	+49.5

स्रोत : खाद्यान्न जाँच समिति 1957।

खाद्यान्न जाँच समिति, 1957 इस बिंदु पर कहती है कि 'सुपरिभाषित एवं सुसंयोजित क़ीमत स्थायित्व की नीति और उसे लागू करने के तंत्र की अनुपस्थिति इसकी मूल कमज़ोरी थी।' समिति ने यह विचार भी रखा कि 'आर्थिक पूर्वानुमान कौशल का विकास भी मंद रहा।' सरकार की मौजूदा मुद्दों में व्यस्तता से लेकर भविष्य के मुद्दों की तुलनात्मक रूप से अनदेखी या विभिन्न नीतियों में आपसी समन्वय की कमी पूरी योजना की कमज़ोरी रही।

1953-54 की मंदी की वजह सरकार का पूरी तरह से बाज़ार से हाथ खींच लेना था। इसे बफर भंडार बनाने चाहिए थे। इसी तरह 1955-56 में जब क़ीमतें चढ़ रही थीं तो सरकार स्फीतिकारी वित्तों में संभावित परिणामों का अनुमान नहीं लगा पाई।

मोटे तौर पर निम्न कारणों से क़ीमतों का ढाँचा प्रभावित हुआ—

1. विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन।
2. विभिन्न उत्पादों का आयात या निर्यात।
3. प्राथमिक उत्पादकों को रोके रखने और उपभोग की ओर झुकाव।

इन तीन कारणों से बाज़ार में वस्तुओं की उपलब्धि निर्धारित होती है।

4. माँग पक्ष में आय और उपभोग के तरीक़ों में बदलाव से वृद्धि या कमी निर्धारित होती है।
5. मंदी या उछाल का सट्टेबाजी और मनोवैज्ञानिक पक्ष संग्रहण या असंग्रहण तय करता है।
6. मौद्रिक कारण, जैसे कि अर्थव्यवस्था में ऋण की मात्रा और मुद्रा।

इन सब कारणों में से आख़िरी कारण ने पिछले पाँच सालों में क़ीमतों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। क़ीमत वृद्धि का मुख्य कारण सरकार द्वारा घाटे का अर्थ प्रबंधन अपनाना था। यह समझना चाहिए कि आर्थिक क़दमों के नतीजे प्राप्त होने से पहले कुछ वक़्त लगता ही है। चाहे नतीजे सुधार की तरफ़ जाएँ या नुक़सान की ओर। असामान्य उतार-चढ़ाव सरकार द्वारा समय रहते उचित क़दम न उठाने में असफलता का

द्योतक है। भारत में कृषि जन पदार्थों का उत्पादन आज भी और आनेवाले कई सालों तक प्राकृतिक अनिश्चितताओं पर ही निर्भर रहेगा। संभावित उत्पादन के आँकड़ों का सही अनुमान लगाकर बजट को उसी अनुसार ढालना क़ीमतों के संतुलन की दिशा में ठोस क़दम होगा। इसके लिए हमारे वित्तीय वर्ष में बदलाव की आवश्यकता है। यदि यह दीपावली से प्रारंभ होता है तो न सिर्फ़ हमारी परंपराओं के अनुकूल होगा बल्कि सरकार को बजट पेश करने के लिए सभी अनिवार्य जानकारियाँ भी उपलब्ध हो जाएँगी। इसी समय बाज़ार में ख़रीफ़ की फ़सल आती है। ख़रीफ़ की फ़सल प्रत्यक्ष रूप से मानसून पर निर्भर करती है व रबी अप्रत्यक्ष रूप से। दीपावली तक ख़रीफ़ की फ़सल का पूरा अनुमान लग जाता है, साथ ही रबी की फ़सल का भविष्य भी समझ आ जाता है।

बेरोज़गारी

पहली पंचवर्षीय योजना बनाते समय बेरोज़गारी को एक गंभीर समस्या के रूप में नहीं देखा गया। लेकिन आयोग की यह ग़लती थी। वर्ष 1953 में कोरियाई तेज़ी से पतन के काल से पहले ही रोज़गार की स्थिति ख़राब हो चली थी। आयोग ने लघु अवधि के कुछ क़दम उठाए तथा एक दल का गठन किया गया, जिसका काम था शिक्षित बेरोज़गारी के कारणों की जाँच करना व सुधार के सुझाव देना।

योजना का ख़र्चा 2,069 करोड़ रुपए से बढ़ाकर 2,398 करोड़ रुपए प्रस्तावित किया गया। (वास्तविक ख़र्चा 2,069 करोड़ रु. के मूल लक्ष्य तक भी नहीं पहुँच पाया।)

विभिन्न अध्ययनों के बावजूद देश में बेरोज़गारी की वास्तविक स्थिति को मापा नहीं जा सका है, खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार दफ़्तरों के आँकड़ों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यही सामने आया है कि मार्च 1951 से मार्च 1956 तक इनमें अंकित बेरोज़गारों की संख्या में लगभग 3 लाख की बढ़ोतरी हुई है। आयोग ने माना है कि 'योजनावधि में रोज़गार के अवसरों में उतनी वृद्धि नहीं हुई, जितनी कि श्रमिकों की संख्या में। जीवन स्तर और राष्ट्रीय आय योजना के दौरान क़ीमतों की स्थिति एवं रोज़गार के हालात को देखते हुए यह नतीजा निकाला जा सकता है कि लोगों के जीवन स्तर में कोई वृद्धि नहीं हुई है जबकि उत्पादन बढ़ा है और राष्ट्रीय उत्पादन में भी अच्छी वृद्धि हुई है।

यदि हम आय एवं संपत्ति का वृहत्तर केंद्रीयकरण भी गिनें जिसे कि पूर्व केंद्रीय वित्त मंत्री श्री सी.डी. देशमुख ने विकास के दौरान अवश्यंभावी बताया है, तो हम कह सकते हैं कि ग़रीब एवं मध्यम आय वर्ग का जीवन स्तर इन पाँच वर्षों में नीचे गिरा है।

इसका रूप हमें खाद्य पदार्थों और निवास की कमी में, रोज़मर्रा की चीज़ों की बढ़ती क़ीमतों में और गिरती क्रयशक्ति में दिखता है।

यह जानते हुए कि क्षेत्रीय आँकड़े और उनपर आधारित राष्ट्रीय औसत भी पर्याप्त तथा विश्वसनीय नहीं होते, राष्ट्रीय आय में प्रतीकात्मक वृद्धि को अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। आगे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय आय में जो भी वृद्धि हुई, वह एक स्थिर गति से नहीं हुई है। योजना की अंतिम अवस्था में क़ीमतों पर ऊपर की ओर दबाव पड़ने से वृद्धि की दर धीमी हो गई और शुरुआती वृद्धि तो भाग्य से ही हुई थी, न कि योजना से।

निवेश के आँकड़ों और राष्ट्रीय उत्पादन में तुलना की दृष्टि से यह देखा जा सकेगा कि निवेश की दर बढ़ने से राष्ट्रीय आय की दर नीचे आ गई। फिर भी इन दोनों में शायद ही कोई प्रत्यक्ष संबंध है। मुख्यत: इसलिए कि निवेश के फलित होने में समय लगता है तथा हमारे राष्ट्रीय उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा कृषि से आता है। वास्तव में ऋण एवं मुद्रा निर्माण से इन निवेशों की पूर्ति करने की विधि का क़ीमतों के ढाँचे पर विपरीत असर पड़ा, इसलिए वास्तविक प्रति व्यक्ति आय प्रतीकात्मक आय से कम था। योजना की समीक्षा में भी माना गया कि योजना के अंत तक उपभोग के स्तर में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं देखी गई। समीक्षा की रिपोर्ट के पृष्ठ 8 पर कहा गया है कि 'योजना के आख़िरी दो सालों में विकास एवं निवेश के लिए व्यय में बढ़ोतरी के बावजूद हो सकता है कि 1953-54 के बाद प्रति व्यक्ति उपभोग दर में शायद ही कोई वृद्धि हुई हो।' (पृष्ठ 62 पर तालिका देखें)

इस तालिका के आँकड़े देखने से स्पष्ट है कि योजना अवधि के दौरान राष्ट्रीय उत्पादन में 17.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। योजना में निहित अनुमान से यह अधिक है। योजना में 11 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया था, जबकि वास्तविक वृद्धि 17.5 प्रतिशत की रही। किंतु आज की क़ीमतों के संदर्भ में देखें तो आँकड़े इतने आशाजनक नहीं हैं। वर्तमान क़ीमतों का स्तर हमारी वित्तीय ताक़त को निर्धारित करता है। विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि के अलग-अलग स्तरों से भी यह दिख जाता है कि कृषक एवं उससे संबंधित मज़दूर वर्ग, जो कि अपने आप में सबसे बड़ा वर्ग है, इन पाँच सालों में अधिक लाभान्वित नहीं हुआ है। (पृष्ठ 62 की तालिका देखें)। वर्तमान क़ीमतों पर प्रति व्यक्ति आय 1950-51 के शुरुआत में 262.2 रु. की, जो वर्ष 1953-54 में बढ़कर 280.7 रु. हो गई, परंतु तब से इसमें वर्ष 1954-55 में भारी गिरावट हुई तथा यह आय 254.4 रु. पहुँच गई, जो वर्ष 1955-56 में और गिरकर 252.0 रु. पर आ गई।

योजना के अंत तक मोटे तौर पर यह तसवीर शुरुआती दौर से कहीं अधिक बुरी थी। वह भी महत्त्वपूर्ण है कि विकास की योजनाओं पर 1954-55 और 1955-56 में,

व्यय में वृद्धि के बावजूद वर्तमान क़ीमतों पर प्रति व्यक्ति आय में तेजी से गिरावट दर्ज की गई।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय ने वर्ष 1953-54 में अपने शिखर को छुआ। इसकी तुलना में पिछले वर्ष यानी 1955-56 में 10 प्रतिशत की गिरावट दर्ज हुई। क्षेत्रीय आधार पर आँकड़ों के विश्लेषण से स्थापित हो जाता है कि देश की समृद्धि मुख्यत: कृषि पर निर्भर करती है। सिंचाई परियोजनाओं तथा कृषि विकास की योजनाओं पर भारी व्यय के बावजूद वर्ष 1955-56 में वर्तमान क़ीमतों के आधार पर शुद्ध घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान वर्ष 1950-51 की तुलना में कम रहा। 14.5 प्रतिशत तक यह कमी रही। वर्ष 1953-54 के शिखर स्तर से 21.1 प्रतिशत तक की यह गिरावट रही। योजना के दौरान कृषक की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। लघु उद्यमों के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। वर्ष 1950-51 की तुलना में वर्ष 1955-56 में इस क्षेत्र में केवल 5.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई। इस क्षेत्र में भी शिखर का स्तर 1953-54 में ही प्राप्त हुआ था। वर्ष 1954-55 एवं वर्ष 1955-56 की परिस्थितियाँ इनकी वृद्धि के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं हुईं। राष्ट्रीय उत्पादों में भी उनके योगदान में कुछ गिरावट आई।

खनन, फैक्टरी लगाने, रेलमार्ग एवं सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। इन क्षेत्रों में किस हिस्से में बढ़े उत्पादन के कारण एवं किस हिस्से में बढ़ी क़ीमतों के कारण वृद्धि हुई, इस बात का विश्लेषण होना चाहिए।

तालिका
कुल राष्ट्रीय उत्पाद 1948-49 की क़ीमतों पर

(रुपए करोड़ में)

	1950-51	1951-52	1952-53	1953-54	1954-55	1955-56	मद 2 की तुलना में मद 6 की प्रतिशत वृद्धि
1	2	3	4	5	6	7	8
1. कृषि, पशुधन और सहायक क्रियाएँ	4340	4440	4600	4980	5030	4980	14.7
2. खनन, निर्माण और लघु उद्यम	1480	1520	1580	1650	1700	1750	18.2
3. व्यापार परिवहन और संचार	1660	1730	1790	1830	1910	1970	18.6
4. अन्य सेवाएँ	1390	1430	1590	1570	1640	1720	23.7
5. शुद्ध घरेलू उत्पाद स्थायी लागत पर	8870	9120	9470	10030	10280	10420	17.5
6. प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पाद	246.3	250.1	256.6	268.7	271.9	272.1	10.5

*1955-56 के आँकड़े प्राथमिक अनुमान हैं।

स्रोत : केंद्रीय सांख्यिकी संगठन, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय आय के अनुमान।

तालिका

औद्योगिक स्रोतों से राष्ट्रीय आय

(वर्तमान क़ीमतों पर)

(रुपए =100 करोड़)

	1950–51	1951–52	1952–53	1953–54	1954–55	1955–56	मद 2 की तुलना में मद 6 की प्रतिशत वृद्धि
1	2	3	4	5	6	7	8
कृषि							
1. कृषि, पशुधन और सहायक क्रियाएँ	47.8	49.1	47.1	52.0	42.3	41.0	−14.2
2. जंगल	0.7	0.7	0.6	0.6	0.7	0.7	–
3. मत्स्य उद्योग	0.4	0.4	0.4	0.5	0.5	0.5	25.0
4 कृषि का कुल	48.9	50.2	48.1	53.1	43.3	42.2	−14.1
खनन, निर्माण, लघु उद्यम							
5. खनन	0.7	0.9	0.9	1.0	1.0	1.0	42.8
6. फ़ैक्टरी	5.5	6.4	6.4	6.9	7.5	8.1	47.3
7. लघु उद्यम	9.1	9.5	9.7	9.8	9.6	9.6	5.5
8. 5+6+7 का कुल	15.3	16.8	17.0	17.7	18.1	18.7	22.2

जारी...

शेष

1	2	3	4	5	6	7	8
व्यापार, परिवहन और संचार							
9. संचार (डाक, तार, दूरभाष)	0.4	0.4	0.4	0.4	0.4	0.4	–
10. रेल	1.8	2.1	2.0	2.0	2.2	2.4	33.3
11. संगठित बैंक और बीमा	0.7	0.8	0.7	0.8	0.8	0.8	14.3
12. अन्य व्यापार और परिवहन	14.0	14.6	14.7	14.8	14.7	14.9	6.4
13. 9+10+11+12 का कुल	16.9	17.9	17.8	18.0	18.1	18.5	9.4
अन्य सेवाएँ							
14. व्यवसाय और कला	4.7	5.0	5.2	5.3	5.4	5.6	19.1
15. सरकारी सेवाएँ (प्रशासन)	4.3	4.5	4.6	4.9	5.2	5.6	30.2
16. घरेलू सेवाएँ	1.3	1.4	1.3	1.4	1.4	1.4	7.7
17. भवन-संपत्ति	4.1	4.1	4.3	4.4	4.5	4.5	9.7
18. 14+15+16+17 का कुल	14.4	15.0	15.4	16.0	16.5	17.1	18.7
19. स्थायी लागत शुद्ध घरेलू उत्पाद	95.5	99.9	98.3	104.8	96.2	96.5	1.04
20. विदेशों से कमाई शुद्ध आय	–0.2	–0.2	–0.1	–0.0	0.0	0.0	–
21. राष्ट्रीय आय	95.3	99.9	98.2	104.8	96.2	96.5	1.2
22. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय	262.2	274.0	266.4	280.7	254.4	252.0	–4.6

नोट : 1955–56 के आँकड़े प्राथमिक अनुमान हैं।

यह भी स्पष्ट है कि सरकारी गतिविधियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिक केंद्रीकरण हुआ है, जिसके चलते संपत्ति एवं आय का भी अधिक संकेंद्रण होने की संभावना है। यह बढ़ी हुई विषमता का प्रतीक है। कृषि एवं लघु उद्यमों को छोड़कर सभी क्षेत्रों में वृद्धि बनी रही।

7

वित्त

पहली योजनावधि में सार्वजनिक वित्त का आकलन करना अच्छा रहेगा, क्योंकि इस अवधि में वित्त के विभिन्न स्वरूपों का मूल्यांकन दूसरी योजना की नीतियों की सफलता को प्रभावित करेगा।

योजना व्यय

योजना में 2,068.7 करोड़ का प्रारंभिक परिव्यय प्रस्तावित किया गया था, जिसे बाद में बढ़ाकर 2,377.7 करोड़ कर दिया गया। कुल परिव्यय लगभग 1,960 करोड़ तक रखा गया। केंद्र और राज्यों के बीच योजना परिव्यय के बँटवारे का वर्ष दर वर्ष का ब्योरा पृष्ठ 67 पर दी गई तालिका में दरशाया गया है। तालिका में देखा जा सकता है कि योजनावधि के पिछले दो सालों में योजना पर व्यय बहुत तेज़ी से बढ़ा है। पिछले वर्ष यानी 1955-56 में यह पहले वर्ष की तुलना में तीन गुना था। दरअसल कुल व्यय का 57 प्रतिशत व्यय इन्हीं दो वर्षों में हुआ था। इसकी तुलना में वर्ष 1952-53 में योजना परिव्यय में उससे पिछले वर्ष से केवल 3.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। वर्ष 1954-55 और 1955-56 के दौरान यह वृद्धि उससे पिछले वर्षों के दौरान हुए व्यय से क्रमशः 33.7 प्रतिशत और 40.1 प्रतिशत अधिक थी। यह वृद्धि उस काल की आर्थिक स्थिति के हिसाब से बिल्कुल उचित नहीं थी। यह हो सकता है कि बढ़ती बेरोज़गारी के लिए कीन्ज़ द्वारा दिए गए किसी समाधान को लागू करने के लिए सरकार ने व्यय में वृद्धि कर दी हो। उन्हें भारत की बेरोज़गारी के कारणों और पश्चिम के औद्योगिक देशों की बेरोज़गारी में फ़र्क समझ नहीं आया। रोज़गार की विकट समस्या को हल करने के बजाय सार्वजनिक व्यय में घाटे की वित्तीय व्यवस्था अपनाकर क़ीमतों में वृद्धि कर दी गई।

यह मानने की भी कुछ वजहें हैं कि पिछले दो वर्षों में व्यय बढ़ाने में राजनीतिक कारणों ने भी भूमिका निभाई है। आम चुनाव नज़दीक आ रहे थे और अधिकतर चुनाव

तालिका

योजना परिव्यय

(रुपए करोड़ में)

	1951–52 (खाते)	52–53	53–54	54–55	55–56 (सं अनु.)	कुल 51–56	योजना लक्ष्य मूल	योजना लक्ष्य संशोधित
केंद्र	132.1	125.4	181.3	383.6	392.5	1114.9	1233.7	1389.5
राज्य	127.3	142.2	161.7	172.3	274.0	897.5	835.0	988.2
कुल	259.4	267.6	343.0	575.9	666.5	2012.4*	2068.7	2377.7
पिछले साल की तुलना में प्रतिशत		+3.1	+28.1	+38.7	+40.05	—	—	—
कुल प्रतिशत	12.9	13.3	17.0	23.7	33.1	—	—	—

*1955–56 के आँकड़े संशोधित अनुमान हैं। वास्तविक परिव्यय 1960 करोड़ रुपए रहा है।

क्षेत्रों तथा निर्वाचित सदस्यों की तरफ़ से पंचवर्षीय योजना के बढ़िया परिणामों के प्रदर्शन की माँग हो रही होगी। हम जानते हैं कि सभी सरकारी विभागों में वित्तीय वर्ष का अंत आते-आते सारा पैसा ख़र्च कर दिया जाता है। यही मानसिकता पंचवर्षीय योजना के मामले में भी काम कर रही होगी। योजना को 'पंचवर्षीय बजट' के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं देखा जा सकता। आयोग ने इस बढ़े हुए व्यय को यह कहकर उचित ठहराया है कि तब तक अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न योजनाएँ अपनी गति पकड़ चुकी थीं। लेकिन ऐसा सही नहीं था, यह दूसरी योजना के दौरान जारी संकट से साफ़ होता है।

पिछले दो वर्षों के दौरान व्यय में भारी वृद्धि के बावजूद सभी मदों के अंतर्गत घाटा हुआ है। इसमें सबसे अधिक परेशान करनेवाला घाटा है—उद्योग (47%), सामुदायिक परियोजनाएँ और राष्ट्रीय विस्तारन योजना (36.3%), सामाजिक सेवाएँ (26.8%) और पुनर्स्थापना (28%) के क्षेत्र में। रिपोर्ट के अनुसार, 'नुक़सान का कारण या तो योजनाएँ शुरू होने में देरी रहा या क्रियान्वयन में अपर्याप्त प्रशासनिक एवं संगठनात्मक प्रबंधन।

निजी क्षेत्र

निजी क्षेत्र में इस अवधि के दौरान 232 करोड़ रुपए का अनुमानित व्यय हुआ, जो कि योजना में प्रस्तावित 233 करोड़ रुपए व्यय के सबसे नज़दीक था। सार्वजानिक क्षेत्र की भाँति निजी क्षेत्र में भी निवेश की गति तीसरे वर्ष के बाद ही बढ़ी। पहले दो सालों में इसका औसत 26 करोड़ रुपए रहा, परंतु तीसरे, चौथे और पाँचवें साल में यह क्रमश: 44 करोड़, 50 करोड़ और 85 करोड़ रुपए रहा। विभिन्न उद्योगों के विश्लेषित मूल्यों के आधार पर मूल्यांकन से पता चलता है कि खनिज उद्योगों और पेट्रोल परिष्करण दोनों क्षेत्रों में कुल निवेश का एक तिहाई लगाया गया। सूती उद्योग, चीनी, अभियांत्रिकी, काग़ज़ और काग़ज़ बोर्ड तथा विद्युत् ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण को छोड़कर सभी औद्योगिक समूहों में कुछ न कुछ घाटा देखा गया है।

चीनी उद्योग में योजना में निर्धारित निवेश के मुक़ाबले 50 गुना आधिक निवेश हुआ। सूती और कपड़ा उद्योग में भी निर्धारित निवेश से दुगने से अधिक का निवेश हुआ। इस उद्योग में यदि हम छोटे-मोटे विस्तारों, प्रतिस्थापन और आधुनिक योजनाओं को हिसाब में लें तो सबसे अधिक 80 करोड़ रुपए का निवेश इसी समूह में हुआ, जबकि योजना में इसके लिए 9 करोड़ रुपए का ही प्रावधान था।[1] 110 करोड़ रुपए आधुनिकीकरण और प्रतिस्थापन पर ख़र्च किया गया। यह योजना में प्रस्तावित 150 करोड़ रुपए से 40 करोड़ रुपए कम था। इसमें नुक़सान की वजहें विदेशों से मशीनों के आने में देरी या कमी और साथ ही योजनाओं को तर्कसंगत बनाने की प्रक्रिया के प्रति

मज़दूरों का संगठित विरोध भी हो सकती हैं।

तालिका

निजी क्षेत्र में निवेश वर्ष 1951-56 के दौरान

(करोड़ रुपए)

उद्योग का नाम	पहली योजना के अनुमान	1951-56 के दौरान अनुमानित निवेश
1. धातु एवं खनिज उद्योग (लोहा, अल्युमिनियम, सीसा आदि)	52.2	49.7
2. पेट्रोल परिशोधन	64.0	45.0
3. रसायन उद्योग (भारी रसायन, खाद, औषध आदि)	13.5	12.7
4. अभियांत्रिकी	18.0	22.4
5. सूती कपड़ा	9.0	20.0
6. चीनी उद्योग	0.1	5.0
7. रेशम कपड़ा उद्योग	14.5	5.0
8. सीमेंट	15.4	14.3
9. क़ाग़ज एवं बोर्ड	5.4	9.3
10. विद्युत् ऊर्जा उत्पादन	16.0	32.6
11. अन्य	25.2	13.9
कुल	233.3	232.9

औद्योगिक क्षेत्रों में इन निवेशों के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी निवेश हुआ है, उदाहरणतः निर्माण, भूमि सुधार, लघु उद्योग, ग्रामोद्योग और परिवहन। इनपर कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। कुछ अनुमान बेशक लगाए गए हैं। एक[2] अनुमान के अनुसार 1951-52, 52-53 और 53-54 के दौरान निजी क्षेत्र में शुद्ध कुल पूँजी निर्माण और उसके कारणों से हुआ निवेश क्रमशः 461 करोड़, 441 करोड़ और 443 करोड़ रुपए का रहा। बाद के वर्षों में निवेश के क्षेत्र में आई रफ़्तार को परे रखकर यदि हम औसत 450 करोड़ रुपए प्रति वर्ष निवेश का अनुमान लगाएँ तो पाँच वर्ष के काल में निजी क्षेत्र में कुल निवेश 2,250 करोड़ रुपए होना चाहिए। लेकिन योजना आयोग इस राशि को 1,600 करोड़ रुपए ही बताता है। निजी क्षेत्र में पूँजी खाते पर औसत व्यय लगभग

15,00 करोड़ रुपए है। इन दो राशियों को जोड़ा जाए तो पूरी योजना अवधि के दौरान अर्थव्यवस्था में 3,100 करोड़ रुपए का अनुमानित निवेश देखा जा सकता है। यदि अन्य अनुमानों को जोड़ा जाए तो यह राशि 700 करोड़ रुपए बढ़ जाएगी।

संसाधनों का एकत्रीकरण-आंतरिक

ऊपर वर्णित व्यय में दरशाए गए वित्तीय संसाधनों के एकत्रीकरण के विश्लेषण से पता चलता है कि योजना अवधि के अंत तक अर्थव्यवस्था कमोबेश पूरी तरह से दबाव में आ चुकी थी। पृष्ठ 71 पर दी गई *तालिका में केंद्र व राज्य सरकारों के वर्ष 1951-56 की योजना अवधि का बजट दिखाया गया है।

तालिका से पता चलता है कि बजटीय संसाधनों को छोड़कर बाक़ी संसाधनों के संबंध में योजना के अनुमान तय की गई सीमा से कहीं अधिक थे। विदेशी सहायता उम्मीदों से कहीं कम मिली। परिणामतः सरकार ने योजना में निर्धारित सीमा से कहीं अधिक घाटे की वित्तीय व्यवस्था अपनाई और इसे सुरक्षित माना। पाँचवें वर्ष में योजना का व्यय संशोधित अनुमानों से 53 करोड़ रुपए कम था, इसलिए वास्तविक घाटा लगभग 420 करोड़ रुपए का आँका गया। 1960 करोड़ रुपए के कुल व्यय के हिसाब से यह 21 प्रतिशत का घाटा है। हालाँकि सार्वजनिक वित्त के विशेषज्ञ घाटे की वित्तीय व्यवस्था और घाटे की सीमा तय करने के बारे में अलग-अलग राय रखते हैं, फिर भी 21 प्रतिशत को भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कोई सुरक्षित नहीं मानता। वास्तविक सीमा तो इससे भी अधिक देखी जाएगी, जब हम निजी क्षेत्र की भूमिका और उसके द्वारा लिये गए ऋण की भी गणना करेंगे। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा संसाधनों के एकत्रीकरण एवं उनकी सफलता का विस्तृत अध्ययन करने के लिए उनके वार्षिक बजट की गहराई से पड़ताल करनी पड़ेगी।

आगे की दो तालिकाएँ योजना के व्यय और केंद्र की पूँजी पावतियों और राज्यों के समेकित बजटीय खातों की जानकारी देती हैं। (देखें तालिका, पृष्ठ 72, 73, 74)

दोनों तालिकाओं का विश्लेषण करने से पता चलता है कि एक समय तक अतिरिक्त राजस्व और रेलवे से 420 करोड़ रुपए की आमदनी हुई, जो कि कुल व्यय का 38 प्रतिशत है। राज्यों को मिलनेवाली केंद्रीय मदद योजना में रखी गई मूल राशि से डेढ़ गुना अधिक थी। छोटी बचतों ने उम्मीद से अधिक भूमिका निभाई। 778 करोड़ रुपए के कुल बजटीय संसाधनों में, जिनमें केंद्र ने 350 करोड़ रुपए राज्यों को दिए और 203 करोड़ रुपए की बाहरी सहायता के चलते केंद्र को घाटे की वित्तीय व्यवस्था अपनानी पड़ी। पाँच साल के लिए यह राशि लगभग 428 करोड़ रुपए बनती है।

तालिका

1951-56 की योजना की वित्तीय व्यवस्था

(रुपए करोड़ में)

	1951-52 (खाते)	52-53	53-54	54-55 सं. अनु.	55-56	कुल	योजना 1951-56 मूल	संशोधित
योजना परिव्यय	**259.4**	**267.6**	**343.0**	**475.9**	**666.5**	**2012.4**	**2069.0**	
1. बजटीय योजना	204.8	141.3	246.1	368.6	316.5	1277.3	1258.0	
2. बाहरी सहायता	64.9	45.6	18.5	16.0	58.2	203.2	521.0	
3. घाटा	-10.3	80.7	78.4	91.3	291.8	531.9	290.0	

तालिका

पहली पंचवर्षीय योजना 1951-56 की वित्तीय व्यवस्था

केंद्र

(रुपए करोड़ में)

	1951-52	52-53 (खाते)	53-54	54-55	55-56 सं.अनु.	कुल 51-56	1951-56 योजना मूल	1951-56 योजना संशोधित
1. योजना पर परिव्यय	**132.1**	**125.4**	**181.3**	**283.6**	**392.5**	**1114.9**	**1233.7**	**1389.5**
1.1. आय खाता	4.9	7.5	16.8	30.0	58.6	117.8	N.A.	—
1.2. पूँजी खाता	127.2	117.9	164.5	253.6	333.9	997.1	—	—
2. बजटीय संसाधन	**151.6**	**84.1**	**93.0**	**222.5**	**226.4**	**777.6**	**726.0**	—
2.1. सार्वजनिक प्राधिकारियों की बचत								
2.1.1. चालू राजस्व से	119.0	42.2	20.9	63.0	59.6	304.6	160.0	—
2.1.2. रेलवे से	37.7	23.5	12.8	19.5	93.5	115.4	170.0	—
2.2. निजी बचतों द्वारा								
2.2.1. ऋण	(-) 34.2	(-) 0.9	(-) 37.2	87.0	34.3	49.0	36.0	—
2.2.2. छोटी बचतें और अपव्ययी ऋण	48.6	48.7	53.0	70.5	82.8	303.6	270.0	—

2.2.3. विविध जमा, निधि, स्रोत	(–) 19.5	(–) 29.3	43.5	(–) 16.7	28.8	6.8	90.0	—
3. निधि अंतरण केंद्र से राज्यों को (केंद्र सहायता)	(–) 29.1	(–) 35.2	(–) 57.4	(–) 100.3	(–127.7)	(–) 349.7	(–) 235.6	—
4. कुल संसाधन (2 + 3)	**122.5**	**48.9**	**35.6**	**122.2**	**98.7**	**427.9**	**490.4**	—
5. संसाधनों में अंतर	9.6	76.5	145.7	161.4	293.8	687.0	743.3	—
6. बाहरी सहायता	**64.9**	**45.6**	**18.5**	**16.0**	**58.2**	**203.2**	—	—
6.1. अनुदान	4.0	12.0	17.0	15.3	49.0	97.3	—	—
6.2. ऋण	60.9	33.6	1.5	0.7	9.2	105.9	—	—
7. घाटा	**(–) 55.3**	**30.9**	**127.2**	**145.4**	**235.6**	**483.8**	—	—
7.1. ऋण में वृद्धि अल्पकालीन	(–) 32.2	(–) 17.1	19.4	136.8	240.0	346.9	—	—
7.2. प्रतिभूतियों की बिक्री	(–) 22.2	(–) 15.6	46.2	3.1	13.7	25.2	—	—
7.3 नकदी संतुलन से निकासी	(–) 0.9	63.6	61.6	5.5	(–) 18.1	111.7	—	—

तालिका
राज्य

(रुपए करोड़ में)

	1951–52	52–53 (खाते)	53–54	54–55	55–56 सं. अनु.	कुल 51–56	योजना 1951–56 मूल	संशोधित
1. योजना परिव्यय	127.3	142.2	161.7	192.3	274.0	897.5	835.0	988.2
1.1. आय खाता	68.7	72.2	80.1	84.9	118.2	424.1		
1.2. पूँजी खाता	58.6	70.0	82.6	107.4	155.8	473.4		
2. बजटीय संसाधन	53.2	57.2	153.1	146.1	90.1	499.7	531.5	
2.1. आय खाता	64.0	56.7	65.8	60.7	22.5	269.7	409.7	
2.2. सार्वजनिक खाता	11.4	16.6	39.6	32.7	55.1	155.4	79.0	
2.3 जमा और विविध पूँजी खाते पर पावतियाँ	−22.2	−16.1	47.7	52.7	12.5	74.6	42.8	
3. केंद्रीय सहायता	29.1	35.2	57.4	100.3	127.7	349.7	235.6	
4. कुल संसाधन (2 + 3)	82.3	92.4	210.5	246.4	217.8	849.4	767.1	
5. संसाधनों में अंतर	45.0	49.8	−48.8	54.1	56.2	48.1	67.9	
6. अंतर पूरा करना								
6.1. अस्थायी ऋणों में वृद्धि	−0.3	21.7	−4.2	−3.5	7.4	21.1		
6.2. आरक्षित प्रतिभूतियों की बिक्री	30.9	34.4	−26.0	−35.5	6.4	10.2		
6.3. नकदी संतुलन से निकासी	14.4	−6.3	−18.6	−15.1	42.4	16.8		

राज्य अपने राजस्व खातों से केवल 269.7 करोड़ रुपए की अतिरिक्त आय पा सके। उम्मीदों और उपलब्धियों में बहुत बड़ा अंतर है। परंतु केंद्रीय सहायता और ऋण से प्राप्त पावतियों और अन्य पूँजी खातों से वे अपने बजट को कमोबेश संतुलित कर पाए। वर्ष 1955-56 में संशोधित अनुमानों के आधार पर दरशाया गया 48 करोड़ रुपए का घाटा वास्तविक खातों के बाद तो साफ़ ही हो गया।

योजना के दौरान कराधान—पहली पंचवर्षीय योजना में अनुमान लगाया गया था कि 1951-56 की अवधि में चालू राजस्व और रेलवे से क्रमश: 568 करोड़ एवं 170 करोड़ रुपए का हिस्सा आएगा। केंद्र का हिस्सा 160 करोड़ रुपए तक आँका गया था। यह अनुमान लगाया गया था कि योजनापूर्व अवधि में आयात करों और आय करों के बक़ाया से अप्रत्याशित पावतियों के चलते केंद्र के लिए अपना राजस्व अतिरिक्त बढ़ाना संभव नहीं होगा। इन उम्मीदों के बावजूद केंद्र अपने लक्ष्य से 145 करोड़ रुपए ऊपर जा चुका है। यह जानना दिलचस्प होगा कि जैसे-जैसे योजना आगे बढ़ती गई, कुल कर राजस्व में जिंसों पर करों का हिस्सा प्रत्यक्ष करों की तुलना में बढ़ गया। वर्ष 1951-52 कोरियाई उछाल और केंद्र के खाते में 459.99 करोड़ रुपए का कर राजस्व आने के संदर्भ में काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा। इनमें 90.7 करोड़ रुपए का निर्यात कर तथा 141.50 करोड़ का आयात कर शामिल था, उस वर्ष आय पर 187.60 करोड़ रुपए का कर था, जिसमें राज्यों का हिस्सा 52.86 करोड़ रुपए रहा जबकि जिंसों पर करों से 320.44 करोड़ रुपए का राजस्व प्राप्त हुआ।

यह महत्त्वपूर्ण है कि पिछले दो सालों में जैसे ही योजना के परिव्यय में वृद्धि आई, करों से प्राप्त राजस्व में आय पर कर केवल 25.8 प्रतिशत और 26.4 प्रतिशत था। जबकि वर्ष 1952-53 में वह 33 था। आय कर राजस्व वर्ष 1951-52 में 134.74 करोड़ रुपए से 1954-55 में घटकर 103.64 करोड़ रुपए और 1955-56 में 113.23 करोड़ रुपए हो गया। इसके विपरीत जिंसों पर वर्ष 1953-54 में कर 253.93 करोड़ रुपए से बढ़कर 1954-55 में 293.31 करोड़ तथा आगे वर्ष 1955-56 में 312.26 करोड़ रुपए हो गया जबकि निर्यात कर वर्ष 1951-52 के 141.59 करोड़ रुपए से गिरकर वर्ष 1955-56 में 37.76 करोड़ रुपए हो गया। वर्ष 1954-55 के दौरान केंद्रीय उत्पाद शुल्क में काफ़ी वृद्धि हुई। समीक्षा के अनुसार, 'इस समय तक योजना में काफ़ी वृद्धि हुई थी और परिव्यय को जितना संभव हो उतना शीघ्र बढ़ाया जाना था, ताकि योजना पूर्ण हो सके। वर्ष 1954-55 में 11 करोड़ रुपए का अतिरिक्त कर लगाया गया और अगले साल इसे 17 करोड़ तक बढ़ा दिया गया। पाँच साल की अवधि में केंद्र को करों पर अतिरिक्त आय से कुल मिलकर 175 करोड़ रुपए प्राप्त हुए।

रेलवे की भूमिका

विकास कार्यों में रेलवे का हिस्सा 170 करोड़ रुपए तक का आँका गया था, परंतु यह केवल 115 करोड़ रुपए तक रहा। इसमें मूल्यह्रास फंड का 165 करोड़ रुपए भी जोड़ दिया जाना चाहिए। योजना अवधि के दौरान पहले वर्ष 1951-52 और फिर वर्ष 1955-56 में मालभाड़ा और किराया भी बढ़ा दिया गया। वर्ष 1952-53 के दौरान मालभाड़ा में कुछ समायोजन किया गया। इससे हुई वृद्धि से पाँच साल की अवधि में 100 करोड़ रुपए का इज़ाफा हुआ।

रेल से आमदनी

इसमें वर्ष 1952-53 में 259.84 करोड़ रुपए की वृद्धि 1955-56 तक 316.33 करोड़ रुपए की बढ़ोतरी तक पहुँच गई। वर्ष 1952-53 की अवधि में कुछ मंदी आई थी। यात्री तथा कोचों से हुई आमदनी में हलकी गिरावट आई थी। लेकिन माल आवाजाही में आई तेज़ी ने इस गिरावट की कुछ क्षतिपूर्ति की। सक्रिय ख़र्चों में वर्ष 1951-52 में 198.09 करोड़ रुपए से वर्ष 1955-56 में 256.99 करोड़ रुपए की वृद्धि आई जबकि पूरे समय बचत के बजट बने, फिर भी आनेवाले वर्षों में 28.34 करोड़ रुपए का स्तर नहीं हासिल किया जा सका। यह स्पष्ट है कि रेलवे बढ़ी हुई दरों से लाभ दर्ज करा रही है। पहली योजना में दरों की वृद्धि का कोई प्रावधान नहीं था। कमीशन ने कहा था, 'यह (भारतीय रेल) दुनिया की कुछ ही ऐसी रेल व्यवस्थाओं में से है, जो सभी निर्धारित प्रभारों को पूरा करने के लिए आमदनी पैदा करने की क्षमता रखती है, साथ ही विकास तथा रिज़र्व फंड के लिए भी मोटी रक़म दे सकती है। इसका प्रमुख कारण हाल के वर्षों में यात्रियों की तादाद एवं माल की आवाजाही में हुई वृद्धि में देखा जा सकता है, साथ ही वर्ष 1948 में लागू किराया एवं भाड़े की संरचनाओं को युक्तिसंगत करना भी इसका कारण रहा। यह भी देखा जाएगा कि जहाँ क़ीमतें गिर रही थीं, रेल के किराए बढ़ रहे थे। चाहे क़ीमतों में बढ़ोतरी भी हो रही हो, तब भी जन सुविधाओं की सेवाओं में, जोकि लोगों की पैसा देने की क्षमता से निर्धारित होती हैं, वृद्धि नहीं होनी चाहिए। पहली योजना में सक्रिय ख़र्चों को नीचे लाने की इच्छा ज़ाहिर की गई थी। इसके पृष्ठ 467 पर लिखा है, 'रेलवे की नीति सक्रिय ख़र्चों को क्षमता और सेवाओं के उचित स्तर के मुताबिक़ निम्नतम रखने की होनी चाहिए, ताकि विकास कार्यक्रमों के लिए अनिवार्य अतिरिक्त पैसा जुटाया जा सके।' जैसा कि हम पहले देख चुके हैं'' सक्रिय ख़र्च नीचे आने की बजाय 35% बढ़ गया। यहाँ तक कि रेलवे के पुनर्संगठन के बाद भी प्रशासनिक मद के तहत, जहाँ कुछ मितव्ययिता दिखाई जानी चाहिए थी, वर्ष 1951-52 के स्तर से 28% की वृद्धि हुई।

राज्य—वित्त आयोग (1951-52) द्वारा राज्यों को 80 करोड़ रुपए प्रदान करने

के बावजूद राजस्व से उनके योगदान में 34% की भारी कमी आई है। आयोग ने हमेशा यह अनुभव किया था कि राज्य की तरफ़ से अतिरिक्त कर राजस्व बढ़ाने के प्रयास नहीं हो रहे हैं। पाँच साल के दौरान राज्यों से अतिरिक्त कराधान के लिए 230 करोड़ रुपए का लक्ष्य रखा गया था। उपलब्धि के नाम पर केवल 80.4 करोड़ रुपए का ही लक्ष्य प्राप्त हुआ है। आगे की तालिका में प्रत्येक राज्य के लिए योजना के लक्ष्यों और उपलब्धियों को दिखाया गया है।

तालिका

राज्यों में अतिरिक्त कराधान

(रुपए करोड़ में)

राज्य	पंचवर्षीय	उपलब्धियाँ 1951–56	
	लक्ष्य	वास्तविक	प्रतिशत
1. आसाम	3.5	3.3	94.3
2. बिहार	7.3	3.0	41.1
3. बंबई	23.5	24.0	102.1
4. मध्य प्रदेश	10.6	2.3	21.7
5. मद्रास (आंध्र समेत)	39.3	8.0	20.4
6. उड़ीसा	9.4	2.0	21.3
7. पंजाब	5.0	4.5	90.0
8. पं. बंगाल	36.9	4.5	12.2
9. उत्तर प्रदेश	50.0	11.0	21.9
10. हैदराबाद	7.4	1.0	13.5
11. मध्य भारत	4.9	2.7	55.1
12. मैसूर	9.2	3.0	32.6
13. पेप्सू	4.1	0.4	9.8
14. राजस्थान	3.3	2.6	78.8
15. सौराष्ट्र	4.7	2.1	44.7
16. त्रावणकोर कोचीन	11.0	6.0	54.5
कुल	230.3	80.4	34.9

देखा जा सकता है कि बंबई ने न केवल लक्ष्य पूरा किया बल्कि 0.5 करोड़ रुपए अधिक का स्तर हासिल किया। आसाम और पंजाब ने भी लक्ष्य क़रीब-क़रीब हासिल

किया। अन्य राज्यों में भारी अंतर देखने को मिलता है। पेप्सू,पश्चिम बंगाल और हैदराबाद ने अतिरिक्त कर बढ़ने के बहुत कम प्रयास किए, वहीं उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मद्रास भी इस पायदान पर नीचे ही रहे। हालाँकि इन राज्य सरकारों पर कोई आरोप लगाना संभव नहीं है, क्योंकि लक्ष्यों का निर्धारण योजना आयोग ने मनमाने ढंग से किया था। उनका निर्धारण राज्यों की कर देने की क्षमता के किसी गहरे अध्ययन पर आधारित नहीं था। न तो वर्तमान कराधान की संरचना और न ही राज्यों की ज़रूरतों को ध्यान में रखा गया था। दूसरे, कुछ राज्यों को उस समय के करों की बढ़ी हुई वसूली से अतिरिक्त राजस्व की प्राप्ति हुई थी, लेकिन तुलनात्मक रूप से देखें तो इस समायोजित अतिरिक्त राजस्व से कहीं अधिक वृद्धि तो अनियोजित और ग़ैर-विकासपरक व्यय में हो गई। योजनापूर्व वर्ष 1951-52 में राज्यों का करों से राजस्व 226.84 करोड़ रुपए था। 1955-56 तक यह धीरे-धीरे बढ़कर 349.53 करोड़ रुपए (संशोधित अनुमानित) हो गया। यह वृद्धि 51.4% से अधिक रही। पाँच वर्षों की अवधि में सभी राज्यों के राजस्व खातों की कुल कर एवं ग़ैर कर पावतियों में इज़ाफा हुआ है जबकि राजस्व की वृद्धि का बहुत बड़ा हिस्सा ग़ैर-विकासपरक व्यय में चला गया है। परिणामत: लोगों के त्याग के बावजूद विकास की योजनाएँ राजस्व अधिशेष से नहीं चलाई जा सकीं। घाटे की वित्तीय व्यवस्था का सहारा लेकर लोगों पर भारी बोझ डाला गया। ग़ैर-विकासपरक व्यय 1951-52 के 196.47 करोड़ रुपए के स्तर से बढ़कर 1955-56 में 296.97 करोड़ रुपए (संशोधित अनुमानित) तक पहुँच गया। इसके अतिरिक्त अनियोजित विकास के उपायों पर भी भारी व्यय हुआ है। इस मद के तहत व्यय का बढ़ना राज्यों और योजना चलाने वालों के बीच समन्वयन की कमी को दरशाता है।

तालिका

ग़ैर योजना विकास व्यय

(रुपए करोड़ में)

वर्ष	राशि
1951-52	132.4
1952-53	142.4
1953-54	156.9
1954-55	190.8
1955-56 (संशोधित अनुमान)	249.4
1951-56 कुल	871.1

अब इसकी तुलना पूरी योजनावधि में राज्यों और केंद्र द्वारा हुए 3,434 करोड़ रुपए के कुल विकासपरक व्यय से की जाए। यह कुल का 25% है। राज्यों का कुल योजना व्यय लगभग 897.5 करोड़ रुपए रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यों ने योजना के बाहर भी उतना ही ख़र्चा किया जितना योजना पर। कुछ राज्यों ने खासतौर पर भारी व्यय किया। मध्य प्रदेश द्वारा 1951-56 के दौरान 72 करोड़ रुपए के विकासपरक राजस्व में से केवल 24.48 करोड़ रुपए योजना परिव्यय के रूप में ख़र्च हुए। उड़ीसा में वर्ष 1951-52 के दौरान योजना के बाहर का विकासपरक व्यय 4.4 करोड़ रुपए था। वर्ष 1955-56 तक धीरे-धीरे यह बढ़कर 12.5 करोड़ रुपए हो गया। पंजाब में वर्ष 1951-52 में यह 5.5 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्ष 1955-56 में 12.2 करोड़ रुपए हो गया। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल के मामले में यह व्यय वर्ष 1951-52 के 11 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्ष 1954-55 में 17.4 करोड़ रुपए और वर्ष 1955-56 में 23 करोड़ रुपए तक पहुँच गया। राजस्थान में यह बढ़ोतरी वर्ष 1951-52 के 6.0 करोड़ रुपए के स्तर से वर्ष 1955-56 में 11.6 करोड़ रुपए तक पहुँच गई।

अतिरिक्त कराधान—पहली पंचवर्षीय योजना में यह माना गया था कि अतिरिक्त कराधान से नीचे दरशाई गई राशि अवश्य कमाई जाएगी। इन उपायों से 165.0 करोड़ रुपए ही उपलब्ध होने थे। 67 करोड़ रुपए की राशि के लिए राज्यों को अन्य रास्ते खोजने थे।

तालिका

(रुपए करोड़ में)

1.	भूमि पर कराधान द्वारा आय (भूमि से आय और कृषि पर आय कर आदि)	34.0
2.	पूँजी अंतरण यानी संपत्ति पर शुल्क	21.3
3.	सामान्य व्यावसायिक क्रियाओं पर कराधान (बिक्री शुल्क)	25.5
4.	अन्य विविध स्रोतों से आय (विलासिता की चीज़ों पर कर भी शामिल)	37.5
5.	सिंचाई से आय (सिंचाई क़ीमतें और बेहतरी के लिए उगाही)	29.5
6.	राज्य की व्यावसायिक गतिविधियों से आय (जंगल, विद्युत् और खनिज)	4.8
7.	ग़ैर-विकासीय व्यय व्यवस्था से आय	12.4
	कुल	165.0

67 करोड़ रुपए के बक़ाया को पूरा करने के तरीक़े योजना का आकार तय करते समय निश्चित नहीं किए गए थे। हालाँकि राज्य सरकारों ने नई योजनाओं के लिए संसाधन खोजने के लिए अपनी सहमति दी थी। वास्तविक उपलब्धि इस प्रकार रही—

तालिका

(रुपए करोड़ में)

1. भूमि पर कर	5.4
2. मोटर वाहन कर	9.3
3. सामान्य बिक्री कर	31.8
4. मोटर स्पिरिट पर कर	6.0
5. तंबाकू, सिगरेट, सिगार पर कर	1.4
6. भवन कर	2.0
7. शहरी क्षेत्रों में संपत्ति के अंतरण पर कर	1.1
8. सार्वजनिक परिवहन के यात्रियों पर अधिभार	5.3
9. विविध	9.1
10. सिंचाई शुल्क	6.0
11. विद्युत् कर	3.0
कुल	80.4

वर्ष 1950-51 के अंतिम खातों में सभी राज्यों के राजस्व खातों में 1.7 करोड़ रुपए का घाटा दिखाया गया है।[3] इसी आधार पर योजना आयोग को लगा कि राज्यों को उस मात्रा में अतिरिक्त संसाधन जुटाने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि पहले अनुमान लगाया गया था, बशर्ते कि योजना में निहित प्रशासनिक और विकासपरक मदों जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर व्यय मूल अनुमानों से अधिक न हों। लेकिन न तो राज्य ही, जो पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा पाए और मदद के लिए केंद्र का मुँह ताक़ते रहे और न ही केंद्र अपनी सीमाओं में रह पाए। निःसंदेह कर और ग़ैर कर राजस्व बढ़ा, परंतु प्रशासनिक, विकासपरक योजना और अनियोजित मदों की बढ़ती माँगों के साथ गति नहीं पकड़ सका।[4]

सभी राज्यों का ग़ैर-विकासपरक ख़र्च वर्ष 1951-52 के 196.47 करोड़ रुपए से वर्ष 1955-56 में 269.97 करोड़ रुपए तक बढ़ गया।[5] कुछ मदों के तहत ग़ैर विकासपरक

3. इंडिया एट ए ग्लांस 1953, पृष्ठ 383।
4. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 56।
5. रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया बुलेटिन, अगस्त 1957, पृष्ठ 746।

ख़र्चों में बढ़ोतरी सरकारी रुझानों की ओर इंगित करती है। राजस्व पर प्रत्यक्ष माँग में वर्ष 1951-52 के 26.94 करोड़ रुपए की तुलना में वर्ष 1955-56 में 48.50 करोड़ रुपए तक की वृद्धि देखी गई, जो 84.6 प्रतिशत की वृद्धि थी।

सूखा राहत में वर्ष 1951-52 के 3.99 करोड़ रुपए की माँग से आनेवाले वर्ष में क्रमश: 7.37 करोड़, 6.45 करोड़, 8.85 करोड़ और 18.31 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई, जो कि पंचवर्षीय योजना के 'खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी और भीषण खाद्य संकट' रोकने के दावे को झुठलाती है। जन अधिकारियों द्वारा ऋण एवं उधार राशियों में भी इज़ाफा हुआ है। आनेवाले वर्षों में इसमें और भी वृद्धि देखी जाएगी।

यह जानना दिलचस्प रहेगा कि राज्य अधिक-से-अधिक केंद्रीय सहायता पर निर्भर होते जा रहे हैं। यह सहायता राशि राज्यों के व्यय का एक बहुत बड़ा प्रतिशत है। देखें तालिका पृष्ठ 83।

दूसरे वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के चलते राज्यों को संसाधन उपलब्ध करने में केंद्र की भूमिका और बढ़ जाएगी। अंतरण योजना के तहत हर साल राज्यों को केंद्र से लगभग 140 करोड़ रुपए उपलब्ध कराए जाते हैं। इसमें पूँजी परियोजनाओं के लिए ऋण तथा अन्य अनुदान शामिल नहीं हैं। ऐसा माना जाता है कि राज्यों ने अपने संसाधनों को पूरी तरह नहीं जुटाया और केंद्रीय सहायता के आधार पर ही साल-दर-साल अपने घाटे के बजट को संतुलित करने की कोशिश करके बहुत ग़ैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार किया है। जैसा हमने पहले देखा है, राज्यों के बढ़ते कर राजस्व का विश्लेषण इस बात की पुष्टि नहीं करता है।

जहाँ तक राजस्व पावतियों का संबध है, यदि एक अवधि तक केंद्र के राजस्व एवं कुल राजस्व की राज्यों से तुलना करेंगे तो राज्यों का प्रदर्शन बुरा नहीं है। वर्ष 1951-52 में भारत सरकार का कर राजस्व 459.99 करोड़ रुपए था, जबकि वर्ष 1955-56 के खाते इसे 428.04 करोड़ रुपए तक दिखाते हैं। इस प्रकार इसमें घाटा देखा जा सकता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, राजस्व की बढ़ोतरी मुख्यत: सीमा शुल्कों के कारण हुई जोकि कोरियाई उछाल के बाद नीचे आ गई। वर्ष 1953-54 में इसका स्तर 363.28 करोड़ रुपए पर आ गया, लेकिन बाद में यह चढ़ना शुरू हो गया।[6] इसकी तुलना वित्त आयोग द्वारा दिखाए गए राज्यों के राजस्व से कीजिए। इसके अनुसार, 'राज्यों के कुल राजस्व में केंद्रीय अनुदान, विभाजीय केंद्रीय कर राजस्व और आरक्षित निधि में से अंतरणों को छोड़ दिया जाए तो महत्त्वपूर्ण वृद्धि देखी जा सकती है। वर्ष 1951-52 में 332 करोड़ रुपए से यह वर्ष 1955-56 में 415 करोड़ रुपए तक पहुँच

6. रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया : रिपोर्ट ऑन करेंसी एंड फाइनेंस,1956-57, पृष्ठ 175।

गया। इसमें से भू-राजस्व का 30 करोड़ का हिस्सा है। वर्ष 1951-52 से पूर्व इस मद के तहत 20% से कम की हिस्सेदारी थी। वर्ष 1955-56 के मुख्य मदों से राजस्व में यह हिस्सा 25% से ऊपर पहुँच गया। अकेले उत्तर प्रदेश में वर्ष 1951-52 के दौरान भू-राजस्व 7.58 करोड़ रुपए से 1955-56 में 19.61 करोड़ तक पहुँच गया। 1951-52 में यह राज्यों के कुल राजस्व का 14.7% था, जो 1955-56 में बढ़कर 24.5% हो गया। इससे पहले वर्ष 1953-54 में यह 27.9% था और इससे 20.17 करोड़ रुपए प्राप्त हुए। पाँच साल की योजना अवधि में राज्य करों से पावतियों की राशि वर्ष 1950-51 के पाँच गुना स्तर से भी 49.1 करोड़ रुपए अधिक थी। इसमें 41.5 करोड़ की वृद्धि ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति के कारण भू-राजस्व से आई राशि के कारण हुई।

तालिका

केंद्र से राज्यों की ओर संसाधनों का अंतरण

(रुपए करोड़ में)

वर्ष	केंद्र से उपलब्ध संसाधन				राज्यों का व्यय			प्रतिशत	
	सहभागी कर	अनुदान	ऋण	कुल	आय खाता	पूँजी खाता*	कुल	2+3 से 6 का	5 से 7 का
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1951–52	52.9	33.9	73.3	160.1	392.7	151.3	544.0	22.1	29.4
1952–53	73.8	36.0	111.7	221.6	417.0	155.5	572.5	26.3	38.7
1953–54	72.8	45.3	154.7	272.8	448.2	176.8	625.0	26.3	43.6
1954–55	71.6	51.4	220.7	343.7	495.6	205.9	701.5	24.8	49.0
1955–56	73.6	97.7	261.7	433.0	605.1	342.3	947.4	28.3	45.7

राज्यों के समर्थन में कुछ भी कहा जाए, लेकिन इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि संसाधन जुटाने और व्यय करने के क्षेत्र में संयुक्त ज़िम्मेदारी की भावना होनी चाहिए। पहली योजना में संघीय वित्तीय कार्यप्रणाली को सामने लाया गया है। पहला वित्त आयोग राज्यों को साझा करों और अन्य अनुदानों के अंतरण में उदार था। पाँच साल की अवधि में उसकी सिफ़ारिशों का अर्थ था—राज्यों को 80 करोड़ रुपए का अतिरिक्त हस्तांतरण। द्वितीय वित्त आयोग ने भी उदारवादी दृष्टिकोण अपनाकर राज्य के बजटों में संतुलन स्थापित करने के लिए और पैसा देने के सुझाव दिए थे।

देखना होगा कि लक्ष्य कहाँ तक प्राप्त होगा। निश्चित तौर पर वित्त आयोग की सिफ़ारिशें, चाहे पाँच वर्ष की अवधि के लिए ही सही, एक बढ़ती और गतिशील अर्थव्यवस्था की माँग को पूरी नहीं कर सकतीं। वर्तमान व्यवस्था में समान हिस्से की माँग पूरी नहीं हो रही है। विभिन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति राजस्व एवं व्यय के आँकड़ों में भारी विभिन्नताएँ हैं। इस अंतर को आगे तालिका में दिखाया गया है।

तालिका

1951-56 तक पहली योजावधि राज्यों का राजस्व एवं व्यय

राज्य	राजस्व	प्रति व्यक्ति राजस्व	व्यय	प्रति व्यक्ति व्यय
1. आंध्र (a)	54.14	10.6	65.49	12.8
2. आसाम	78.18	17.4	80.74	18.0
3. बिहार	165.31	8.2	184.45	9.2
4. बंबई	353.22	19.6	332.89	18.5
5. हैदराबाद	136.34	14.6	126.94	13.6
6. मध्य भारत	68.85	17.2	68.16	17.2
7. मध्य प्रदेश	124.62	11.8	119.26	11.3
8. मद्रास	234.10(b)	11.5	252.69(b)	12.4
9. मैसूर	81.11	17.1	78.98	16.6
10. उड़ीसा	66.95	9.2	72.38	9.9
11. पेप्सू	35.95	20.5	35.38	20.0
12. पंजाब	102.30	16.2	93.69	14.9
13. राजस्थान	98.04	12.8	92.42	12.1
14. सौराष्ट्र	53.83	26.3	56.45	27.5
15. त्रावणकोर-कोचीन	87.56	18.8	74.46	16.0

16. उत्तर प्रदेश	336.21	10.6	309.21	9.8
17. पं. बंगाल	205.62	16.6	228.33	18.4
18. जम्मू और कश्मीर	25.28	11.5	24.46	11.1
19. अजमेर	8.29	27.7	8.80	25.1
20. भोपाल	11.53	28.8	12.16	30.4
21. कूर्ग	4.83	48.3	4.94	49.4
22. विंध्य प्रदेश	19.12	10.6	19.19	10.7
23. कच्छ	1.96	6.5	5.49	10.3
कुल	2,353.34	13.4	2,347.06	13.4

(अ) प्रस्तुत आँकड़े 1 अक्तूबर, 1953 से लेकर ढाई वर्ष के लिए हैं।
(ब) वर्ष 1951-52 और वर्ष 1952-53 के आँकड़े एकीकृत राज्य के लिए हैं। वर्ष 1953-54 और पिछले छह महीनों तथा वर्ष 1954-55, वर्ष 1955-56 के आँकड़े आंध्र से अलग होने के बाद के हैं।
नोट : प्रति व्यक्ति राजस्व एवं व्यय उस अवधि का वार्षिक औसत है।
स्रोत : वित्त आयोग, 57 की रिपोर्ट।

एकल वित्तीय व्यवस्था की ज़रूरत—अन्य आवश्यकताओं से परे, केवल वित्तीय कारणों से, हमें लगता है कि एकात्मक सरकार की आवश्यकता है। मद्रास विश्वविद्यायालय के प्रोफेसर आर. बालकृष्ण संघीय वित्त व्यवस्था की समस्या पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि ''संघीय वित्त व्यवस्था की अनसुलझी समस्याएँ हैं। इनका हल आसान नहीं है। संघीय व्यवस्था में वास्तविक संसाधनों के हस्तांतरण के बिना समान हिस्सेदारी आसान नहीं और हस्तांतरण के कारण संसाधनों के नियोजन की व्यवस्था में परिवर्तन लाना पड़ेगा। इसी प्रकार से पुनर्वितरण का सिद्धांत संघीय संवैधानिक व्यवस्था की बलि नहीं चढ़ाया जा सकता।

एक आसान और मूलभूत समाधान होगा—एकात्मक राज्य की स्थापना। हालाँकि यह समाधान अव्यावहारिक और पराजयवादी होगा, फिर भी यह मज़बूत तर्क से परे नहीं है। जिस समय अर्थव्यवस्था के एकीकरण की बात ज़ोर पकड़ रही हो, देश को स्वायत्त आर्थिक अधिकार क्षेत्रों में बाँटना तर्क से परे है। दूसरे, सरकार के कार्यकलापों में भी वृद्धि हुई है। खासतौर पर ग़ैर लाभकारी सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में। इससे वास्तविक संसाधनों के हस्तांतरण में वृद्धि होगी और इस प्रक्रिया को एकात्मक राज्य द्वारा सबसे उत्तम ढंग से पूरा किया जा सकता है।''

सार्वजनिक उधारियाँ—पहली योजना में सार्वजनिक उधारियों और अन्य पूँजी पावतियों के प्रति अनुमान वास्तविक नहीं थे। किसी भी दिशा में नतीजे देखें तो बहुत विभिन्नताएँ थीं। निम्न मदों के अंतर्गत उपलब्धियाँ और लक्ष्य इस प्रकार थे :

तालिका

(रुपए करोड़ में)

	कुल 1951–56	योजना लक्ष्य
1. ऋण	204.4	115.0
2. छोटी बचतें	237.2	225.0
3. अवित्त पोषित ऋण	66.4	45.0
4. अन्य पूँजी पावतियाँ	79.6	132.7

इस अवधि के दौरान छोटी बचतों में सुधार आता रहा। योजना के लक्ष्य और उपलब्धियों में खास अंतर नहीं है। बाज़ार ऋणों में आशातीत प्रतिक्रियाएँ दिखाई दीं। लेकिन सरकार तीसरे और चौथे वर्ष में ही बड़ी संख्या में निर्गमों को जारी करने की सोच पाई। पहले तीन साल नए ऋणों के मुक़ाबले वापसी 5 करोड़ रुपए अधिक रही। वर्ष 1954–55 में केंद्र ने 159 करोड़ रुपए का संयुक्त ऋण जारी किया। वर्ष 1955–56 में केंद्र और राज्य ने मिलकर 147.50 करोड़ रुपए का ऋण जारी किया। इन दो वर्षों में शुद्ध उधारियाँ 110.61 करोड़ रुपए और 82.02 करोड़ रुपए थी। युद्ध के बाद शुरू हुई प्रतिभूतियों के परिशोधन की प्रक्रिया वर्ष 1953–54 तक चलती रही। कोरिया युद्ध की शुरुआत और उससे उपजे अर्थव्यवस्था के उछाल ने काफी लोगों में पैसा जोड़ने की बजाय वस्तुओं को जोड़ने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। जिन नियंत्रणों के चलते अभाव की मानसिकता पनपी थी, उसकी जगह अब वस्तु संग्रहण ने ले ली। जैसे ही बाज़ार में विनियंत्रण और विपुलता लौटी, पैसा व्यापार चैनलों से निकलकर उत्पादक निवेश में लगना शुरू हो गया। यह वह काल था, जब सरकार न सिर्फ़ बाज़ार से पैसा निकाल पाई बल्कि काफी पैसा निजी क्षेत्र में भी लगा पाई। नियंत्रण न तो निजी निवेश के लिए अच्छा है, न ही सार्वजनिक उधारियों के लिए। बड़े सार्वजनिक व्यय, मुख्यतः वित्तीय घाटे से पूँजी को आसानी से उपलब्ध कराने में सहायक सिद्ध हुए होंगे, लेकिन मुख्य कारण था युद्ध से उत्पन्न मुद्रास्फीति की संभावना अब स्वतः विलीन हो गई थी और सरकार की वित्तीय नीतियों, जोकि योजना में समर्थित नहीं थीं, ने सरकारी ऋणों और निजी निर्गमों को बाज़ार में खपाने की क्षमता बढ़ा दी थी।

विदेशी संसाधन—पहली पंचवर्षीय योजना ने प्रस्तावित योजना परिव्यय और आंतरिक संसाधनों की खाई को पाटने के लिए विदेशी मदद की आवश्यकता को स्वीकार किया था। योजना का स्वरूप तय करते समय ही 156 करोड़ रुपए के विदेशी संसाधन नज़र में थे। हालाँकि आगे जाकर शेष अवधि में उसको अधिकृत किया गया,

परंतु कुल 296 करोड़ रुपए में से केवल 188.11 करोड़ रुपया ही ख़र्च हो पाया। समीक्षा के अनुसार—'ख़र्च के कम उपयोग की वजह कार्यक्रमों के स्वरूप को तय करने में हुई देरी, आवश्यक उपकरणों व कर्मचारियों की कमी तथा इस्पात एवं जहाज़रानी के क्षेत्र में संकट की स्थिति था।' ज़ाहिर तौर पर योजना आयोग द्वारा बनाए गए कार्यक्रमों को विदेशी सहायता के उचित उपयोग के लायक नहीं समझा जा सका।

कुल अधिकृत विदेशी सहायता में से अमरीकी भाग, जो कि सबसे बड़ा था, की राशि 232.1 करोड़ रुपए थी। अधिकतर सहायता गेहूँ, इस्पात मँगाने और सामुदायिक विकास की संयुक्त परियोजनाओं में लगाई गई। ऋण एवं अनुदानों के बलबूते इस्पात और अन्य उपकरण दूसरे देशों से भी मँगाया गया। परंतु 7.6 करोड़ रुपए का अंतरराष्ट्रीय बैंक ऋण कृषि यंत्र परियोजना तथा डी.वी.सी. में बोकारो-कोनार परियोजना के लिए उपयोग हुआ और कुछ अमरीकी सहायता रिहंद विद्युत् परियोजनाओं के लिए लगाई गई, साथ ही छिटपुट सरकारी योजनाओं के अलावा ज़्यादातर विदेशी सहायता खाद्य सामग्री आयात करने में ही ख़र्च की गई। साल के शुरुआत में खाद्य सामग्री के आयात ने हमारे दीर्घकालीन खाद्य संकट को दूर करने में मदद की, इससे आयात को उचित तो ठहराया जा सकता है, परंतु यह भी समझना चाहिए कि वर्ष 1952-53 और वर्ष 1953-54 इन दो वर्षों के दौरान हुई बढ़िया फसल ने आयातित अनाज को न सिर्फ़ ज़ाया कर दिया बल्कि लापरवाही के कारण हमने आपातकाल के लिए अनाज संग्रह भी नहीं किया। इस अवधि के दौरान अंतरराष्ट्रीय बैंक ने भी निजी क्षेत्र को निम्न तीन ऋण जारी किए—

(रुपए करोड़ में)

भारत लौह एवं इस्पात कंपनी	15.0
ट्रॉमवे परियोजना	7.7
भारत औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम	4.8
कुल	27.5

तालिका
बाहरी सहायता का अनुमोदन एवं उपयोग (सार्वजनिक क्षेत्र) 1951-56

	अनुमोदन	उपयोग					कुल
	1951–56	1951–52	1952–53	1953–54	1954–55	1955–56	1951–56
ऋण							
अमरीका सरकार गेहूँ ऋण	90.3	59.8	30.5	—	—	—	90.35
भारत–अमरीका सहायता कार्यक्रम	39.3	—	—	—	—	4.5	4.5
अंतरराष्ट्रीय बैंक	12.5	1.0	3.1	1.5	0.7	1.3	7.6
कुल ऋण	142.1	60.8	33.6	1.5	0.7	5.8	102.45
अनुदान							
भारत–अमरीका सहायता कार्यक्रम	102.5	—	4.1	14.4	12.7	27.0	58.2
कोलंबो योजना :							
कनाडा	32.34	—	7.1	2.0	2.0	8.6	19.7
ऑस्ट्रेलिया	11.08	3.7	0.2	0.2	0.8	0.2	5.1
न्यूजीलैंड	1.7	0.3	—	—	—	—	0.3
ब्रिटेन	0.4	—	—	—	0.01	0.03	0.04
फोर्ड फाउंडेशन	5.6	—	0.6	0.4	0.5	0.6	2.1
भारत–नॉर्वे सहायता कार्यक्रम	0.66	—	—	0.05	0.09	0.13	0.27
कुल अनुदान	154.28	4.0	12.0	17.05	16.10	36.56	85.71
कुल जोड़	296.38	64.8	45.6	18.55	16.80	42.36	188.11

स्रोत : पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा।

आम तौर पर आयात पर निर्भर विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ विदेशी सहायता का सहारा घरेलू पूँजी को बढ़ाने और भुगतान संतुलन पर दबाव को कम करने के लिए लेती हैं। पहली योजना में यह परिकल्पित था कि 2,700-2,800 करोड़ रुपए के आंतरिक संसाधनों की कमी 800 करोड़ की बाहरी सहायता से पूरी कर ली जाएगी, ताकि पाँच साल की अवधि में 3,500-3,600 करोड़ रुपए का लक्षित निवेश किया जा सके। हम पहले की योजना अवधि में देख चुके थे कि निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में 3,100 करोड़ रुपए से अधिक के निवेश का लक्ष्य प्राप्त किया गया था। इस योजना अवधि में देश में आए शुद्ध विदेशी निजी निवेश का अनुमान लगाना कठिन है, फिर भी रिज़र्व बैंक के अध्ययन बताते हैं कि वर्ष 1953 और 1956 का अंत आते-आते भारत में कुल विदेशी पूँजी क्रमश: 415.53 करोड़ रुपए और 477.96 करोड़ रुपए तक आ चुकी थी। इन दो सालों में 02 करोड़ रुपए की शुद्ध वृद्धि हुई थी। पहले के वर्षों में निवेश की रफ़्तार धीमी होने के कारण इसका औसतन अधिक मात्रा में आना संभव नहीं होता। मूल्य निरूपण में परिवर्तन के बाद और बैंकों द्वारा चल और अस्थायी परिसंपत्तियों के रूप में 4 करोड़ रुपए की पूँजी के अंतर्वाह के कारण इन दो सालों में 35 करोड़ रुपए निवेश क्षेत्र में आए।

हमने यह भी देखा है कि सरकारी चंदों और ऋणों का बहुत बड़ा हिस्सा निवेश के रूप में उपयोग नहीं होता। यह बात बहुत सुरक्षित रूप से कही जा सकती है कि पाँच साल की अवधि में पूँजी खातों पर विकास परियोजनाओं में विदेशी संसाधनों की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं रही। इन सरकारी चंदों ने हमारी विदेशी विनिमय की ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में किस हद तक मदद की है, यह हम देखते हैं।

भुगतान संतुलन—जब पहली पंचवर्षीय योजना बनाई गई थी, उस समय व्यापार की परिस्थितियाँ भारत के अनुकूल नहीं थीं। आयात और निर्यात क्रमश: 730.1 करोड़ रुपए और 962.9 करोड़ रुपए के स्तर के साथ अपने चरम शिखर पर था, जिसके कारण 232.8 करोड़ रुपए का व्यापार घाटा दर्ज हुआ था। हालाँकि सरकारी चंदों और ऋणों तथा अन्य पूँजी सौदों को जोड़ा जाए तो विदेश रिज़र्व में शुद्ध घाटा 168.6 करोड़ रुपए था।

योजना आयोग का मानना था कि स्थिति बदतर हो सकती है, क्योंकि खाद्यान्नों का आयात बढ़ रहा था और मशीनें लाने में भी देरी हो रही थी। विदेशी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते हुए आयोग ने लिखा—'यदि खपत के स्तर और निजी क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों पर दबाव डाले बिना 2,069 करोड़ रुपए के स्तर का लक्ष्य हासिल करना है तो कुछ चीज़ों का आयात बढ़ाना होगा और कुछ चीज़ों का निर्यात घटाना होगा। हमें व्यय के कारण बड़ी हुई अतिरिक्त माँगों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त खाद्य पदार्थ और कच्चा माल ही नहीं अपितु अतिरिक्त मशीनें, उपकरण तथा उत्पादक वस्तुएँ भी उपलब्ध

तालिका
पहली योजनावधि के दौरान भुगतान संतुलन

(रुपए करोड़ में)

	योजना पूर्व 1950–51	51–52	52–53	53–54	54–55	55–56*	कुल 1951–56
आयात	650.3	962.9	633.0	591.7	671.6	747.7	3617.0
निर्यात	646.8	730.1	601.9	539.7	596.6	642.2	3110.5
व्यापार संतुलन	–3.5	–232.8	–31.1	–52.1	–85.0	–105.5	–506.5
अदृश्य (इनविज़िबल्स)	+ 40.3	+ 64.9	+ 80.5	+ 80.5	+ 77.5	+ 80.0	+383.4
सरकारी सहायता	+ 2.1	+ 5.3	+ 10.8	+ 19.0	+ 15.8	+ 46.2	+ 97.1
चालू संतुलन	+ 38.9	–162.6	+ 60.2	+ 47.4	+ 8.3	+ 20.7	–26.0
त्रुटि एवं कमीशन	–6.7	–45.0	–25.7	+ 2.3	–12.9	+ 2.8	–78.5
सरकारी ऋण	+ 7.7	+ 59.6	+ 35.1	+ 1.6	+ 0.6	+ 2.5	+ 99.4
अन्य पूँजीगत अंतरण आरक्षित निधि	–12.7	–20.6	–51.1	–20.3	–13.2	–11.0	–116.2
बदलाव बढ़ा (+) घटा (–)	+ 27.2	–168.6	+ 18.5	+ 31.0	–17.2	+ 15.0	–121.3

* 1955–56 के आँकड़े अस्थायी हैं। प्राथमिक आँकड़े आयात और निर्यात को निम्न स्तरों पर दरशाते हैं। चालू संतुलन रु. + 16.9 करोड़ है। E और O रुपए-5.3 करोड़ है। अतः कुल मिलाकर संतुलन का आँकड़ा जैसा इंगित था, उससे निम्न स्तर पर ही जानेवाला है।

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक, मुद्रा एवं वित्त रिपोर्ट, 1955–56, मासिक समाचार अक्तूबर, 1957।

करनी होंगी।' इन परिस्थितियों में आयोग को लगा कि 'भुगतान संतुलन में 180-200 करोड़ रुपए का वार्षिक घाटा बची हुई योजना अवधि के लिए संभावित ही नहीं वरन् आवश्यक भी लग रहा है।' इस विषय में भी आयोग की भविष्यवाणी सही नहीं निकली, यह आगे की तालिका में देखा जा सकता है। (देखें तालिका पृष्ठ 90)

योजना अवधि के दौरान की आयोग की आयात और निर्यात संबंधी भविष्यवाणियाँ भी सच्चाई के आसपास नहीं थीं। तालिका में वर्ष 1950-51 की तुलना में कुछ जिंसों के आयात और निर्यात की मात्रा और मूल्य दिखाया गया है। क़ीमतों की संरचना, जिससे कि निर्यात के मूल्य और बहुत सी वस्तुओं की मात्रा में असर पड़ता है, के कारण भी निर्यात के लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाए। कुछ मामलों का उल्लेख किया जाए तो आयोग ने सूत के निर्माताओं के लिए वर्ष 1955-56 के लिए लक्ष्य रखा था 100 करोड़ गज़ का, जिसका मूल्य था 91.9 करोड़ रुपए किंतु वास्तविक निर्यात रहा 74 करोड़ गज़ का, जिसका मूल्य था 56.63 करोड़ रुपए। कोयले के लिए निर्यात का लक्ष्य था 30 लाख टन, जिसका मूल्य था 10.2 करोड़ रुपए, जबकि वास्तविक निर्यात हुआ 14 लाख टन का, जिसका मूल्य 4.25 करोड़ रुपए था।

आयोग मुख्य जिंसों के निर्यात की आवश्यकताओं का अनुमान भी नहीं लगा पाया। उसका अनुमान था कि वर्ष 1955-56 में 11.5 करोड़ रुपए का कच्चा सूत आयात किया जाएगा, जबकि हमने 57.33 करोड़ का सूत आयात किया। उदाहरणों को जोड़ने की ज़रूरत नहीं है। सारी योजना इसी आधार पर निर्मित हुई थी कि हमें भारी मात्रा में खाद्य सामग्री आयात करनी पड़ेगी। वर्ष 1955-56 में हमें 17 करोड़ रुपए की खाद्य सामग्री के निर्यात की आवश्यकता पड़ी, जबकि अनुमान 115 करोड़ रुपए तक के आयात का था। इन भविष्यवाणियों की असफलता के पीछे कई कारण गिनाए जा सकते हैं। आयात और निर्यात कई वेरिएबल्स के खेल पर निर्भर करता है। एक पर प्रभाव दूसरे को भी परिवर्तित कर देता है। यदि हम एक बंद अर्थव्यवस्था को भी लें तो हमें आर्थिक ताक़तों की असीम अंतर्क्रियाओं पर ध्यान देना पड़ता है, जोकि नियंत्रण मुक्त हैं और हमेशा वैसा परिणाम नहीं देतीं, जैसा हम चाहते हैं। एक बढ़िया योजना में इन सभी तत्त्वों का बढ़िया संतुलन होना चाहिए। पहली योजना ने यह विधि अपनाने की कोशिश तो की, परंतु सिद्धांत और व्यवहार दोनों में बुरी तरह से असफल रही।

योजना अवधि में हमारे स्टर्लिंग भंडार में से प्रति वर्ष 138 करोड़ रुपए निकाले गए, जबकि लक्ष्य 50 करोड़ तक निकालने का था। यह देखा जाना चाहिए कि यदि पूरी सावधानी बरती जाती, ख़ास तौर पर जब बढ़िया घरेलू उत्पादन के चलते खाद्य और कच्चे माल के आयात को टाला जा सकता था, तो हम बेहतर विदेशी विनिमय की स्थिति बनाए रख सकते थे। वास्तव में हम अपने रिज़र्व को बढ़ा सकते थे। रिज़र्व बैंक की मुद्रा एवं वित्त

की वर्ष 1955-56 की रिपोर्ट में कहा गया—'योजना अवधि में 123 करोड़ का कुल चालू घाटा और 78.5 करोड़ रुपए की त्रुटियों व भूलों के तहत भुगतानों की राशि 197 करोड़ रुपए के सरकारी चंदों और ऋणों की बड़ी-बड़ी पावतियों से समायोजित हो गई थीं, इसलिए विदेश विनिमय में 121 करोड़ का घाटा अन्य पूँजी सौदों के कारण था, जोकि योजना से संबंधित नहीं थे और जिनके कारण 116 करोड़ रुपए की पूँजी का बहिर्गमन हुआ।'

घाटे की वित्त व्यवस्था—सरकार के आय व व्यय में किसी भी प्रकार की खाई को घाटे की वित्त व्यवस्था से पाटा जाता है। हमने अब तक जो चर्चा की, उससे ज़ाहिर होता है कि योजना के अनुमानित राजस्व और पावतियों संबंधी लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सके। भारी अंतर के चलते घाटे की वित्त व्यवस्था भी अनुमान से ज़्यादा की गई। आगे की तालिका में घाटे की वित्त व्यवस्था पर वर्ष दर वर्ष और कुल योजना अवधि के साथ तुलना के आँकड़े दिए गए हैं। (देखें तालिका पृष्ठ 93 पर)

कुल घाटे का आँकड़ा, जो कि 534 करोड़ रुपए का है, वर्ष 1955-56 के संशोधित अनुमानों पर आधारित है। आयोग ने पूरी योजना अवधि का वास्तविक घाटा 420 करोड़ रुपए आँका है।

वर्ष 1951-52 को छोड़कर, जब केंद्र और राज्यों ने मिलकर 9.7 करोड़ रुपए का लाभ दिखाया था, आगे के सालों में घाटा बढ़ता ही चला गया। यहाँ तक कि योजना के पहले साल का थोड़ा-बहुत अतिरिक्त योजना पूर्व के 58.3 करोड़ रुपए के अतिरिक्त के सामने फ़ीका है।

यह जानना दिलचस्प होगा कि वित्त आयोग की वर्ष 1952-53 की सिफ़ारिशों के चलते संयुक्त करों में राज्यों का हिस्सा घटने के बावजूद राज्यों का राजस्व बजट घाटे में वृद्धि दिखाता जा रहा है। यह भी सच है कि उनका पूँजी खाता वर्ष 1952-53 में घाटे से बचत में बदल गया। ऐसा मुख्यत: राज्य व्यापार सौदों के कारण हुआ, जैसे कि अनाज संग्रहण की समाप्ति इत्यादि। ऐसा करना उस समय में एक बुरा उपाय था, क्योंकि क़ीमतें गिर रही थीं और प्राथमिक उत्पादकों के लिए अप्रत्यक्ष रूप से बोझ आ गया। योजना के आख़िरी दो सालों में घाटे का 60 प्रतिशत हिस्सा देखने को मिला। हमने पहले देखा कि घाटा केंद्र के ही सिर आया। राज्यों के अंतिम खातों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा।

योजना अवधि में 420 करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था पहली योजना में रखी 130 करोड़ की सीमा से 45% आगे निकल गई। 2,069 करोड़ रुपए के कुल योजना परिव्यय में केवल 290 करोड़ रुपए घाटे की वित्त व्यवस्था से निकल पाए जबकि कुल परिव्यय 1,960 करोड़ पर इससे कम ही रहा, लेकिन घाटे का वित्त कहीं अधिक रहा। यह घाटा कुल परिव्यय का 14% रहने की बजाय वास्तविक परिव्यय का 21% रहा।

तालिका

केंद्र एवं राज्यों का बजटीय अधिशेष या घाटा

(रुपए करोड़ में)

	1950–51	1951–52	1952–53	1953–54	1954–55	1955–56	1951–56
केंद्र							
राजस्व खाता	+ 59.2	+ 128.2	+ 38.9	+ 8.5	+ 33.5	+ 10.3	+ 219.4
पूँजी खाता	–14.7	–72.9	–69.8	–135.7	–178.9	–245.9	–703.2
समस्त	+ 44.5	+ 55.3	–30.9	–127.2	–145.4	–235.6	–483.7
राज्य							
राजस्व खाता	+ 3.7	+ 12.1	+ 3.4	–2.9	–10.7	–66.3	–64.4
पूँजी खाता	+ 10.0	–57.7	–53.4	+ 52.6	+ 63.5	+ 9.3	+ 14.3
दोनों खाते	+ 13.7	–45.6	–50.0	+ 49.7	+ 52.8	–57.0	–50.1
केंद्र व राज्य							
राजस्व खाते	+ 62.9	+ 140.3	+ 42.3	+ 5.6	+ 22.8	–56.0	+ 155.0
पूँजी खाते	–4.7	–130.6	–123.2	–83.1	–115.1	–236.6	–688.9
समस्त	+ 58.2	+ 9.7	–80.9	–77.5	–92.6	–292.6	–533.9

तालिका
कुछ आर्थिक सूचक

(रुपए करोड़ में)

	1951-52	52-53	53-54	54-55	55-56 स.अनु.
कुल सार्वजनिक व्यय	1140	1076	1122	1389	1987
राजस्व खाता	768	787	832	881	1021
पूँजी खाता	372	289	290	508	666
कुल पावतियाँ	1148	994	1045	1295	1394
राजस्व	907	829	837	903	967
पूँजी	241	165	208	392	427
घाटे का वित्त	—	80	78	93	180
कृषि उत्पादन के सार्वजनिक सूचकांक के साथ धन आपूर्ति में अंतर (आधार 1949-50 =100)	-175	-39	+ 29	+ 127	+ 264
सभी वस्तुएँ	97.5	102.0	114.3	116.4	115.9
खाद्यान्न	90.3	98.7	112.0	117.3	112.3
ग़ैर खाद्यान्न	110.5	103.8	104.7	120.4	120.7
औद्योगिक उत्पादन थोक क़ीमत सूचकांक (आधार 1939-50 =100)	100	103.6	105.6	112.9	122.7
खाद्य वस्तुएँ	398.6	357.8	384.4	339.8	313.2
निर्माण	401.5	371.2	367.4	377.4	372.9
सामान्य	434.6	380.6	397.5	377.5	360.4
शहरी रोज़गार सूचकांक (आधार 1952-53 =100)	100.3	100.0	92.2	100.0	100.2

सार्वजनिक वित्त पर सभी विशेषज्ञों का मानना है कि हमारी अर्थव्यवस्था के मद्देनज़र घाटे की वित्त व्यवस्था उचित नहीं है। योजना आयोग इसका अपवाद नहीं है। परंतु यह समझ से परे है कि योजना आयोग घाटे की वित्त व्यवस्था के तमाम ख़तरों को भाँपते हुए भी इतनी बड़ी योजना अगले पाँच साल के लिए सुझाए, जिसके क्रियान्वयन

के लिए बड़े पैमाने पर अवांछित और अनुचित वित्त व्यवस्था अपरिहार्य हो जाए।

घाटे की वित्त व्यवस्था न केवल विशाल राशि वाली थी बल्कि यह उस समय अपनाई गई, जब इस से क़ीमतें बढ़ने का ख़तरा था। आख़िरी दो सालों में ही विकासपरक व्यय में बढ़ोतरी की गई। वास्तव में यह कदम दो साल पहले उठाया जाना चाहिए था, जब कृषि उत्पादन में वृद्धि आ रही थी। इससे मंदी को रोकने में मदद मिलती, जिसके कारण कृषि मूल्य गिर गए और देश में बेरोज़गारी में वृद्धि हुई। सरकारी नीतियाँ कम लचीली होने के कारण समय पर उनमें बदलाव नहीं लाया जा सका। आगे तालिका में सार्वजनिक व्यय और कृषि उत्पादन एवं क़ीमतों के सूचक दिखाए गए हैं। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि कैसे सरकार वित्तीय उपायों और उनके फायदों के बीच समय सीमा को आँकने में असफल रही।

8

विकास के कार्यक्रम

हमने केंद्र और राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति का, खासकर प्रथम पंचवर्षीय योजना के संदर्भ में गहराई से अध्ययन किया है। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी था, क्योंकि देश की पूरी योजना की प्रगति का आकलन भौतिक तरीक़े से सिर्फ़ वित्तीय संदर्भों में ही किया जा सकता है। क्योंकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में वित्तीय परिव्यय से संबंधित एक बहुत ही महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम तय किया जाना है। जब हम योजना की भौतिक उपलब्धियों का आकलन करते हैं तो कई तरह की परेशानियाँ सामने आती हैं। इससे संबंधित न केवल आँकड़े अपर्याप्त होते हैं बल्कि इनका तुलनात्मक अध्ययन भी बहुत कठिन होता है। पिछले वर्ष के मुक़ाबले आँकड़े संग्रह करने का तरीक़ा बदल जाता है और प्रतिशत या औसत के हिसाब से सही तसवीर सामने नहीं आती। फिर भी तुलनात्मक अध्ययन के लिए विभिन्न राज्य सरकारों और सांख्यिकी संगठनों द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकड़ों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

पहली पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य पुनर्निर्माण और पुनर्गठन का था। समाज में किसी तरह का संरचनात्मक या संस्थागत परिवर्तन का इसका कोई इरादा नहीं था। विभिन्न सरकारों और मंत्रालयों द्वारा तैयार की गई योजनाओं पर सिर्फ़ मोहर लगाना था। इसलिए विभिन्न क्षेत्रों में विकास और कार्यक्रमों की प्रगति का आकलन करना कोई मुश्किल काम नहीं है।

कृषि

पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्राथमिकता दी गई। 6 प्रतिशत के वित्तीय परिव्यय का लक्ष्य रखा गया। लेकिन वास्तव में कम ही ख़र्च हुआ। फिर भी जो परिणाम प्राप्त हुए, वे ख़र्च की गई राशि के हिसाब से उचित नहीं लगे। कृषि उत्पादन से संबंधित यहाँ जो आँकड़े दिए गए हैं, उसमें वर्षा और मौसम के असर का भी आकलन है—

तालिका

योजनाएँ	भौतिक उपलब्धि जिस पर ख़र्च हुआ	वित्तीय उत्पादन लक्ष्य (प्रतिशत)
1. बड़ी सिंचाई योजनाएँ	47	92
2. लघु सिंचाई योजनाएँ	91	03
3. भूमि सुधार और विकास	77	75
4. खाद एवं उर्वरक	50	59
5. उन्नत बीज	55	56

स्रोत : खाद्यान्न जाँच कमेटी 1957

बड़ी सिंचाई योजनाओं पर क्या काम हुए, इसकी सही-सही जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह सही है कि जिस पैमाने पर इन पर ख़र्च किए गए, उस अनुपात में अनाज के उत्पादन बढ़ाने में इनकी भूमिका नहीं रही। कानपुर सम्मेलन के दौरान भारतीय जनसंघ के श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने प्रथम पंचवर्षीय योजना पर बोलते हुए यह सुझाव दिया था कि सरकार को बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के बजाय छोटी सिंचाई परियोजनाओं पर ध्यान देना चाहिए। हालाँकि इस सुझाव पर देर से लोगों का ध्यान गया।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं का आकलन करते हुए खाद्यान्न जाँच कमेटी ने लिखा—'जहाँ तक खाद्यान्न उत्पादन पर तत्काल प्रभाव डालने का विषय है, लघु सिंचाई परियोजनाओं ने ज़्यादा अच्छे परिणाम दिए हैं। हालाँकि बड़ी सिंचाई योजनाओं को दी जा रही आर्थिक सहायता को हम कम करने का कोई सुझाव नहीं दे रहे हैं, लेकिन हमें इसका गहराई से अध्ययन करना चाहिए। यदि इन योजनाओं को पूरा करने के लिए धन की कमी पड़ती है और कुछ कोष ख़र्च होने से रह गए हैं तो उन्हें तुरंत छोटी सिंचाई परियोजनाओं की तरफ़ मोड़ देना चाहिए, जिससे ज़्यादा तेज परिणाम मिलने की संभावना है। न केवल परिणाम जल्दी मिलनेवाले हैं बल्कि ये ऐसे कारक हैं, जो छोटी सिंचाई परियोजनाओं को ज़्यादा महत्त्व दिए जाने का समर्थन करते हैं—

1. कम पूँजी की आवश्यकता के कारण छोटी सिंचाई परियोजनाएँ समय पर और हमारे वित्तीय स्रोत के दायरे में ही पूरे हो सकती हैं।
2. ये आयातित उपकरणों पर कम निर्भर हैं। इसलिए विदेशी मुद्रा पर हमारी निर्भरता कम करती हैं। आयात का आदेश देने और सामान आने के बीच

समय का अंतर बहुत नहीं होता, इसलिए विदेशी लोगों की सहायता पर इसकी निर्भरता बहुत नहीं रहती।

3. बड़ी सिंचाई योजनाओं की तरह भूजल स्रोत को ये नष्ट नहीं करते और सिंचाई आसानी से हो सकती है।
4. नहरों और बड़े जलाशयों को बनाने के लिए बहुत अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, जो आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं होते और इनके कारण भूमिहीन मज़दूरों की संख्या बढ़ती है।
5. बड़े जलाशयों या नहरों की तरह पानी बरबाद नहीं होता। इनका लगभग 55 प्रतिशत पानी खेतों को जाता है।[1] बड़ी सिंचाई योजनाओं में अधिक-से-अधिक पानी या तो छेद आदि होने के कारण बह जाता है या भाप बनकर उड़ जाता है।
6. स्थानीय सहायता और स्रोत का अधिक-से-अधिक उपयोग हो जाता है। छोटी सिंचाई योजनाओं में जल स्तर बढ़ने की संभावना नहीं रहती, इसलिए जल का जमाव नहीं होता है।
7. पानी के स्तर में वृद्धि और उससे होने वाले पानी के जमाव की समस्या नहीं है।

1955-56 के अंत तक 31.81 करोड़ एकड़ खेती योग्य ज़मीन में से 5.55 करोड़ एकड़ ज़मीन की ही सिंचाई हो सकी। इनमें से भी सरकारी नहरों से केवल 1.97 करोड़ एकड़ ज़मीन की ही सिंचाई हो सकी। इसलिए हम कह सकते हैं कि दो-तिहाई सिंचाई लघु सिंचाई योजनाओं पर ही निर्भर है। फिर भी इनके विकास के लिए कोष का आवंटन ठीक से नहीं हो सका। कृषि से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों और भारत-अमरीका तकनीकी सहयोग के अंतर्गत काफ़ी संख्या में ट्यूवेल लगाए गए और कुओं की मरम्मत की गई। लेकिन खाद्यान्न जाँच कमेटी यह महसूस करती है कि 'यह आम शिकायत है कि नई सिंचाई योजनाएँ पूरी की जा रही हैं, लेकिन चालू सिंचाई योजनाओं की मरम्मत का कोई काम नहीं हो रहा है। इसलिए सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि के आँकड़े नए निर्माण में कम ही दिखाई देंगे।'[2]

ज़मींदारी प्रथा के उन्मूलन के उपरांत बहुत से सिंचाई के साधन बेकार हो गए, जिनकी देखरेख पहले ज़मींदार करते थे।

---

1. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान : पृष्ठ 363।
2. रिपोर्ट ऑफ़ फूडग्रेन्स इन्क्वारी कमेटी, 1957, पृष्ठ 110।

उर्वरक एवं खाद

उर्वरक का प्रयोग काफ़ी तेजी से बढ़ा है। 1950–51 में जहाँ अमोनियम सल्फेट की खपत 2 लाख 75 हज़ार टन थी, वह 1955–56 में बढ़कर 6 लाख टन हो गई। खपत में 5 गुणा वृद्धि के बावजूद घरेलू उत्पादन में इतनी वृद्धि नहीं हुई कि वह माँग की पूर्ति कर सके। 1955–56 में उर्वरकों का कुल उत्पादन 3 लाख 94 हज़ार टन था। देशी उत्पादन में कमी और खपत में वृद्धि के अंतर को आयात करके ही पाटा जा सकता था। इस संबंध में महत्त्वपूर्ण आँकड़े आगे तालिका में दिए गए हैं। नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग बेतरतीब हुआ, जबकि इनका उपयोग देशी खाद, हरी खाद के साथ होना चाहिए था। लेकिन कृषि विभाग और इससे जुड़ी अन्य एजेंसियों ने इस संबंध में स्थानीय खादों के उत्पादन बढ़ाने में उचित ध्यान नहीं दिया। सरकार द्वारा फास्फेट उर्वरकों पर 25 प्रतिशत सब्सिडी दिए जाने और प्रचुर मात्रा में इसकी उपलब्धता के बावजूद नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग कम नहीं हुआ। खाद्यान्न जाँच कमेटी के अधिक उपजाऊ और योजना आयोग द्वारा उन्नत बीज उपलब्ध कराए जाने के बावजूद परिणाम अपेक्षित नहीं रहा। पहली योजना के आकलन पर लिखा गया है कि यह कहना सही होगा कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान विभिन्न फ़सलों के विकसित बीज दिए जाने और इनका वितरण स्थानीय स्तर पर किए जाने के बावजूद अपेक्षित परिणाम नहीं मिले।

तालिका

अमोनियम सल्फेट का उत्पादन, आयात और खपत

(लाख टन में)

वर्ष	उत्पादन	आयात	उर्वरक से प्राप्त आवंटन	खपत
1951	0.53	1.04	1.84	2.93
1952	2.20	2.27	3.70	2.76
1953	3.21	1.03	5.95	4.27
1954	3.40	0.74	1.67	4.53
1955	3.92	2.00	6.14	5.50
1956*	3.88	2 00	6.73	7.00

*प्रस्तावित

नोट : आवंटन एवं खपत, पिछले वर्ष के स्टॉक भी सम्मिलित।

स्रोत : आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय।

भूमि सुधार एवं विकास

केंद्रीय ट्रैक्टर और राज्य ट्रैक्टर संगठनों ने स्थानीय किसानों के सहयोग से भूमि सुधार एवं विकास के कार्यक्रम चलाए। योजना में इस पर 25 करोड़ रुपए के ख़र्च का प्रावधान किया गया लेकिन इस पर ख़र्च कितना हुआ, इसकी जानकारी नहीं। फिर भी पहली पंचवर्षीय योजना 1951-56 के हक में भारत ने 22.8 करोड़ रुपए का ट्रैक्टर और 12.1 करोड़ रुपए के कलपुर्जे का आयात किया। 1948-51 के दौरान भी कृषि के ये उपकरण आयात किए गए थे। सरकारी ट्रैक्टर संगठन के वर्ष दर वर्ष काम का ब्योरा इस प्रकार है—

तालिका

भूमि सुधार योजनाओं की प्रगति

(एकड़)

	क्षेत्र जिनमें भूमि सुधार हुए		
वर्ष	राज्य ट्रैक्टर संगठन	केंद्रीय ट्रैक्टर संगठन	कुल योग
1951-52	420*	253	673
1952-53	258*	266	524
1953-54	427*	288	715
1954-55	233*	190*	423*
1955-56	255	87*	342*
कुल	1593	1084	2677

*प्रस्तावित

स्रोत : भारतीय कृषि 1957, आर्थिक एवं सांख्यिकी सलाहकार, भारत सरकार।

योजना में केंद्रीय ट्रैक्टर संगठन के ज़रिए 14 लाख और राज्य ट्रैक्टर संगठनों के ज़रिए 12 लाख तथा निजी किसानों के ज़रिए 48 लाख एकड़ कृषि योग्य भूमि के सुधार का लक्ष्य रखा गया। हालाँकि इस संबंध में लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया, फिर भी आयोग लिखता है कि अगर समुचे परिदृश्य को देखें तो सरकारी ट्रैक्टर संगठनों द्वारा भूमि सुधार का काम आर्थिक उपादेयता के हिसाब से ठीक नहीं था, परियोजना के अंत में अधिकतर मामलों में यह देखा गया कि अधिकतर क्षेत्र में सुधार का इंतजार ही हो रहा है।

कृषि उत्पादन के विभिन्न आयाम

प्रथम पंचवर्षीय योजना में उत्पादन की संभावनाओं में 76 लाख टन बढ़ोतरी का प्रस्ताव किया गया था। लेकिन आयोग के अनुसार बढ़ोतरी सिर्फ़ 60 लाख टन ही हुई। उस पर भी खाद्यान्न जाँच कमेटी यह महसूस करती है कि आयोग के आँकड़े बढ़ा-चढ़ाकर दिखाए गए हैं और प्रथम पंचवर्षीय योजना में केवल 56 लाख टन खाद्यान्न उपज की संभावनाओं को भी बढ़ाया गया। छोटी सिंचाई योजनाओं को छोड़कर सभी योजनाएँ लक्ष्य प्राप्ति में विफल रहीं।

मत्स्य एवं जंतु पालन

हालाँकि योजना में इस मद पर 22 करोड़ रुपए ख़र्च करने का लक्ष्य रखा गया, लेकिन वास्तव में 16 करोड़ रुपए का ही वित्तीय परिव्यय किया गया। इस मामले में हमें क्या उपलब्धियाँ हासिल हुईं, उसकी गणना नहीं की जा सकती। लेकिन गो सदन स्थापित करने के मामले में बुरी तरह असफल रहे। मूल योजना में 97 लाख रुपए की लागत से 160 गो सदन स्थापित करने का लक्ष्य था। लेकिन बाद में सभी क्षेत्रों में लक्ष्य बढ़ाए जाने के बावजूद गो सदन स्थापित करने के प्रस्ताव को कम कर 15 लाख रुपए की लागत से 40 गो सदन बनाने का लक्ष्य रखा गया। उसमें भी योजना के अंत में केवल 34 गो सदन को मंजूरी दी गई और 10 निजी गो सदनों समेत 25 गो सदन ही स्थापित किए गए। इसका असर यह है कि 160 गो सदनों के स्थापित करने के मूल प्रस्ताव की जगह सरकार ने सिर्फ़15 गो सदन ही स्थापित किए और इन 15 गो सदनों का रखरखाव भी काफ़ी ख़राब रहा। गो हत्या निरोध समिति के सचिव लाला हरदेव साही ने इन गोशालाओं को वधशाला का नाम दिया, जहाँ जानवरों को भूखे-प्यासे छोड़ दिया गया। जब सरकार यह महसूस करती है कि अनुत्पादक मवेशियों की संख्या लगातार बढ़ रही है और यह लगभग 1 करोड़ 60 लाख हो गई है तो आख़िर देश में पशुधन की रक्षा के लिए बनी योजनाओं पर जानबूझकर लापरवाही क्यों की जा रही है? सरकार और निजी गो सदनों को मिलाकर 5 साल की अवधि में 22106 पशुओं की देखरेख की गई। इस समय पशुओं की संख्या कितनी है, कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मछली पालन

भारत-अमरीका और भारत-नॉर्वे तकनीकी सहयोग कार्यक्रम के तहत तथा खाद्य एवं कृषि संगठन के साथ मिलकर गहरे समुद्र में जाकर मछली पकड़ने के कार्यक्रम को शुरू किया गया। लेकिन मछुआरों की आवश्यकताओं को ठीक से नहीं समझा गया और इन उपायों का उन पर क्या असर पड़ेगा, इसकी कल्पना नहीं की गई। परिणाम यह हुआ कि कुछ राज्यों में विदेशी एजेंसियों का समुद्री तटों पर कब्जे के कारण बड़ी संख्या में मछुआरे बेरोज़गार हुए।

सामुदायिक विकास परियोजनाएँ

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास से संबंधित परियोजनाओं को बहुत महत्त्व दिया गया। यह माना गया कि लोगों के जीवन में क्रांति के लिए इस तरह की योजनाएँ बहुत ज़रूरी हैं। पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा करते हुए आयोग लिखता है—'एक प्रजातांत्रिक नियोजन में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को देखने का यह एक भारतीय तरीक़ा है।' लेकिन हम सब यह जानते हैं कि यह अमरीकी दृष्टिकोण है, न कि भारतीय। क्योंकि इस तरह की संकल्पना और वित्त दोनों उसी देश से आते हैं।

योजना के दौरान 1160 खंड आवंटित किए गए, लेकिन सिर्फ़ काम 988 खंडों में ही शुरू हुआ।[3] केवल 90 करोड़ रुपए के प्रावधान के विपरीत 46 करोड़ रुपए ही ख़र्च हुए।

पिछले 5 सालों में जो काम हुए, उसकी रिपोर्ट कार्यक्रम आकलन संगठन और योजना आयोग की रिपोर्ट टीम ने दाखिल की। उनकी राय थी कि इस संबंध में वास्तविक लक्ष्य प्राप्ति पर ज़्यादा ध्यान दिया गया, न कि स्वयं सहायता और विकास की प्रवृत्ति को निखारने में। कमेटी ने योजना के बारे में लिखा—'पिछले वर्षों में सारा ध्यान कल्याण से जुड़ी क्रियाओं पर था, न कि आर्थिक विकास से संबंधित क्रियाओं पर। ऐसा इसलिए कि कल्याणकारी योजनाएँ ज़्यादा लोकप्रिय थीं, उनको पूरा करना आसान था और उन पर ज़्यादा ध्यान देने की भी ज़रूरत नहीं थी। ग्रामीण जो सामुदायिक विकास के शब्द से ज़्यादा परिचित भी नहीं थे, उनके लिए तो जो सुविधाएँ मिलीं, उसी के लिए वे अहसानमंद थे। हम यह निवेदन करते हैं कि बिना किसी देरी के आर्थिक विकास पर ध्यान ज़्यादा केंद्रित किया जाए।

सामुदायिक विकास से जुड़ी परियोजनाएँ कोई जैविक विकास नहीं है और इसमें लगे अधिकारी विकास की प्रक्रिया शुरू करने में असफल रहे। कमेटी ने यह निवेदन किया है कि इन खंडों का गठन जनतांत्रिक विकेंद्रीकृत इकाई के रूप में होना चाहिए। अगर प्रस्ताव ठीक से अमल में लाया जाता है तो इसका आशय है कि ग्रामीण जीवन, स्थानीय संस्थाओं और ज़िला प्रशासन का पुनर्गठन होना चाहिए। 'ग्रामीण क्षेत्रों में सभी विकास कार्यों के लिए एक एकल प्रतिनिधित्व इकाई होनी चाहिए।' यह इकाई सरकार के नियंत्रण से बाहर और वित्तीय अधिकार से संपन्न होना चाहिए, ताकि अपनी जिम्मेदारियों का ठीक से निर्वहन कर सके। समिति ने एक चुनाव प्रक्रिया की भी ज़रूरत बताई। लेकिन यह समझाने में विफल रही कि यह चुनाव प्रक्रिया कैसी हो, जिसमें वयस्क मतदाताओं को वोट डालने की पूरी आज़ादी हो।

---

3. सामुदायिक विकास मंत्रालय की वर्ष 1956-57 की वार्षिक रिपोर्ट में यह आँकड़ा 1,190 का है तथा 1955-56 की प्रशासन की सामुदायिक परियोजनाओं की रिपोर्ट के अनुसार पहली पंचवर्षीय योजनावधि में शुरू किए गए खंडों की संख्या 951 है, यह सरकारी आँकड़ों की असंगतता दिखाता है।

समिति यह भी महसूस करती है कि देश में खंड का निर्धारण कार्य के आधार पर होना चाहिए और प्रशासन के अनुरूप होना चाहिए, न कि इसका कोई राजनीतिक आधार होना चाहिए। इसके लिए एक उचित बजट का भी निर्धारण होना चाहिए। अभी की जो व्यवस्था है, उसमें एक छोटे समय के लिए तो खूब सारा धन उपलब्ध होता है, लेकिन लंबे समय में संसाधनों की उपलब्धि की समस्याएँ आती हैं। संसाधन नहीं मिलने के कारण दुगनी बरबादी होती है और साथ में मन खिन्न रहता है। कार्यक्रम आकलन संगठन ने यह लिखा है कि 13 सामुदायिक परियोजनाओं में 849 लाख रुपए का प्रावधान किया गया, उसके अनुरूप 1 अप्रैल, 1955 से 30 सितंबर, 1956 तक 328 लाख ख़र्च कर दिए गए और 339 लाख ख़र्च करने में 3 साल लग गए।

सामुदायिक विकास की परियोजनाओं में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समीक्षा में लोगों की भागीदारी का आकलन 26.13 करोड़ रुपए के रूप में किया गया है। समिति यह भी महसूस करती है कि यह आँकड़ा भी बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। क्योंकि श्रम एवं लोगों द्वारा उपलब्ध कराए गए संसाधनों की क़ीमत का आकलन करने के लिए कोई मानक तरीक़ा नहीं अपनाया गया। उदाहरण के लिए खंड विकास अधिकारी ने लोगों की भागीदारी का आकलन इस आधार पर किया कि सहकारी समिति की बैठक में जो लोग उपस्थित हुए, वे काम करने की स्थिति में कितना कमा सकते थे।

स्वैच्छिक प्रयासों से जो काम पूर्ण किए गए थे, उनके रखरखाव की कोई व्यवस्था नहीं थी। कार्यक्रम आकलन संगठन द्वारा किए गए सर्वे यह खुलासा करते हैं, जिन क्षेत्रों के ग्रामीणों में आर्थिक एवं सामाजिक ज़रूरतों में वृद्धि के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो गई थी, उन क्षेत्रों में स्वयं सहायता के जरिए सकारात्मक काम करने की जिज्ञासा काफ़ी कम थी। संभवत: इस नई आर्थिक प्रस्तावना ने लोगों में ग़लत भावना पैदा कर दी थी। ग्राम-सेवक एवं ग्राम-सेविकाओं के प्रशिक्षण संबंधित पाठ्यक्रम एवं विषयों के बारे में समिति ने यह महसूस किया है—'हमारी समझ से मौजूदा पाठ्यक्रम वास्तविकता से परे है, केवल कुछ ही ग्राम-सेविकाओं के लिए पाठ्यक्रम में सम्मिलित इन विषयों का लाभ होगा। भोजन हमारे लिए क्या करता है? किन सूतों को कपड़ा तैयार करने के लिए सामान्यत: प्रयोग करते हैं—सिल्क,रेयन, कॉटन, वूल और कृत्रिम सिल्क के भेद को कैसे पहचानेंगे, दवा की पेटी में एस्परिन, आरगिरोल और सल्फागुनाडिन है या नहीं।' यह पाठ्यक्रम वास्तव में विदेशी परिकल्पनाओं पर आधारित है। इसलिए इसमें तत्काल परिवर्तन कर ग्रामीण परिवेश के अनुरूप बनाना चाहिए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के वितरण एवं व्यय की समीक्षा के अनुसार योजना अवधि में राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक परियोजनाओं पर इस प्रकार ख़र्च किए गए—

तालिका

(करोड़ में)

1.	पशुपालन, कृषि एवं भूमि सुधार	4.26
2.	सिंचाई	7.34
3.	स्वास्थ्य एवं ग्रामीण स्वच्छता	4.52
4.	शिक्षा एवं सामाजिक शिक्षा	4.60
5.	संचार	6.64
6.	ग्रामीण कला, कलाकृति एवं उद्योग	1.78
7.	राज्य एवं परियोजना मुख्यालय	9.62
8.	आवास (परियोजना कर्मचारियों एवं ग्रामीण आवास)	0.36
9.	आयातित मशीनरी	4.30
10.	विविध	2.60
	कुल	46.02

इतने बड़े देश और विभिन्न प्रकार की योजनाओं को देखते हुए जिस तरह के सामुदायिक विकास कार्यक्रम होने चाहिए, उनके लिए स्वीकृत धन बहुत कम था। और जब हम यह देखते हैं कि स्वीकृत धन का उपयोग लोगों की भलाई के लिए सही से नहीं हो पाया तो हम यह कह सकते हैं कि इन योजनाओं का उद्देश्य विकास नहीं, कुछ और था। यह देखा गया है कि 21 फीसद धन परियोजनाओं के मुख्यालयों पर ख़र्च किया गया है। यदि हम अधिकारियों, ग्राम-सेवक एवं ग्राम सेविकाओं के वेतन को भी सम्मिलित कर लें तो यह ख़र्च और भी ज़्यादा है। हकीकत यह है कि अधिकतर पैसे इस तरह ख़र्च किए गए कि उनका लाभ ज़्यादा ही ग्रामीण लोगों, खासकर वंचित एवं दमित वर्ग पर हुआ। चौथी आकलन समिति की रिपोर्ट यह कहती है, 'सामुदायिक परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के लाभ के वितरण में भारी विरोधाभास है, यह विरोधाभास विभिन्न खंडों की परियोजनाओं में साफ़ दिखता है। उन खंडों में भी यह अंतर दिखाई देता है, जहाँ ग्राम-सेवकों की पहुँच है और जहाँ नहीं है। वहाँ भी है, जहाँ कृषि कार्य करनेवाले हैं और जहाँ नहीं हैं। वहाँ भी है, जहाँ बड़ी जोत के खेतिहर हैं और जहाँ छोटी जोत के खेतिहर हैं। वहाँ भी हैं, जहां जिनके पास वित्तीय संसाधन बहुत हैं और जहाँ वित्तीय संसाधन नहीं हैं।'[4] इन कमियों के अलावा भारी बरबादी एवं आर्थिक रूप से कम उपादेय वाले ख़र्चों के भी उदाहरण हैं। पंचवर्षीय योजना की परियोजनाओं पर कमेटी ने

4. द फोर्थ इवैल्यूएशन रिपोर्ट, अप्रैल 1957-58, पृष्ठ 20

अनुपयोगी व्यय के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

1. एक राज्य में सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के लिए जो कोष स्वीकृत किए गए थे, उनका इस्तेमाल नगरपालिका के एक अस्तपाल के अधिग्रहण पर कर दिया गया।
2. इस कोष से ज़िला अस्पताल के लिए एक एक्स-रे प्लांट की ख़रीददारी की गई।
3. एक खंड में ज़िला मुख्यालय में संग्रहालय के निर्माण पर 60 हज़ार रुपए ख़र्च किए गए।
4. एक खंड के एक ही गाँव में 1 लाख 70 हज़ार रुपए ख़र्च कर दिए गए। इस तरह की प्रवृत्ति कई जगह दिखाई दी।
5. एक जगह एक उच्च विद्यालय के भवन निर्माण के लिए 90 हज़ार रुपए दे दिए गए।
6. एक खंड में कंक्रीट के ट्रैक बनाने पर 1 लाख 40 हज़ार रुपए इस्तेमाल किए गए।
7. इसी तरह सिंचाई के लिए स्वीकृत धन का उपयोग बड़े जमींदारों को फायदा पहुँचाने के लिए एक या दो तटबंध बनाने में कर लिया गया।
8. ऐसा भी मामला सामने आया है कि जहाँ परियोजनाओं के लिए जो ऋण दिए गए थे, वे वसूले नहीं गए। एक मामले में 19 लाख 90 हज़ार रुपए का ऋण दिया गया, लेकिन सिर्फ़ 9 लाख ही वसूल पाए।
9. योजना की स्वीकृति में देरी विस्तृत नियोजन की कमी और बिना समन्वय के काम के कारण ख़र्च में भारी बढ़ोतरी के कारण हुई। एक राज्य में तो वित्तीय वर्ष के अंतिम तीन महीने में स्कूल से लगे मूत्रालय बनाने पर 1 लाख 70 हज़ार रुपए ख़र्च कर दिए गए।
10. भवनों के निर्माण पर भारी ख़र्च किया गया। भवनों के आकार एवं मानक ग्रामीण परिवेश के अनुरूप नहीं थे। कुछ खंडों में तो कार्यालय के निर्माण पर 40 हज़ार रुपए तक भारी ख़र्च किए गए।
11. एक्स-रे सेट, भारी ट्रैक्टर्स और अनाज के थ्रेशर जैसे कई उपकरण आयात किए गए। जो हमारे परिवेश के अनुकूल ही नहीं थे और न हम उनका प्रयोग कर पाए। पूरा कोष ज़ाया हुआ।

इसके अतिरिक्त समिति ने उन अधिकारियों से जीप को वापिस मँगाने का भी सुझाव दिया, जो इसका दुरुपयोग कर रहे थे। प्रचार और प्रोपेगेंडा पर भी काफ़ी ख़र्च किया गया। वास्तव में सामुदायिक विकास की परियोजनाएँ एक शो-पीस की तरह थीं। समिति ने लिखा कि ये परियोजनाएँ विदेशी मेहमानों और संभ्रांत लोगों को देखने के

लिए बनाई गई हैं। हमें यह भी बताया गया कि लगातार दौरों से काम के घंटों का काफ़ी नुक़सान होता है और साथ ही ग्रामीणों में एक अविश्वास भी उत्पन्न होता है कि वाकई हमारा सामुदायिक विकास से कुछ लेना-देना है भी या नहीं। यदि संक्षेप में कहें तो ये कार्यक्रम सामुदायिक जीवन को विकसित बनाने में पूरी तरह विफल रहे। इसलिए ज़रूरी है कि कार्यक्रम को फिर से परिभाषित किया जाए और उनकी पुनर्संरचना की जाए, ताकि पैसे और ऊर्जा को बेकार होने से रोका जाए। अधिकारी दिल्ली के वातानुकूलित कमरे में बैठकर सपने देखते हैं और बात करते हैं कि देश में क्रांति हो रही है, जितनी जल्दी उनका यह भ्रम टूटे, उतना ही अच्छा है।

प्रमुख सिंचाई एवं बिजली परियोजनाएँ

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिंचाई और बिजली की बड़ी परियोजनाएँ केंद्रीय स्थिति में रहीं। योजना के कुल 2378 करोड़ के आकार में 647 करोड़ इन्हीं पर ख़र्च किए जाने थे। वास्तविक योजना आकार 1960 करोड़ रुपए में से 569 करोड़ इसी मद में रखे गए थे। प्रतिशत के आधार पर देखें तो यह लक्ष्य को पार कर गया। मूल प्रस्ताव 27.2 प्रतिशत का था, जबकि वास्तविक व्यय 29 प्रतिशत हुआ। सबसे ज़्यादा पैसा 4 प्रमुख बहुउद्देश्यीय योजनाओं पर ख़र्च हुआ—भाखड़ा नांगल, हरीक, डी.वी.सी. और हीरा कुंड। लेकिन सिंचाई और बिजली दोनों क्षेत्र में वास्तविक सफलता लक्ष्य से कम रही। यहाँ यह नोट करना आवश्यक है कि इन योजनाओं पर काम योजना आयोग द्वारा अपनी योजनाओं में इन्हें सम्मिलित करने से पहले ही शुरू हो गया था। इन योजनाओं के लागत आकलन को कई बार संशोधित किया गया। उसके बावजूद इनकी लागत लगातार बढ़ती गई। भाखड़ा नांगल, दामोदर वैली और हीराकुंड परियोजना पर प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू होने से पहले ही 49 करोड़ रुपए ख़र्च कर दिए गए। योजना के दौरान इन पर 201 करोड़ रुपए ख़र्च किए गए। जबकि इन तीनों परियोजनाओं की मूल योजना 240 करोड़ रुपए की थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इन परियोजनाओं का जो मौजूदा आकलन किया गया, उनके अनुसार इनकी लागत 331.7 करोड़ रुपए है। पृष्ठ 105 पर जो तालिका दी गई है, वह विभिन्न योजनाओं पर व्यय एवं उपलब्धियाँ दरशाती है। इस तालिका को देखने से आसानी से पता चल जाता है कि इन परियोजनाओं में पूँजी फँसी पड़ी है और ख़र्च के अनुपात में हमें उपलब्धियाँ हासिल नहीं हुई हैं। हमें न सिर्फ़ इन परियोजनाओं के भारी पूँजीकरण के पीछे कारणों का पता लगाना होगा बल्कि यह भी तय करना होगा कि आख़िर किस तरह समुचित क्रियान्वयन न होने और योजना न बनने का नुक़सान उठाना पड़ा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह जो टिप्पणी की गई है, वह इसका जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट

तालिका

परियोजना	1951–56 के दौरान व्यय (रुपए करोड़ में)			सिंचाई 1955–56 (एकड़ में)		बिजली निर्माण क्षमता 1955–56 (किलोवाट में)	
	मूल	प्रावधान वास्तविक	संशोधित	उपलब्धियाँ	लक्ष्य	उपलब्धियाँ	लक्ष्य
1	2	3	4	5	6	7	8
भाखड़ा	85.67	77.6	110.6	1181	1361	48	96
हरीक	5.35	10.62	5.35	—	—	—	—
डी.वी.सी.	7.108	41.70	76.83	—	595	154	194
हीराकुंड	44.61	44.00	53.28	—	261	—	48
नई परियोजनाएँ	**18.12**	—	—	—	—	—	—
कोयना	2.83	—	—	—	—	—	—
रिहंद	4.77	—	—	—	—	—	—
कोसी	3.93	—	—	—	—	—	—
नागार्जुन सागर	1.11	—	—	—	—	—	—
चंबल	5.48	—	—	—	—	—	—
राज्यों की अन्य परियोजनाएँ							
सिंचाई	191.26	167.69	212.93	2830	6298	—	—
बिजली	152.89	127.54	178.62	—	—	614	790

कहती है, "बेहतर संगठन एवं नियोजन के ज़रिए हम इस ख़र्च पर बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इन विषयों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। कई ऐसे उदाहरण आए, जहाँ नहरें नहीं खुदीं, लेकिन जलाशय बना दिया गया, नहरें तैयार हो गईं, लेकिन सिंचाई के लिए भूमि तैयार नहीं थी, जहाँ बिजली घर बिजली तो बनाने लगे, लेकिन उनके वितरण एवं पारेषण के लिए आवश्यक उपकरण एवं लाईनें तैयार नहीं थीं। ट्यूबवेल खोद दिए गए, लेकिन उनके चलाने के लिए बिजली की व्यवस्था नहीं की गई। योजना और उसके क्रियान्वयन में इस तरह की भारी कमियों के कारण पूँजी फँसी रही और हमारे संसाधन ज़ाया हुए।"[5]

कार्यक्रमों के नियोजन एवं संचालन में कमियों के अलावा पानी के दाम इतने कर दिए गए खासकर पहले चरण में कि किसान सिंचाई के लिए पानी ख़रीदने के लिए तैयार नहीं हुए। कुछ क्षेत्रों में उदाहरण के लिए मयूर काशी परियोजना, जहाँ सिंचाई तब तक लाभदायक नहीं होती, जब तक ज़मीन की उर्वराशक्ति नहीं बढ़ाई जाती। सूखा कृषि क्षेत्र को जलयुक्त कृषि क्षेत्र में बदलने के लिए भी कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। इसमें वित्तीय एवं तकनीकी समस्याएँ आ सकती थीं, जो सिंचाई विभाग नहीं दे सकता था। कृषि और सहकारी क्षेत्रों के बीच इसके लिए बेहतर समन्वय और महत्त्व दिए जाने की ज़रूरत थी। कई परियोजनाओं में अपेक्षाकृत नीची भूमि वाले क्षेत्रों को पानी की आवश्यकता को नज़रअंदाज़ किया गया। डी.वी.सी. परियोजना ने हावड़ा ज़िले के किसानों को लाभ पहुँचाने के बजाय दामोदर परियोजना के तहत सिंचाई से वंचित कर दिया। हम यह भी जिक्र किया है कि किस तरह पानी की दर अधिक होने के कारण किसान सिंचाई सुविधाओं का इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। खाद्यान्न जाँच समिति ने भी इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित किया है।

उत्तर प्रदेश में जहाँ सरकार ने पानी की दर में 50 फीसदी की वृद्धि की है, वहाँ सिंचित क्षेत्र भी आधे रह गए हैं। यह बड़ी विचित्र बात है कि योजना आयोग ने जबसे योजना की विस्तृत जानकारी जारी की है, तबसे ही लगातार पानी की दर को बढ़ाने और उपकर लगाने पर जोर दे रहा है। योजना में कहा गया है कि बड़ी परियोजनाओं का भी पोषण तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक इस धारणा को स्वीकार करते हुए उपकर न लगाया जाए और इसे पूँजी की लागत के रूप में न वसूला जाए। इस संबंध में क़ानून बनाए जाने के बाद भी राज्य सरकारों ने इस सुझाव को लागू नहीं किया। जब किसान पानी की दर पर सिंचाई की सुविधा लेने के लिए तैयार नहीं हुए तो उन पर उपकर कैसे लगाया जा सकता है? यह सत्य है कि कोई भी सरकार पूँजी ख़र्च को बिना किसी उपयुक्त वापसी के ज़्यादा दिन तक बरदाश्त नहीं कर सकती। अब यह महसूस किया जा रहा है कि जब तक पूँजी की कमी है और हम उचित वापसी प्राप्त नहीं कर सकते, तो हमें अपनी बड़ी परियोजनाओं के बारे में फिर से विचार करना चाहिए। खासकर उन बड़े कामों पर, जो अभी शुरू भी नहीं हुए हैं।

---

5. सेकंड फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 350।

9

उद्योग

पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास, सिंचाई और बिजली परियोजनाओं को प्रमुखता दी गई। साथ में रेलवे के पुनर्गठन के कार्यक्रम को भी प्रमुखता से हाथ में लिया गया। जहाँ तक औद्योगिक विकास का प्रश्न है और इसमें ढाँचागत एवं संस्थागत परिवर्तन की बात है, तो अधिकांश कार्य लोगों की मर्ज़ी पर छोड़ दिए गए। लघु उद्योग जैसे बड़े क्षेत्र पर मामूली ध्यान दिया गया। यही नहीं, पहली पंचवर्षीय योजना भारत के भविष्य के औद्योगिक ढाँचे की तसवीर प्रस्तुत करने में भी असफल रहीं।

आयोग ने औद्योगिक क्षेत्र जैसे मुहावरे के साथ संगठित बड़े उद्योगों की प्राथमिकताएँ एवं उनके उत्पादन को कहीं-कहीं रेखांकित किया। औद्योगिक विकास एवं उसके विस्तार की पूरी जिम्मेदारी लगभग निजी क्षेत्रों पर छोड़ दी गई। पहली योजना का पूरा प्रारूप द्वितीय योजना के मुक़ाबले थोड़ा अधिक व्यावहारिक था।

पहली पंचवर्षीय योजना ने सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के उद्देश्यों में अंतर को नहीं समझा। सिर्फ़ कार्यशैली में समानता को पहचाना गया, न कि उनके उद्देश्यों को। आयोग लिखता है—''निजी उद्यम को सार्वजनिक जिम्मेदारी लेनी चाहिए।'' एक और जगह कहा गया है, ''निजी उद्यम क़ानून सम्मत मुनाफे की चाहत के साथ उपलब्ध संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल करते हैं और अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। यह अवसर और आवश्यकता है कि विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग का विकास उन क्षेत्रों में करे जहाँ निजी क्षेत्र कार्य करने में अक्षम या अनिच्छुक है, और ज़ोखिम लेकर काम करे, बाकी के क्षेत्र निजी उद्यमियों के लिए छोड़ दे। आयोग ने यह भी महसूस किया कि मौजूदा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है और उद्योगों के मालिकाना हस्तांतरण के लिए उचित क़ानून बनाए जाएँ।'' आयोग आगे जोड़ता है कि एक नियोजित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्रों का कार्य

अधिकार वहाँ तक है, जहाँ राष्ट्रीय नीति के ढाँचे में खुद को रखकर योजना में घोषित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए काम करें।

हमने ऊपर जो भी कहा है, उसका संदर्भ यह कहना कदापि नहीं है कि सरकार अनियंत्रित एवं मुक्त निजी उद्यम की नीति का परिपालन कर रही है। इसके पहले अप्रैल 1948 में आयोग ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें सार्वजनिक और निजी उद्यमों से संबंधित नीतियों की विस्तार से चर्चा की गई है और उनके अधिकार क्षेत्र निश्चित किए गए हैं। ये 37 उद्योगों पर लागू होते हैं। इस क़ानून के महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस प्रकार हैं—

1. सभी औद्योगिक इकाइयों का पंजीकरण होना चाहिए।
2. केंद्र सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए बिना किसी भी नई औद्योगिक इकाई की स्थापना या मौजूदा किसी इकाई का विस्तार नहीं होना चाहिए।
3. बिना किसी उचित कारण के उत्पादन में कमी और गुणवत्ता में गिरावट या मूल्य में वृद्धि के ख़िलाफ़ सरकार कभी भी जाँच का आदेश कर सकती है।
4. वैसी औद्योगिक इकाइयाँ, जो सरकार के दिशा-निर्देश का पालन नहीं कर रही और जाँच में दोषी पाई जाती है तो यदि सरकार उचित समझेगी तो उसका प्रबंधन अपने हाथ में ले सकती है।

औद्योगिक नियोजन के उद्देश्य—प्रथम पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हमारे मौजूदा औद्योगिक ढाँचे में आई कमी में सुधार और विकास को प्राथमिकता देना है, ताकि औद्योगिक क्षेत्र में तेजी से विस्तार का आधार तैयार हो सके। तदनुसार प्रथम पंचवर्षीय योजना के मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं—

1. कृषि विकास एवं सिंचाई की सुविधाओं के विस्तार के लिए बिजली की माँग को पूरा किया जाए।
2. मौजूदा क्षमता का उपयोग उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में हो।
3. कच्चे लोहे, स्टील और भारी रसायनों जैसे आधारभूत उद्योगों की क्षमता का विस्तार हो।
4. मौजूदा औद्योगिक ढाँचे में कमियों एवं गड़बड़ियों को ख़त्म किया जाए।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजना ने कुछ प्राथमिकताएँ तय कीं, जो इस प्रकार हैं—

1. जूट, प्लाईवुड जैसे उद्योगों के साथ-साथ उपभोक्ता सामान वाले उद्योग, जैसे रुई, कपड़े, चीनी, साबुन, वनस्पति, पेंट और वार्निश की मौजूदा उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा दोहन हो।
2. लोहा एवं इस्पात, अल्युमिनियम, सीमेंट, रासायनिक खाद, पारी रसायन एवं मशीन-टूल्स जैसी पूँजीगत वस्तुओं की उत्पादन क्षमता में विस्तार हो।

3. उन औद्योगिक इकाइयों, जिन पर पूँजी व्यय का प्रयोजन हो चुका है, उन्हें जल्दी से जल्दी पूरा किया जाए।
4. कोटा परमिट नियमों में सुधार कर और मौजूदा लुंज-पुंज कमियों को ख़त्म कर नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की जाए, जिनसे औद्योगिक ढाँचे को बल मिले। जैसे जिप्सम से सल्फर निर्माण और रेयान के लिए रासायनिक पल्प का निर्माण आदि।

नियमों के दायरे में ऊपर लिखित प्राथमिकताओं को प्राप्त करने के लिए 1955-56 के लिए उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किए गए।

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में आधुनिकीकरण एवं मशीनों तथा तकनीक बदलाव के लिए 150 करोड़ के बजाय 233 करोड़ रुपए के निवेश का प्रावधान किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के लिए 94 करोड़ एवं आधारभूत तथा परिवहन उद्योग के लिए एकमुश्त 50 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया।

विभिन्न क्षेत्रों के विकास में हमें कितनी सफलता मिली, इसके विस्तार में हमें जाने की आवश्यकता नहीं। सामान्य तौर पर हम कह सकते हैं कि निजी क्षेत्रों को जो जिम्मेदारी दी गई थी, उन्होंने उसे पूरा किया। हालाँकि कुछ खास उद्योगों ने योजना के लक्ष्यों के अनुरूप प्रदर्शन नहीं किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान निजी क्षेत्रों ने 233 करोड़ रुपए का पूँजी निवेश किया, जबकि सार्वजनिक क्षेत्रों में पूँजी निवेश की कमी रही।

रुई, कपड़े, चीनी, खाद्य तेल, सीमेंट, काग़ज़, सोड़ा, कास्टिक सोड़ा, रियान, बिजली के ट्रांसफार्मर, साइकिल, सिलाई मशीन और पेट्रोलियम रिफाइन के क्षेत्र में उत्पादन के लक्ष्य लगभग प्राप्त हो गए। लेकिन लोहा एवं इस्पात, अल्युमिनियम, मशीन एवं उपकरण, रासायनिक खाद, डीजल इंजन एवं पंप, ऑटोमोबाइल्स, रेडियो, बैटरी, बिजली के मोटर, बिजली के लैंप, पंखें, जूट के कपड़े, पेंट और वार्निश, प्लाईवुड, सुपर सल्फेटस, पावर एल्कोहल एवं काँच आदि के उत्पादन अपेक्षा के अनुरूप नहीं रहे।[1]

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के उत्पादन का रिकार्ड भी बहुत अच्छा नहीं रहा। नीचे तालिका में बड़े सार्वजनिक उद्यमों में लक्ष्य और वास्तविक उत्पादन के आँकड़े दिए जा रहे हैं। पहले स्टील प्लांट, जिसका काम 1957-58 तक पूरा हो जाना था, वह योजना के अंतिम वर्ष तक भी पूरा नहीं हुआ। जिन उद्यमों में लक्ष्य से कम उत्पादन हुए उनमें हैं—हिंदुस्तान शिपयार्ड, हिंदुस्तान मशीन टूल्स, हिंदुस्तान इनसेक्टीसाइडस, इनटेगरल कोच फैक्टरी, नेपा मिल्स, बिहार गवर्नमेंट सुपर फॉस्फेट, फैक्टरी और मैसूर आयरन एंड स्टील वर्क्स शामिल हैं। (देखें पेज नं. 111)

हालाँकि कोई ढाँचागत बदलाव नहीं किया जा सका और न बदलाव के लिए कोई

---

1. इंडिया 1957, पृष्ठ 292।

आधार तय किया गया। फिर भी जितना संभव हो सका, आधुनिक औद्योगिकीकरण में कुछ विविधीकरण की कोशिश की गई। उद्योगपति भी परंपरागत उद्योगों जैसे कॉटन, जूट, टैक्सटाइल और उपभोक्ता उद्योग जैसे चीनी, साबुन, रसायन और पेपर से आगे ज़्यादा नहीं बढ़ पाए। दोनों क्षेत्रों को साथ ले तो भी सभी मामले में लक्ष्य हासिल नहीं किए जा सके। पूँजीगत माल, भले ही कम रहे, के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। निर्माण से जुड़े उद्योगों जैसे सीमेंट और रसायन के उत्पादन में भी वृद्धि हुई, लेकिन तेजी से बढ़ रही माँग के अनुरूप नहीं रही। किसी नतीजे पर पहुँचे बिना और संदर्भित खूबियों के या प्राथमिकता देने को औचित्य के निजी क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्रों के मुक़ाबले बेहतर प्रदर्शन किया। तुलनात्मक दृष्टिकोण से सार्वजनिक उपकरणों में प्रगति की धीमी दर का प्रमुख कारण यह रहा कि ये सभी उपक्रम नए क्षेत्रों में थे। नए क्षेत्र सिर्फ़ सरकार के लिए नहीं बल्कि देश के लिए भी हैं। चूँकि औद्योगिक क्षेत्र को कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं था, इसलिए काम पूरा होने में अधिक समय लगना अवश्यंभावी था। हाँ, यह ठीक है कि बहुत सारा श्रम और सार्वजनिक धन बचाया जा सकता था, यदि सरकार औद्योगिक संस्थानों को चलाने के मामले में निजी प्रबंधकों और संगठन से जुड़े मेधावी लोगों से सहयोग लेती। वे अखिल भारतीय आर्थिक सेवा जैसे विभाग का गठन भी कर सकती थी। यहाँ तक कि अधिकारियों की सेवाएँ भी नहीं ली गईं।[2] अधिकतर मामलों में नागरिक सेवाओं के अधिकारियों को जिनका औद्योगिक उपकरण चलाने में बहुत कम अनुभव था, उन्हें मोटी पूँजी वाले बड़े-बड़े उपक्रमों का प्रमुख बना दिया गया। इन हालात में, उन्हें बिना किसी तैयारी के नए काम पर लगा दिया गया, जिस तरह उन्होंने इन उपक्रमों का प्रबंधन सँभाला इसके लिए उन्हें सामान्य तौर पर शाबाशी मिलनी चाहिए थी।

दूसरी तरफ़ निजी क्षेत्र न सिर्फ़ संगठित थे बल्कि उनके पास कामकाज का तरीक़ा था, पर्याप्त पूँजी थी और उत्पादक परिसंपत्तियाँ भी थीं। इस मामले में मुख्य प्रश्न सिर्फ़ इतना था कि एक जाने-पहचाने क्षेत्र में बड़ी पूँजी का प्रयोग कैसे किया जाए।[3] यहाँ यह दिमाग में रखना ज़रूरी है कि निजी क्षेत्रों की पूरी सफलता बिना किसी सहायता की नहीं थी। गौरव की इस अनुभूति में विदेशी उद्यमियों की भी बड़ी भूमिका थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 340 करोड़ रुपए स्थायी पूँजी के रूप में सकल निवेश का आकलन किया गया। यदि हम सरकार द्वारा दी गई कुछ अग्रिम राशि, आंतरिक और विदेशी पूँजी को हटा दे तो बमुश्किल निजी क्षेत्रों को 100 करोड़ रुपए दिए गए। पृष्ठ संख्या 113 पर दी गई तालिका में योजना के दौरान निजी निवेश के विभिन्न स्रोतों को दिखाया गया है।

---

2. गृह मंत्रालय के आदेश, तिथि नवंबर, 1957 के अंतर्गत विभिन्न सरकारी विभागों के अफ़सरों का एक अखिल भारतीय प्रबंधन संवर्ग तैयार किया गया।

3. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 657।

तालिका

1955-56 की प्रमुख राज्य उद्यमों के दौरान उत्पादन

	योजना	इकाई	लक्ष्य 1955-56	उत्पादन
1.	पहले स्टील प्लांट्स	टन	3,50,000 (पिग आयरन)	शून्य
2.	हिंदुस्तान शिपयार्ड	जीआरटी	20,000	13,000
3.	हिंदुस्तान मशीन टूल्स	अदद	270	17
4.	सिंदरी फर्टिलाइजर फैक्टरी	टन	3,15,000	3,26,000
5.	हिंदुस्तान एंटीबायोटिक्स	मिल (मेगायूनिट)	4.8	6.6
6.	हिंदुस्तान केबल्स	मील	470	525
7.	हिंदुस्तान इनसेक्टीसाइड्स (डी.डी.टी.)	टन	700	284
8.	चितरंजन लोकोमोटिव्स	अदद	92	125
9.	इनटेग्रल कोच फैक्टरी	अदद	50	20
10.	इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज	अदद टेलीफोन		
		अदद टेलीफोन	50,000	50,000
		एक्सचेंज लाइंस	35,000	35,000
11.	मैसूर आयरन एंड स्टील			
	स्टील	000 टन	100.	35.0
	पिग आयरन	,,	100	52.4
	सीमेंट	,,	90	76.8
12.	यू.पी. गवर्नमेंट सीमेंट फैक्टरी	,,	200	260
13.	नेपा मिल्स		30	4.2
14.	बिहार गवर्नमेंट सुपर फोस्फेट फैक्टरी	,,	16.5	—

पूँजी संबंधित नियंत्रक द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार 1951-55 की अवधि में कंपनियों द्वारा जुटाई गई राशि को उनके सामने दरशाया गया है। (देखें पृष्ठ संख्या 113 की तालिका 2)

औद्योगिक और ग़ैर-औद्योगिक कंपनियों के आँकड़े अलग-अलग उपलब्ध नहीं है और न ही पाँच वर्षों के निवासी और ग़ैर-निवासी के ही कोई आँकड़े हैं। ग़ैर-

औद्योगिक कार्यों और ग़ैर-निवासियों के लिए स्वीकृत राशि को घटाने के बाद औद्योगिक विकास में घरेलू क्षेत्र का योगदान कोई बहुत बड़ा नहीं है। यदि कॉटन टेक्सटाइल, चीनी, काग़ज़ और अन्य उपभोक्ता सामानों जैसे परंपरागत उद्योगों में किए गए निवेश को हटा दें तो हम कह सकते हैं कि भारतीय उद्योगपतियों ने नए क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय पूँजी निवेश नहीं किया। इनके मुक़ाबले लघु उद्योग निर्माताओं ने ज़्यादा गंभीर प्रयास किए और उद्यमशीलता का जज्बा ज़्यादा दिखाया।

तालिका

(करोड़ रुपए में)

1. औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगम और औद्योगिक साख व पूँजी निवेश निगम के ऋण	18
2. प्रत्यक्ष ऋण, समीकरण कोष से अप्रत्यक्ष ऋण और राज्य सरकारों द्वारा निजी कंपनियों में अंशपूँजी के रूप में सहयोग-सह-ऋण	26
3. विदेशी पूँजी (आपूर्तिकर्ताओं की देनदारियाँ भी)	45
4. नए अंश (इश्यूज)	40
5. निवेश के लिए उपलब्ध आंतरिक स्रोत (नई इकाइयों या प्रतिस्थापन के लिए)	150
6. अन्य स्रोत जैसे प्रबंधकीय एजेंटों द्वारा अग्रिम, ईपीटी वापसी	61
कुल	340

तालिका
जनवरी 1951 से दिसंबर 1955 की अवधि में निर्गत पूँजी और चुकता पूँजी

(करोड़ में)

	राशि निर्गत पूँजी	राशि चुकता पूँजी
1. नए शेयर (साधारण और नकदी वरीयता)	155.81	134.24
2. बोनस इश्यू	40.70	40.70
3. ऋण-पत्र	33.94	33.94
कुल		208.89

फैक्टरी रोज़गार—यह जानकार आश्चर्य होगा कि श्रमिकों के रोज़गार में वृद्धि औद्योगिक उत्पादन में हुई वृद्धि की समानुपाती नहीं हुई। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का साधारण सूचकांक 1951 में 100 था, जो बढ़कर 1955 में 122.1 और 1996 में 132.8 हो गया। लेकिन भाग-2 के राज्यों को छोड़कर प्रतिदिन औसत कर्मियों की संख्या 1951 में जो 25,36,544 थी, वह 1955 में मामूली रूप से बढ़कर 26,90,403 ही रही। आगे दी गई तालिका प्रमुख बड़े उद्योगों में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि और औसत प्रतिदिन कर्मचारियों की संख्या दरशाती है।

तालिका

कुछ खास उद्योगों में उत्पादन और रोज़गार के आँकड़े

(आधार 1951-100)

	1952	1953	1954	1955	1956
1. टैक्सटाइल्स					
उत्पादन	103.7	107.1	110.0	113.6	119.6
रोज़गार	99.7	97.8	98.2	99.8	—
2. कोयला					
उत्पादन	105.6	104.5	107.2	111.4	—
रोज़गार	98.8	96.8	96.6	98.9	—
3. खाद्य पदार्थ (पेय पदार्थ छोड़कर)*					
उत्पादन	112.4	105.7	101.7	121.4	—
रोज़गार	93.1	91.3	94.6	100.2	—
4. काग़ज़ और काग़ज़ के बोर्ड					
उत्पादन	104.2	105.9	117.7	140.2	—
रोज़गार	100.0	101.9	105.7	110.9	—
5. रसायन					
उत्पादन	117.9	130.0	141.1	159.0	—
रोज़गार	94.8	98.8	99.8	110.8	—

* संलग्न (1) चीनी (2) चाय (3) नमक (4) सब्जियाँ-तेल उत्पादन

स्पष्ट है कि दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है। उत्पादन में वृद्धि या तो युक्तिसंगत के कारण हुई या फिर मज़दूरों ने मेहनत ज़्यादा की। हाँ, ठीक है कि कई नए उद्योग खुले और नए हाथों को काम भी मिला। लेकिन रोज़गार के बने नए अवसर का प्रभाव इसलिए

नहीं दिखा, क्योंकि पहले से चल रहे उद्योगों में रोज़गार कम होते चले गए। योजना आयोग दूसरे देशों के अनुभवों पर ज़्यादा आश्रित था। आयोग ने कहा, 'हालाँकि उपक्रमों में कार्यों के प्रति एकाग्रता और विस्तार, तकनीक में सुधार, यांत्रिकीकरण और श्रमिकों का वैज्ञानिक तरीक़े से उपयोग के कारण प्रसंस्कृत व निर्माण उद्योगों द्वारा रखे गए हाथ से काम कर रहे मज़दूरों की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई है, लेकिन इन्हीं कारकों के कारण प्रशासनिक, वित्तीय पर्यवेक्षण और विपणन सेवाओं के लिए लोगों की माँग बढ़ी है और काम-काज की तैयारी, संगठन, समन्वय और पर्यवेक्षण का काम हाथ से काम करनेवाले श्रमिकों को भी दिया गया है। ये सभी विविध कार्य, जिसमें विशेषता की ज़रूरत है, उसे वाणिज्यिक, कार्यालय श्रमिकों, पर्यवेक्षकों, तकनीकी व प्रबंधन वर्ग के प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा किए जा रहे हैं।'[4] लेकिन पढ़े-लिखे वर्गों में बढ़ती बेरोज़गारी यह दरशाती है कि हाथ से काम करनेवाले को कुशल श्रमिकों में बदलने पर ज़ोर ने वास्तव में कोई परिणाम नहीं दिखाया है। उपरोक्त कथन यह भी खुलासा करता है कि आयोग ने भारतीय उद्योग के लिए किस तरह के प्रारूप की कल्पना की है।

भले ही प्रथम पंचवर्षीय योजना के पाँच वर्ष के दौरान रोज़गार और मज़दूरी में कोई बहुत बढ़ोतरी नहीं हुई हो, लेकिन समग्र रूप से देखें तो इस योजना में भारतीय उद्योगों के लिए आर्थिक माहौल पूरी तरह अनुकूल रहा है। केवल 1952 को छोड़कर जब कोरियाई बूम के बाद हल्की मंदी आ गई थी, औद्योगिक लाभ काफ़ी उत्साहवर्धक रहा था। जैसा कि पृष्ठ संख्या 116 की तालिका में दरशाया गया है।

संक्षेप में परिस्थितियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'कुल मिलाकर देखें तो औद्योगिक उपक्रमों पर साधारण आर्थिक स्थिति का कोई विपरीत असर नहीं पड़ा। करों में वृद्धि का बोझ लोगों को महसूस नहीं हुआ। चीज़ों के दाम और मज़दूरी स्थिर रही। साख आसानी से उपलब्ध हुई, क़र्ज़ की दर न कम थी न ज़्यादा। विदेशी मुद्रा के भुगतान की स्थिति संतोषजनक थी और उपक्रम लगाना लाभप्रद था। कुछ नियोजित और कुछ अपने आप आकस्मिक ख़र्च, बचत और निवेश मोटे तौर पर पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष तक संतुलित रहे।'[5]

लघु उद्योग

पहली पंचवर्षीय योजना को पुनर्स्थापन और पुनर्गठन की योजना कहा गया, लेकिन जहाँ तक लघु उद्योग की बात है, तो इस क्षेत्र का पुनर्स्थापन नहीं किया गया। युद्ध के दौरान काफ़ी संख्या में लघु उद्योग स्थापित हुए थे, ताकि रक्षा विभाग की ज़रूरतों के

---

4. द हिंदू : सर्वे ऑफ़ इंडियन इंडस्ट्रीज़, 5 जनवरी, 1958
5. द हिंदू : सर्वे ऑफ़ इंडियन इंडस्ट्रीज़, पृष्ठ 3

उन सामानों की आपूर्ति की जा सके, जिसका हम आयात नहीं कर सकते। लघु क्षेत्र के उद्यमियों ने माँग और आपूर्ति की खाई तो पाट दी, लेकिन यदि सरकार उनके प्रति और कृतज्ञता का भाव रखते हुए नीति बनाती तो वे देश की औद्योगिक नींव के लिए एक संतुलित व मज़बूत आधार खड़ा कर लेते। यदि आज भी उनमें से कुछ अपना अस्तित्व बचाए हुए हैं और अभी भी आगे बढ़ रहे हैं, यह सरकार की उदासीनता के ख़िलाफ़ संगठित निजी क्षेत्र की कर्मठता का परिणाम है।

तालिका
औद्योगिक मुनाफा का सूचकांक

(आधार 1939–100)

उद्योग	1951	1952	1953	1954
जूट	679.1	183.4	326.2	356.4
कॉटन	555.1	262.8	379.4	387.2
चाय	103.9	–88.8	391.4	712.3
चीनी	420.8	409.1	419.8	334.9
काग़ज़	604.1	566.8	512.7	666.1
लौह–इस्पात	157.7	162.6	179.4	222.9
कोयला	178.4	220.4	145.5	153.0
सीमेंट	419.7	293.4	279.0	341.4
कुल उद्योग	310.5	190.6	261.1	314.2

स्रोत : वित्त मंत्रालय

पहली पंचवर्षीय योजना ने इन उद्योगों को एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था के आधार के रूप न देखकर सिर्फ़ कुछ पढ़े–लिखे लोगों को रोज़गार देनेवाले माध्यम के रूप में देखा। 'जन रोज़गार के क्षेत्र' पर आयोग लिखता है, ''शिक्षा प्राप्त कर प्रवेश करनेवाले का वर्ग सीमित है, और यही बात बड़े उद्योगों और इससे जुड़े क्षेत्र में रोज़गार के उपलब्ध अवसर के साथ भी है। वे जिन्होंने कुछ प्रशिक्षण और शिक्षा प्राप्त कर ली है, उनके लिए सामान्य तौर पर कहें तो काम के लिए सबसे सही दिशा लघु उद्योगों का विकास ही है। इसके अलावा लघु उद्योग व हस्तकला दोनों ही महिलाओं को घर पर या संगठित रूप से रोज़गार देने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।''

इसी दृष्टिकोण के कारण योजना के तीसरे वर्ष में इन उद्योगों पर तब कुछ ध्यान दिया गया, जब बढ़ती बेरोज़गारी से देश की स्थिरता के लिए खतरा पैदा होने लगा। एक

लघु उद्योग बोर्ड का गठन किया गया और इसने क्षेत्रीय लघु उद्योग सेवा संस्थानों की स्थापना की। वर्ष 1955-56 के आख़िरी में औद्योगिक एस्टेट स्थापित करने की योजना तैयार की गई। 51 औद्योगिक एस्टेट की योजना को मंजूरी दी गई और इसके लिए 51 लाख रुपए की सहायता प्रदान की गई। लेकिन इसमें से कितना ख़र्च हुआ मालूम नहीं। लघु उद्योगों को वित्त उपलब्ध कराने के लिए राज्यों में वित्त निगमों की स्थापना की गई। यहाँ तक कि 1955-56 के अंत में ऋण प्रक्रिया को एक दम उदार बना दिया गया और एक हज़ार रुपए तक का ऋण व्यक्तिगत अनुबंध पर दिया जाना लगा। फिर भी इसमें कोई बड़ी उपलब्धि हासिल नहीं हुई। राज्य वित्त निगमों ने 1953-56 के दौरान तीन वर्षों में 3.52 करोड़ रुपए के ऋण जारी किए। पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा के आँकड़ों से यह तय करना मुश्किल है कि आख़िर लघु उद्योगों के विकास में इस मद से प्राप्त कितने पैसे ख़र्च हुए, क्योंकि इसके साथ ग्रामीण उद्योग और हस्तकला को भी जोड़ दिया गया और इस योजना में जारी धन के कुल योग में हैंडलूम सेस से प्राप्त 20 करोड़ तक की योजनाओं के वित्त पोषण को भी शामिल कर दिया गया।

1951-56 की अवधि में यह राशि 43.75 करोड़ रुपए है। इस आँकड़े में 1955-56 के लिए संशोधित अनुमान की भी गणना कर ली गई है। वास्वत में तो इससे कम ही होगा। बड़े उद्योगों और निजी क्षेत्रों को दी गई सहायता से इसकी तुलना करें। यह कहा जाना चाहिए कि भले ही ये उद्योग लघु क्षेत्र के माने जाते हैं, लेकिन इनका फैलाव और क्षेत्र बहुत बड़ा है। 1954 की निर्माताओं की गणना के अनुसार 31,300 चालू फैक्टरियों में से 24,079 फैक्टरियों लघु उद्योग क्षेत्र की थीं। वे 4,96,491 मज़दूरों को रोज़गार दे रही थीं। अगर हम उन्हें कच्चा माल, उचित दर पर साख और विपणन सुविधाएँ प्रदान कर दें तो उनके पास उत्पादन की भारी संभावनाएँ और क्षमता हैं।

योजना आयोग यह सोचता है कि राज्यों ने लघु क्षेत्र के उद्योगों के विकास में कोई अतिरिक्त रुचि नहीं दिखाई। समीक्षा कहती है—"कुछ राज्यों को छोड़कर, लघु उद्योगों के विस्तार और विकास के लिए पहल मुख्य रूप से भारत सरकार की तरफ़ से हुई। केंद्र सरकार ने कई बोर्डों का गठन किया और बड़ी मात्रा में वित्त प्रदान किए। पहली पंचवर्षीय योजना में जो इस मद में 45.5 करोड़ रुपए ख़र्च किए गए, उनमें से 33.6 करोड़ अकेले सीधे केंद्र सरकार ने ख़र्च किए। सिद्धांत रूप में विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था का उददे्श्य अपवाद रहित था, लेकिन व्यवहार में इसे खोखला नारा बन जाने दिया गया।"[6]

---

6. के. संथानम : कॉटेज एंड पॉवर इंडस्ट्रीज़, हिंदू : सर्वे ऑफ़ इंडस्ट्रीज़, 5 जनवरी, 1957

10

परिवहन

पहली पंचवर्षीय योजना में परिवहन क्षेत्र के विकास के लिए 433 करोड़ रुपए के कुल परिव्यय का प्रावधान किया गया। बाद में लक्ष्य बढ़ाकर 510 करोड़ रुपए का कर दिया गया। रेलवे मूल्य हाऊस कोष में योजना प्रावधान के अतिरिक्त 165 करोड़ और ख़र्च होने थे। इतना बड़े योजना परिव्यय के बावजूद पंचवर्षीय योजना ने देश की परिवहन व्यवस्था की कोई समन्वयी और एकीकृत तसवीर पेश नहीं की। योजना ने देश की बढ़ रही और बदल रही अर्थव्यवस्था की ज़रूरत के अनुसार परिवहन व्यवस्था की आवश्यकता की संकल्पना प्रस्तुत नहीं की और विभिन्न परिवहन माध्यमों एवं आयामों के बीच अंतर समझने में पूरी तरह विफल रही। यह जानते हुए भी अंतर्ज़लीय परिवहन हमारी व्यवस्था का प्रमुख अंग है, उस पर कोई विचार नहीं किया गया। परिवहन का यह पूरा विषय रेलवे और विभिन्न राज्यों की सड़क परिवहन योजनाओं का बेतरतीब घालमेल है। केंद्र सरकार द्वारा आज़ादी के तुरंत बाद ही नवंबर 1947 में केंद्रीय परिवहन बोर्ड के गठन के बाद भी उसका कामकाज इतना असंतोषजनक होगा यह आश्चर्य की बात है। इस बोर्ड का गठन इस उद्देश्य से किया गया था कि यह परिवहन की प्रमुख समस्याओं और उसे दूर करने के लिए आवश्यक नीतियों पर अपनी राय देगा। इसका मुख्य कार्य परिवहन के सभी माध्यमों के बीच समन्वय बनाना और परिवहन क्षेत्र का विकास इस तरह से सुनिश्चित करना कि वह देश की कृषि व औद्योगिक योजनाओं के अनुकूल हो। यह बोर्ड एक बहुत ही मज़बूत और असरदार इकाई हो सकता था, क्योंकि परिवहन व संचार तथा वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री इसका प्रतिनिधित्व करते हैं और वित्त, रक्षा, वाणिज्य एवं उद्योग, गृह तथा रेलवे व परिवहन मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी इसके सदस्य होते हैं।

किसी बुजुर्ग दंपती के दुलारे बच्चे की तरह रेलवे ने परिवहन विकास मद के अधिकतर वित्तीय स्रोत को अपने लिए समेट लिया। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि रेलवे

ही भारत की परिवहन व्यवस्था की अकेली पहचान है और वे इसे हमारी अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा मानते हैं। किसी तरह से भी रेलवे के महत्त्व को कम किए बिना यह कहा जाना चाहिए कि परिवहन के और माध्यमों का योगदान किसी से कम नहीं है और उनके विकास के लिए भी यदि बराबर ध्यान दिया गया तो स्थिति ज़्यादा बेहतर हो सकती है और कमियों को ख़त्म किया जा सकता है।

योजना के अंत में 2,36,562 मालवाहक वैगन थे और 16,692 यात्री डिब्बे थे, लेकिन 1954 के अंत तक 3,53,000 मोटर गाड़ियाँ थीं। इन आँकड़ों का अलग-अलग विश्लेषण और 1953-54 के रेलवे के आँकड़े से इनकी तुलना करना काफ़ी दिलचस्प होगा। यह खुलासा कर देगा कि सड़क परिवहन रेलवे से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

तलिका

1953-54 के अंत में इंजन, डिब्बे और ऑटोमोबोइल्स सेवाएँ

रेलवे	
इंजन	8,627
यात्री डिब्बे	15,266
माल ढुलाई वैगन	223,188
ऑटोमोबोइल्स	
मोटरसाइकिलें	30,242
निजी कारें	1,59,630
जन सेवा वाहन	54,555
मालवाहक वाहन	98,902
अन्य	9,724

अगर हम मोटरसाइकिलें और निजी मोटरगाड़ियों को निकाल भी दें तो भी यात्रियों को ढोने वाली गाड़ियों की संख्या 1,65,179 आती है। यदि सरकार थोड़ी सहानुभूतिपूर्ण नीतियाँ बनाती तो इन गाड़ियों की संख्या और अधिक हो सकती थी।

परिवहन के इन आधुनिक माध्यमों के अलावा परंपरागत बैलगाड़ियों एवं देसी शिल्पों की संख्या भी कोई ज़्यादा [illegible] नहीं है। इनकी संख्या के बारे में हाल के वर्षों में कोई सर्वेक्षण नहीं हुआ है। लेकिन एक आकलन के अनुसार युद्ध से पहले 261 करोड़ के निवेश से 87 लाख बैलगाड़ियाँ थीं। यात्रियों को ढोने का कोई अनुमान नहीं लगाया गया, लेकिन बैलगाड़ियों से सालाना एक करोड़ माल की ढुलाई की गई। बैलगाड़ी उद्योग से एक करोड़ लोगों को रोज़गार मिल रहा है और दो करोड़ बैलों को

चारा। आधुनिक परिवहन के विकास के साथ ही यह माना जा रहा है कि बैलगाड़ियों की स्थिति दोयम हो जाएगी और कुछ लोग यह भी मान रहे हैं कि समय के साथ बैलगाड़ी की उपयोगिता समाप्त ही हो जाएगी। लेकिन जब तक व्यवस्था सुदूर गाँवों को मोटरवाहन के उपयुक्त सड़कों से नहीं जोड़ती और जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कृषि कार्य का यांत्रिकीकरण नहीं हो जाता, तब तक बैलगाड़ी उद्योग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा। जैसा कि हमारे पास खनिज तेलों की कमी है, वैसे में पूरी तरह से मोटरवाहन पर निर्भर हो जाने की सलाह कैसे दी जा सकती है। इस सवाल पर हम यहाँ चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ तो यही कह सकते हैं कि बैलगाड़ी उद्योग को उखाड़ना किसी भी हाल में हमारे लिए ग्राह्य नहीं है। हाँ, यह ठीक है कि कुछ जंगली इलाक़े में ठेकेदारों को सड़क बनाने के लिए प्रवेश देने से जनजातियों की रोज़ी रोटी छिन जाएगी, क्योंकि वे जंगली उत्पादों को ढोने के लिए बैलगाड़ी का ही प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि जनजाति कल्याण मंत्रालय ने भी इनके वैकल्पिक रोज़गार के लिए कुछ नहीं किया। पहली पंचवर्षीय योजना ने यातायात के इस महत्त्वपूर्ण माध्यम और बहुतों के लिए जीविका के प्राथमिक स्रोत तथा देश के लगभग सभी किसानों के लिए बचत के इस उद्योग पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस उद्योग को भी आधुनिक तकनीक की सेवाओं की, खासकर पहियों के डिज़ाइन में सुधार के लिए, ज़रूरत है।

अंतरदेशीय जलमार्ग

कभी अंतरदेशीय जल यातायात परिवहन का मुख्य स्रोत हुआ करता था। आज बड़े मोटर जहाज़ों से सिर्फ़ 1557 मील और देसी नावों से 3587 मील ही भ्रमण कर सकते हैं। अंतरदेशीय जलमार्गों में कमी का प्रमुख कारण अंग्रेजी हुकूमत द्वारा भारी निवेश के जरिये इकलौते रेलवे को ज़्यादा महत्त्व देना है, ताकि ब्रिटेन से बड़ी मशीनें और अन्य उपकरण आयात किए जा सकें। नदियों की ऊपरी पहुँच से सिंचाई के लिए बड़ी मात्रा में जलदोहन के कारण भी नदियों की नीची पहुँच में पानी की कमी होने लगी। इस तरह सिंचाई में मिले फायदे से जल यातायात में नुक़सान हुआ।

पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान गंगा-ब्रह्मपुत्र क्षेत्र में अंतर्देशीय जलयातायात के विकास के लिए 1952 में अंतरराज्यीय बोर्ड का गठन किया गया। इसने तीन प्रायोगिक परियोजनाओं को हाथ में लेने के अलावा कोई बड़ा काम नहीं किया। एक परीक्षण परियोजना के लिए आवश्यक उपकरण ख़रीदने के लिए 25 लाख रुपए की राशि स्वीकृत की गई। नदी परिवहन सबसे सस्ता यातायात का माध्यम है और अभी भी अपनी जीविका के लिए करोड़ों लोग इस पर आश्रित हैं। आगे दी गई तालिका में विभिन्न मदों में योजना परिव्यय की जानकारी हमने जो लिखा है, उसे पूरी तरह सही ठहराती है।

तालिका

(करोड़ रुपए में)

	योजना प्रावधान	अनुमानित ख़र्च 1951-56 में
1. रेलवे	250.00 (150.00)	267.07 (165.00)
2. सड़क	110.23	134.47
3. सड़क परिवहन	8.97	12.35
4. जहाज़रानी	18.06	18.71
5. बंदरगाह एवं समुद्री तट	33.08	27.57
6. नागरिक एवं वायु परिवहन	22.87	23.19
7. अन्य परिवहन	0.10	1.90
कुल	443.31	485.26

विशेष: कोष्ठक में दिए गए आँकड़े रेलवे के मूल्य ह्रास रिज़र्व कोष योगदान के हैं, जो योजना में रेलवे के लिए प्रावधान के अतिरिक्त हैं।

स्रोत : पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा।

रेलवे

वास्तव में पहली योजना में रेलवे के लिए उन्हीं कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया गया जिन्हें पहले शुरू कर दिया गया था। 1930 की महामंदी के कारण पुनर्वास और पुनर्स्थापन की समस्या, युद्ध के वर्षों में उपेक्षा का भाव और विभाजन के कारण उत्पन्न विशेष परिस्थितियाँ रेलवे की प्रमुख समस्याएँ थीं। यह कहा जा सकता है कि योजना अवधि में अटके कामों पर ध्यान दिया गया, लेकिन ये काम पूरे नहीं हो सके, जैसा कि इस तालिका में दिखाई दे रहा है।

तालिका
पुराने स्टॉक और कुल स्टॉक का प्रतिशत

	इंजन		माल ढुलाई वैगन		यात्री डिब्बे	
	बी.जी.	एम.जी.	बी.जी.	एम.जी.	बी.जी.	एम.जी.
31 मार्च 1951 को	23.0	31.0	13.3	29.4	26.5	45.0
31 मार्च 1956 को	33.2	25.8	18.0	21.2	32.3	43.7
1955-56 की अवधि में कुल स्टॉक	880,3	227,866	16,236			

मेट्रो गेज़ सिस्टम में थोड़ा सुधार हुआ, लेकिन ब्राड गेज़ सिस्टम में और गिरावट आई। संक्षेप में कहे तों, जहाँ तक पुनर्वास का मामला है, हम 1951 की स्थिति से भी पीछे खड़े हैं। देसी रेल इंजन व डिब्बे के उत्पादन में बढ़ोतरी देखी गई। चितरंजन रेल कारख़ाना, जो कि पहली पंचवर्षीय योजना के अस्तित्व में आने से पहले 1950 में ही उत्पादन करने लगा था, ने सितंबर 1956 तक लक्ष्य से अधिक 424 रेल इंजनों का उत्पादन कर् दिया। योजना के दौरान रेलवे कोच का घरेलू उत्पादन 4351 रहा, जो कि लक्ष्य 4380 के मुक़ाबले थोड़ा ही कम है। इस अवधि में 30,000 वैगन उत्पादन योजना लक्ष्य के विपरीत कुल 41,192 रेलवे वैगन का घरेलू उत्पादन दर्ज किया गया। इसलिए ऐसा लगेगा कि रेलवे उपकरणों का उत्पादन भी तय लक्ष्य से अधिक हुआ।

पहली पंचवर्षीय योजना ने यह आकलन किया था कि ''31 मार्च, 1956 तक कुल स्टॉक, जिन्हें बदलने की आवश्यकता होगी, उनमें 2,0,92 रेल के इंजन, 8,535 यात्री डिब्बे और 47,533 माल ढुलाई के वैगन होंगे।''[1] पर वास्तव में योजना अवधि के दौरान रेलवे इंजन व डिब्बे के नए स्टॉक में 1,476 रेल इंजन, 4958 यात्री डिब्बे और 61, 676 माल ढुलाई के वैगन तैयार किए गए।[2] इसलिए योजना के अंत तक पुनर्स्थापन में कोई समस्या नहीं आनी चाहिए थी। हाँ, सामान्य तौर पर अन्य सभी उद्योगों की तरह यहाँ भी पुनर्स्थापन को लेकर सवाल खड़ा किया जाएगा। लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना ने फिर यही समस्या खड़ी की। उनका आकलन है—''पहली पंचवर्षीय योजना के अंत तक 9,262 रेल इंजनों, 23,779 यात्रि डिब्बे और 266,049 माल ढुलाई के वैगन पुराने हो जाएँगे और उन्हें बदलने की ज़रूरत होगी। ज़ाहिर है, पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं ने जो संख्या दी, उनमें अंतर था। ऐसी विसंगति शायद इसलिए आई कि प्रथम पंचवर्षीय योजना ने एक औसत के आधार पर स्टॉक के नवीनीकरण का आकलन किया था। जबकि नवीनीकरण स्टॉक के काम करने की उम्र पर आधारित होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि पीछे वर्ष दर वर्ष कोई बड़े पैमाने पर नवीनीकरण नहीं हुआ। इसलिए किसी खास वर्ष में स्टॉक में भारी वृद्धि का मतलब एक आकलित उम्र के बाद के स्टॉक का बड़े पैमाने पर प्रतिस्थापन करना है। रेल इंजन और माल ढुलाई के वैगन का एक औसत आर्थिक जीवन 40 वर्ष का और यात्री डिब्बे का 30 वर्ष माना जाता है।

भारी योजना परिव्यय और अतिरिक्त संसाधन मिलने के बावजूद रेलवे माल ढुलाई व यात्री यातायात की अतिरिक्त माँग के साथ सामंजस्य नहीं बिठा सका। वास्तव में पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान जो औद्योगिक कार्यक्रम लिए गए और जिनका

---

1. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 462।
2. इंडिया 1957।

द्वितीय योजना पर खासा प्रभाव पड़ने वाला था, उनसे रेलवे पर भारी बोझ बढ़ गया। बिहार के सिंदरी खाद कारख़ाना के लिए एक हज़ार किलोमीटर दूर राजस्थान के बीकानेर से ट्रेन भरकर जिप्सम भेजा जा रहा है। तैयार माल को देश भर में पहुँचाने के लिए भी अतिरिक्त परिवहन की ज़रूरत है। रेलवे बढ़ रही परिवहन आवश्यकता को पूरा करने में विफल हो रहा है और भविष्य में भी कोई आशा नहीं है। या तो हम औद्योगीकरण की पद्धति बदल दें, ताकि प्रसंस्करण या उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल की ढुलाई कम-से-कम हो सके या फिर रेलवे के बोझ कम करनेवाले परिवहन के किसी अन्य माध्यम को विकसित करें। अच्छा तो है कि हम दोनों करें।

रेल व्यवस्था और विफल साबित होती, यदि रेलवेकर्मी अपनी कार्यदक्षता का मानक ऊँचा न उठाते, जो कि युद्ध के समय काफ़ी नीचे चला गया था। माल ढुलाई के लिए वैगनों के उत्पादन में यदि उल्लेखनीय वृद्धि हुई होती तो यह रेलवे स्टॉक की काफ़ी हद तक क्षतिपूर्ति कर देती। यह तालिका योजना अवधि में हुई प्रगति को दरशाती है।

तालिका
कार्य क्षमता के मुख्य सूचकांक

वर्ष	वैगन मील प्रति दिन		इंजन मील प्रति इंजन दिन		शुद्ध दस मील प्रति वैगन दिन		सामान्य	
	बी जी	एम जी	बी जी	एम जी	बी जी	एम जी	बी जी	एम जी
1951.52	49.9	32.4	109	104	463	198	102.3	93.6
1952.53	41.1	31.2	109	104	444	204	101.7	95.9
1953.54	40.1	28.4	112	103	441	194	101.4	96.2
1954.55	43.3	28.4	112	103	483	194	103.6	97.9
1955.56	46.3	28.5	111	103	541	203	106.7	100.3

स्रोत : 1. पहली पंचवर्षीय योजना की समीक्षा, 2. भारत 1957।

गाड़ियों के परिचालन में उत्तम कार्य दक्षता दिखानेवाले कर्मचारियों को उचित पारितोषिक नहीं मिला। माल और यात्री गाड़ियों के सुरक्षित और त्वरित संचालन में सतर्कता, दक्षता और बुद्धिमत्ता से सड़क किनारे काम करनेवाले कर्मचारियों को उनकी सेवा की शर्तें, वेतनमान और स्वास्थ्य तथा शिक्षा संबंधी सुविधाओं के मामले में पूरी तरह अनदेखा किया गया। योजना अवधि के दौरान रेलवे की जीवन रेखा माने जानेवाले इन कर्मचारियों ने दो बार पूर्ण हड़ताल की धमकी दी। श्रमिकों के साथ प्रबंधन को

जोड़ने के सिद्धांत को सबसे पहले सरकारी उपक्रमों में लागू किया जाना चाहिए था, तब सरकार इसे निजी क्षेत्र में भी लागू करने का दबाव डाल सकती थी।

अन्य सरकारी महकमों की तरह रेलवे प्रशासन में भी ऊपर के अधिकारियों का ही बोलबाला है। 31 मार्च, 1956 को रेलवे की कुल सरकारी कर्मचारियों की संख्या 10,23,118 थी, जिसमें 2,921 कर्मचारी प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अधिकारी थे और 10,20,197 कर्मचारी तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के थे। इस वर्ष 2,921 अधिकारियों का कुल वेतन 3,36,84,403 रुपए था, जबकि दस लाख से अधिक तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों का कुल वेतन 145.17 करोड़ रुपए था। अर्थव्यवस्था में इन शीर्ष प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में कटौती की गुंजाइश थी। पिछले वर्षों में कार्यशील ख़र्चें में लगातार बढ़ोतरी देखी गई है। हमने पिछले अध्यायों में इस पहलू का विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

निम्न तालिका में सकल आय के मुक़ाबले कार्यशील ख़र्चे को प्रतिशत में और ब्याजदेय पूँजी पर शुद्ध आय का प्रतिशत दिखाया गया है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए पिछले वर्षों के भी आँकड़े दिए गए हैं।

तालिका

वर्ष	सकल अर्जन से सक्रिय ख़र्चों का प्रतिशत	ब्याज देय पूँजी पर शुद्ध अर्जन का प्रतिशत
1939.40*	65	4.6
1951.52	77	7.7
1952.53	80	6.0
1953.54	85	4.6
1954.55	81	5.7
1955.56	82	5.8

*1939–40 में अविभाजित भारत के आँकड़े

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान रेलवे को क्षेत्रवार उपसमूहों में बाँटा गया। इस योजना की शुरुआत करते समय कहा गया कि रेलवे व्यवस्था के एकीकरण से ख़र्च एवं परिचालन क्षमता में काफ़ी सुधार होगा। कार्यों व नियंत्रण में बेकार के दोहराव से बचाव होगा और संचालन क्षमता बढ़ेगी। इससे काम की मात्रा भी कम होगी, इंजनों और डिब्बों का सही व सुरक्षित उपयोग होगा और ट्रेन सेवाओं की समय सारणी व रूट में सुधार होगा। कार्यशालाओं की सुविधाओं का युक्तिसंगत उपयोग होगा। ख़रीद की केंद्रीय व्यवस्था होगी और भंडारों का रखरखाव बेहतर होगा, जिससे रेलवे के साधारण

प्रशासन पर अनुकूल प्रभाव होगा। रेलवे के क्षेत्रवार उपसमूहों में विभाजन, इन सब अपेक्षाओं से कहीं अधिक आम जनता को बेहतर परिवहन की सुविधा प्रदान करेगा।

रियासतों के विलय और भारत सरकार द्वारा उनके रेलवे के अधिग्रहण के बाद रेलवे का पुनर्गठन अवश्यंभावी था। लेकिन उसे लेकर खड़ी हुई अपेक्षाएँ पूरी नहीं हुईं। प्रशासनिक कार्य या परिचालन व्यय में कोई कमी नहीं आई। उससे कहीं अधिक भविष्य में देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखकर रेलवे का पुनर्गठन नहीं किया गया और रेलवे पर भारी बोझ डाल दिया गया। रेलवे बोर्ड द्वारा इस उद्देश्य से गठित समिति के सुझावों को राजनीतिक दबाव के कारण बदल दिया गया। इनके उद्घाटन के चार वर्ष के भीतर ही पूर्वी क्षेत्र के दोनों ज़ोन अलग-अलग हो गए। यह हमेशा वांछनीय है कि केंद्र का विस्तार ज़्यादा हो, न कि व्यवस्था का विभाजन, जो अंतत: समय के साथ एक जैविक एकता प्राप्त कर लेता है। एकीकरण हमेशा विभाजन से आसान होता है।

सड़क एवं सड़क परिवहन

पहली पंचवर्षीय योजना में सड़क व सड़क परिवहन की योजना बनाते समय योजना आयोग मुख्य तौर पर नागपुर योजना पर आश्रित था। वह दिसंबर 1943 का समय था, जब वैज्ञानिक एवं विस्तृत सड़क विकास योजना के प्रश्न के समाधान के लिए इंजीनियरों का सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस उद्देश्य के साथ एक योजना तैयार की गई कि कोई भी विकसित कृषि क्षेत्र के तहत आनेवाले गाँव से मुख्य सड़क की दूरी पाँच किलोमीटर से अधिक ना हो। अधिकतर मामले में अधिकतम दूरी की संकल्पना दो मील से कम ही रखी गई, जबकि ग़ैर-विकसित कृषि क्षेत्र के गाँवों से मुख्य सड़क की दूरी 20 किलोमीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। वैसे औसत दूरी छह से सात मील ही रही। भारत की आवश्यकता वैसे अधिक थी, लेकिन उन्होंने कोई बड़ा लक्ष्य नहीं रखा। लेकिन योजना आयोग ने महसूस किया कि यह भी लक्ष्य पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में हासिल नहीं किया जा सकता, इसलिए इसमें काफ़ी काट-छाँट कर दी गई। पैसे की कमी इसका मुख्य कारण था। इस मद में 110.23 करोड़ का प्रावधान किया गया, जिसे बाद में बढ़ाकर 135.15 करोड़ कर दिया गया और आबंटित लगभग पूरा पैसा जारी कर दिया गया।

राष्ट्रीय राजमार्ग को छोड़कर सभी सड़कें राज्यों के अधीन आती हैं। लेकिन राज्य मोटी गाड़ी पर लगे शुल्क से बने सड़क विकास कोष में से केंद्र से सहायता प्राप्त करते हैं। सड़क निर्माण सरकार का एक पारंपरिक काम होने के कारण केंद्र या राज्य सरकारों को इस कार्यक्रम को लागू करने में कोई दिक्कत नहीं होती। बल्कि कुछ राज्य सरकारें वास्तविक लक्ष्य से ज़्यादा ही सड़कें बना देती हैं और इसके लिए आयोग ने यह चेतावनी भी जारी की—"यह देखना है कि कई राज्य सरकारें अलग-अलग कई कारणों

से स्वीकृत योजनाओं से बाहर जाकर सड़कें बनवाती हैं और कइ बार स्वीकृत योजना की बलि देकर भी यह काम करती हैं। पंचवर्षीय योजना के तहत परियोजनाओं से भटकाव के कारण उत्पन्न परिस्थितियों व समायोजन के कारण नए कामों के प्रभावित होने की ओर समय-समय पर उनका ध्यान आकर्षित किया जाता है। किसी भी प्राधिकारी की ओर से इस तरह के क़दम योजना के उद्देश्यों के विपरीत प्रभाव वाले होते हैं और बहुत सारे छूटे अपूर्ण एवं अपर्याप्त लंबाई की सड़कों के निर्माण पर असर डालते हैं और यह अंततः बड़ी संख्या में लोगों के लिए अहितकर होता है।

कुछ सड़कें सामुदायिक विकास कार्यक्रम के तहत भी बनाई जाती हैं, लेकिन वे सभी बिना जुड़े टुकड़े होती हैं और मान्य व समन्वित योजनाओं के अनुरूप नहीं होतीं।

सड़क परिवहन

अधिकतर सड़कों की संतोषजनक हालात नहीं होने के बावजूद भारत में सड़क परिवहन बड़े पैमाने पर सामान व यात्रियों को ढोता है। तीस के दशक में मोटर ऑपरेटर रेलवे के मुक़ाबले सस्ती व बेहतर शर्तों पर अपनी सेवाएँ दे रहे थे। रेलवे को उनकी गंभीर चुनौती मिल रही थी। रेलवे आर्थिक रूप से महँगा होता जा रहा था। रेलवे को बचाने के लिए सरकार ने एक जाँच गठित की और जुलाई 1939 में मोटर वाहन अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के तहत सरकार ने मोटर परिवहन पर नियंत्रण के लिए खुद को अधिकृत कर लिया। क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरणों की स्थापना की गई और उन्हें रोड ऑपरेटर्स को परमिट जारी करने का अधिकार दे दिया गया।

यह ऐसा मामला था, जहाँ लघु उद्योग क्षेत्र ने बड़े उद्योग क्षेत्र को पीछे छोड़ दिया था। बड़े स्तर पर उत्पादन का अर्थशास्त्र जो कि पश्चिमी औद्योगिकवाद का आधार तत्त्व और निर्विवाद सिद्धांत है, हवा में उड़ गया। यह रेलवे की आर्थिक ताक़त नहीं, बल्कि राज्य की राजनीतिक ताक़त, जो आज भी भारत में सबसे बड़ा इकलौता उद्यम है, का ही कमाल है कि ज़्यादा कुशल और आर्थिक रूप से ज़्यादा सक्षम ऑपरेटरों को दबा दिया।

सरकार इतने से ही संतुष्ट नहीं थी। रेल-सड़क समन्वय की योजना तैयार की गई, इसके तहत मोटर परिवहन को वैधानिक निगमों के मातहत कर दिया गया। इसकी अंश पूँजी को सरकार, रेलवे और मोटर ऑपरेटरों ने बराबर-बराबर हासिल कर लिया। इसके पहले की यह योजना फलीभूत होती, द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया और परिस्थितियाँ बदल गई। रेलवे का फिर से वर्चस्व स्थापित हो गया और यह स्थान उसके पास आज भी है।

बहरहाल सत्ता में आने के बाद कांग्रेस सरकार ने उन्हीं पुरानी योजनाओं को अपनाया और कुछ मामूली संशोधन कर सड़क परिवहन के राष्ट्रीयकरण का कार्यक्रम जारी कर दिया। पहली पंचवर्षीय योजना में उन्हीं कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया।

योजना अवधि के अंत तक राज्यों व केंद्र सरकार ने सड़क परिवहन के राष्ट्रीयकरण पर 12.45 करोड़ रुपए ख़र्च किए। अधिकतर राज्यों में निजी मोटर ऑपरेटर मुख्य व बेहतर परिपथों से भगा दिए गए और वे अब कम व्यवस्थित परिपथों व कच्चे तथा पिचरहित सड़कों पर अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

सड़क परिवहन के राष्ट्रीयकरण को न तो आर्थिक रूप से और न ही सैद्धांतिक रूप से औचित्यपूर्ण ठहराया जा सकता है। जहाँ तक मोटर ऑपरेटरों का सवाल है तो 1951 में इनकी संख्या लगभग 47,575 थीं। "इनमे से 25 ऑपरेटर 100 से अधिक गाड़ियों के मालिक थे, अन्य 50 ऑपरेटर 50 से अधिक लेकिन 100 से कम वाहनों के, 1500 से अधिक ऑपरेटर पाँच से अधिक, लेकिन 50 से कम वाहनों के स्वामी थे। 46,000 से अधिक ऑपरेटर ऐसे थे, जिनके पास पाँच या उससे कम वाहन थे।"[3] इन ऑपरेटरों को किसी भी कल्पना से पूँजीवादी की संज्ञा नहीं दे सकते। इनमें से अधिकतर स्वरोज़गार के तहत कमाने वाले थे। इन्हें इनकी जीविका से वंचित करने का मतलब प्रतिशोध के साथ समाजवाद लागू करना है।

यह जानना बहुत दिलचस्प होगा कि राजनीतिक लाभ-हानि के गणित ने पंजाब सरकार को सड़क परिवहन का राष्ट्रीयकरण करने से रोक दिया। राष्ट्रीयकरण का घोर समर्थक भी इस बात को स्वीकार करेगा कि इस राज्य के निजी मोटर ऑपरेटरों ने अन्य राज्यों में राष्ट्रीयकृत परिवहन के मुक़ाबले हर लिहाज से—कार्यक्षमता, समय की पाबंदी, फेरी और सस्ता माल भाड़ा—बेहतर सेवाएँ दी हैं।

अधिकतर परिवहन सेवाएँ घाटे में चल रहीं थीं, घाटे को पूरा करने के लिए उनके लिए माल-भाड़ा बढ़ाना आवश्यक था। हाँ, वे जो भाड़ा वसूल कर रहे थे, उसमें निश्चित रूप से कर एक प्रच्छन्न की भूमिका निभा रहा था। कुछ राज्यों में परिवहन सेवाओं का संचालन विभाग कर रहा था, जबकि कुछ राज्यों में सड़क परिवहन निगम अधिनियम 1950 के तहत परिवहन निगम बनाए गए थे।

तालिका

1955-56 में प्रति संचित मील की परिचालन लागत[4]

	उ.प्र.	बंबई	हैदराबाद
1. कर्मचारी	55.26	56.99	53.61
2. ईंधन	43.05	23.03	20.80

3. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 402।

4. द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू डेल्ही, वॉल. 2, न. 4।

	पेट्रोल	डीजल	डीजल
3. कलपुर्ज़े और मरम्मत		20.76	
4. नवीकरण	28.90	16.91	27.07
5. टायर एवं ट्यूब	13.03	31.65	26.35
6. बैटरी	0.83	4.06	1.35
7. साधारण भार	16.98	23.73	20.35
8. मूल्य ह्रास	22.99	31.83	18.18
9. ब्याज भार	7.59	13.85	11.74
10. मुख्यालय व्यय	1.18	19.18	14.95
कुल परिचालन लागत	193.37	246.04	197.20
कुल आय	213.12	258.56	225.87
लाभ	19.75	12.52	28.67

यूपी, बंबई और हैदराबाद में परिवहन के संचालन के तरीक़े का एक अंदाज़ यहाँ लगाया जा सकता है, जिसे विशेष अध्ययन के बाद तैयार किया गया है।

यहाँ यह मिलेगा कि कुछ लाभ दिखाने के लिए बंबई ने उत्तर प्रदेश के मुक़ाबले ज़्यादा भाड़ा वसूल किया।

मंदी प्रभावित तीस के दशक में रेल-सड़क समन्वय को उचित ठहराने के जो भी तर्क मौजूद हों, लेकिन दो दशक पुरानी नीति को, जहाँ कि परिस्थितियाँ पूरी तरह बदल चुकी हैं, इस समय लागू करने का कोई कारण नहीं बनता। मोटर परिवहन अब रेलवे का प्रतिस्पर्धी नहीं रह गया है, बल्कि उसका सहायक बन गया है। अब जिस समय रेलवे पूरे यातायात को सँभाल नहीं सकता, तो सड़क परिवहन को आगे बढ़ना चाहिए। इस संदर्भ में आयोग लिखता है—'हाल के वर्षों में देश की सामान्य आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि और रेलवे की पूरी यातायात माँग की पूर्ति में असमर्थता, सड़क परिवहन के विस्तार के लिए बहुत सारी संभावनाएँ पैदा करती है। लेकिन अभी ऐसा हो नहीं सका है। हाल के वर्षों में सड़क परिवहन क्षेत्र में पर्याप्त विकास न होने के पीछे कई कारण हैं। इनमें से सड़क परिवहन का राष्ट्रीयकरण करने के प्रति डर, मोटर परिवहन पर ऊँची दर से लगाया गया कर, अंतरराज्यीय सेवाओं व सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कोड के तहत लंबी दूरी की ढुलाई पर रोक तथा कुछ राज्यों द्वारा क़ानूनी रूप से ज़रूरी तीन से पाँच साल के बजाय थोड़े समय के लिए परमिट दिए जाने को प्रमुख कारण बताए गए हैं।'[5]

5. सेकंड फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 479।

नौ-परिवहन

भारत के विदेशी व्यापार में ढुलाई, दूसरी पंक्ति की रक्षा तैयारी और नौसेना के लिए प्रशिक्षण क्षेत्र तैयार करने में व्यापारिक समुद्री यातायात के महत्त्व को महसूस किए जाने के बावजूद प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान इसके विकास के लिए न तो कोई खास योजना बनाई गई और न कुछ विशेष हासिल किया जा सका। योजना आयोग इससे संबंधित कोई ठोस योजना बनाने की सोचता, उससे पहले ही सरकार ने भारतीय जहाज़रानी उद्योग के विस्तार के लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम के क्रियान्वयन से संबंधित तरीक़ों पर सुझाव देने के लिए 1945 में पुनर्गठन नीति समिति का गठन कर दिया। इस समिति, जिसे आम तौर पर शिपिंग पॉलिसी कमेटी के नाम से जाना जाता है, ने 1947 में अपनी रिपोर्ट में अगले पाँच से सात वर्षों में 20 लाख टन की ढुलाई का लक्ष्य तय करने का सुझाव दिया, ताकि भारतीय जहाज़राजनी उद्योग शत प्रतिशत तटीय व्यापार पर काबिज़ हो जाए, पड़ोसी देशों के साथ व्यापार से जुड़ी माल ढुलाई में 75 फीसद इसका योगदान हो जाए, पूर्व में एक्सीस वेसेल्स के ढुलाई व्यापार का 30 फीसदी हिस्सा इसके पास आ जाए।

पहली पंचवर्षीय योजना इससे ज़्यादा कुछ लक्ष्य तय नहीं कर सकती थी, बल्कि 1955–56 में इसका लक्ष्य 20 लाख जीआरटी, यानी ग्रोस रजिस्टर्ड टनेज से घटाकर 6 लाख जीआरटी कर दिया गया।

भारतीय जहाज़ों की क्षमता 1946 में एक लाख जीआरटी थी, जो 1950–51 में बढ़कर 3,90,707 जीआरटी हो गई। अगर भारी उथल-पुथल वाले पूर्व योजना अवधि के पाँच वर्ष में 2,90,707 टन क्षमता बढ़ गई, तो फिर अगले पाँच वर्ष में सिर्फ़ दो लाख टन की क्षमता बढ़ाने का योजना लक्ष्य तो एक तरह से आयोग का नकारात्मक योगदान ही रहा।

बहरहाल योजना में कई प्रकार के वित्तीय व अन्य छूट जैसे करों में छूट मूल्य ह्रास की मंजूरी और सरकार से ऋण का सहयोग। इस पाँच वर्ष की अवधि में कुल 26.30 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया, जिसमें से 18.71 करोड़ रुपए जारी कर दिए गए। इनमें से अधिकांश जहाज़रानी कंपनियों को ऋण के रूप में गया। पूर्व और पश्चिम से व्यापार को संचालित करनेवाली दो कंपनियों के अलावा एक ओर ईस्टन शिपिंग कॉरपोरेशन लि., जो कि शुरू में सरकार प्रायोजित कंपनी थी, को 10 करोड़ रुपए की अधिकृत पूँजी के साथ आयोग के साथ निबंधित किया गया। बाद में सिंधिया से इस कंपनी का प्रबंधन सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। दूसरी वेस्टर्न शिपिंग कंपनी, जो पूरी तरह सरकारी थी और भारत पर्सिया खाड़ी, भारत लाल सागर और भारत पौलेंड सेवा को संचालित करती थी। अप्रैल 1956 से भारत और यू.एस.एस.आर. के बराबर सहयोग से जहाज़रानी सेवाएँ शुरू हो गई थीं।

इन सबके बावजूद 6 लाख जी.आर.टी. का मामूली सा लक्ष्य भी योजना अवधि में पूरा नहीं किया जा सका। योजना के अंत में भारतीय कंपनियों द्वारा केवल 4,80,000 जी.आर.टी. को ही प्राप्त किया जा सका, जिनमें से आधा तटीय क्षेत्रों में जो कि 1950 से ही भारतीय जहाज़रानी कंपनियों के लिए आरक्षित था।

तटीय क्षेत्रों से माल ढुलाई का 3,15,000 जी.आर.टी. का लक्ष्य लगभग हासिल कर लिया गया। योजना अवधि के अंत में भारतीय जहाज़रानी कंपनियों द्वारा 3,12,202 जी.आर.टी. की ढुलाई की गई। वर्ष 1955-56 में इस कुल माल ढुलाई से 10.8 करोड़ रुपए की आय का अनुमान लगाया गया।

उपलब्ध विशेष परिस्थितियों में जहाज़रानी उद्योग के लिए वित्तीय सहायता एवं आरक्षण की ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह भी सत्य है कि इन कंपनियों को अपनी एकाधिकार शक्ति का बेजा उपयोग करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। इस संबंध में आयोग ने चेतावनी देते हुए लिखा, 'चूँकि केंद्र सरकार जहाज़रानी कंपनी को उनकी ढुलाई क्षमता में विस्तार के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती रहेगी, इसलिए उन पर लगातार ताकीद रखी जाए कि तटीय क्षेत्रों में माल ढुलाई और यात्री किराया तर्कसंगत रहे, कंपनियाँ कलपुर्जों की मरम्मत एवं उन्हें बदलने के लिए अलग से वित्तीय प्रावधान करके चलें और प्रबंधन प्रगतिवादी एवं कुशल रहे।'

सरकार इस पर नज़र रखने में असफल रही, खासकर पश्चिमी तटीय क्षेत्र में जहाँ भाड़े में मनमाने ढंग से वृद्धि की गई। भाड़े में मनमानी वृद्धि को उचित ठहराने के लिए कुछ कंपनियों ने अपने खातों में हेरफेर कर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि भाड़े में वृद्धि के बावजूद उनको शुद्ध घाटा ही हुआ। उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित किया जा सकता था, यदि उनके प्रतिनिधियों को प्रबंधन बोर्ड में सम्मिलित किया जाता।

जहाज़रानी मामले में एक दूसरा पहलू यह भी है कि सरकार ने छोटे ऑपरेटरों की आवश्यकताओं को पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया। तटीय क्षेत्रों के व्यापार में देशी नौकायानों का योगदान कम उल्लेखनीय नहीं है। यह आकलन है कि युद्ध के समय इन देशी नौकायानों ने पश्चिमी तट से हर सत्र में लगभग 10 लाख टन माल की ढुलाई की। योजना आयोग ने इनके हौसले की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'देशी नौकायानों ने तटीय व्यापार में एक सीमा तक बड़े जहाज़ों के साथ प्रतिस्पर्धा की है।'[6] आयोग ने आशका जाहिर करते हुए यह भी कहा कि भविष्य में यह प्रतिस्पर्धा और गंभीर होगी और साथ ही यह भी सुझाव दिया कि विभिन्न एजेंसियों के बीच समन्वय स्थापित किया जाए। आयोग शायद रेल-सड़क समन्वय की तरह भूमि-जल परिवहन समन्वय के इतिहास को दोहराने की सोच रहा था।

6. द फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 471

जलयान कमेटी ने 1949 में इन जलयानों के हालात के बारे में जानकारी दी। उसने यह आकलन लगाया कि 2600 जलयानों ने हर साल 10 लाख टन से लेकर 15 लाख टन तक मालों की ढुलाई की। इन जलयानों का पूँजी परिव्यय लगभग 4 करोड़ रुपए का था। इन्होंने लगभग 40 लाख लोगों को रोज़गार दिया, जिनमें से 35 हज़ार सी-मेन के रूप में और 5 हज़ार मास्टर्स और उनके सहयोगी के रूप में। ऐसी अपेक्षा थी कि इस उद्योग के महत्त्व को पहचाना जाए और इसका एक मज़बूत आधार तय किया जाए। लेकिन आयोग ने इस उद्देश्य के लिए किसी भी योजना पर काम नहीं किया।

निर्यात संवर्धन समिति ने 1957 में भारतीय जहाज़रानी कंपनियों की अपर्याप्त क्षमता पर चिंता जाहिर करते हुए द्वितीय योजना में प्रस्तावित यार्ड के अतिरिक्त एक तीसरा शिप बिल्डिंग यार्ड खोलने का सुझाव दिया। 1,50,000 डेडवेट टनेज (डी.डब्ल्यू.टी.) की अतिरिक्त क्षमता के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना विशाखापत्तनम शिप यार्ड पर निर्भर रही। लेकिन योजना अवधि में जहाज़ों ने कुल 70 हज़ार डी.डब्ल्यू.टी. को ही हासिल किया। जहाज़ों का निर्माण दीर्घावधि की उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया जाता है। कम समय के लिए तो ज़्यादा उपयुक्त यह होता कि अधिक क्षमता विस्तार के लिए हम कुछ नए या थोड़े चले जहाज़ ख़रीद लेते। आज हमारे झंडा तले सिर्फ़ देश के 6 प्रतिशत विदेशी व्यापार के लिए माल की ढुलाई होती है। एक आकलन है कि लगभग 205 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा हम एक साल में माल भाड़े के खाते में बहा रहे हैं। यदि हम नए जहाज़ ख़रीदते तो उसकी लागत पूँजी 4 साल में और पुराने जहाज़ में उससे भी कम समय में लागत पूँजी निकाल सकते थे। संक्षेप में कहें तो प्रथम पंचवर्षीय योजना ने इस महत्त्वपूर्ण मामले पर कुछ खास नहीं किया।

बंदरगाह और समुद्री तट

बंदरगाहों और समुद्री तटों का विकास बढ़ते विदेशी व्यापार के मद्देनज़र पहले की शुरू कर दिया जाना चाहिए था। इस संबंध में पहली पंचवर्षीय योजना को इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए योजना अवधि के दौरान इसका खाका तैयार कर लेना चाहिए था। बंदरगाह एवं समुद्री तटों से संबंधित जब मसौदा तैयार किया जा रहा था तो आयोग इससे बिल्कुल अनभिज्ञ था। बहरहाल अंत में योजना के लिए 33 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया, जिसे बाद में बढ़ाकर 36.91 करोड़ रुपए कर दिया गया; लेकिन आकलन के अनुसार वास्तविक परिव्यय 27.57 करोड़ रुपए का रखा गया और बंदरगाह विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में देरी को योजना आयोग ने कारण बताया। पिछले 100 सालों में प्रमुख बंदरगाहों पर ही सारी गतिविधियाँ केंद्रित रहीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने भी इस पारंपरिक नीति को बदलने का कोई प्रयास नहीं किया। जहाँ

बड़े बंदरगाहों के विकास पर 25 करोड़ रुपए ख़र्च किए गए वहीं 226, जिनमें 150 चालू बंदरगाह भी शामिल हैं, बंदरगाहों पर 2 करोड़ रुपए से भी कम ख़र्च किए गए।

पहले से ही और अब ही बेहद ज़रूरी है कि बड़े बंदरगाहों पर से दबाव कम किया जाए क्योंकि बड़े बंदरगाहों पर भारी यातायात है, जहाज़ फँसे रहते हैं और ढुलाई वाले सामान पड़े रहते हैं। जहाज़ों से सामान लादने-उतारने की वहाँ अपर्याप्त सुविधा है, बंदरगाहों तक रेल लाइनें एवं सड़क परिवहन भी सीमित है, सामानों को रखने की वेयर-हाउसिंग सुविधाएँ भी अपर्याप्त हैं। यदि समुद्री यातायात को कुछ हद तक इन छोटे बंदरगाहों की तरफ़ मोड़ दिया जाता तो द्वितीय योजना के दूसरे वर्ष में जो समस्याएँ हम झेल रहे हैं, उन्हें काफ़ी हद तक कम किया जा सकता था।

नागरिक उड्डयन

उपलब्ध वित्तीय स्रोत से इतर पहली पंचवर्षीय योजना को ठीक ढंग से लागू करने के लिए एक पूर्ण विकसित नागरिक उड्डयन सेवा की बहुत अधिक आवश्यकता थी। इसलिए आयोग ने इस मद के लिए 9.5 करोड़ रुपए का प्रावधान किया, लेकिन वास्तव में इससे कहीं अधिक 15.4 करोड़ रुपए ख़र्च हुए। पहली पंचवर्षीय योजना ने आंतरिक एवं विदेशी उड़ानों के प्रबंधन के लिए एक ही इकाई का प्रस्ताव दिया। आगे सरकार ने 1953 में उस समय की वायुयान कंपनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। लेकिन वायु सेवा संचालन के लिए एक स्वशासित निगम बनाने के बजाय दो निगम बना दिए, एक घरेलू सेवाओं के लिए तो दूसरा विदेशी वायु सेवाओं के लिए। इन दोनों में से एक एयर इंडिया इंटरनेशनल ने कुछ लाभ कमाकर दिखाया, वहीं दूसरी इंडियन एयरलाईंस कॉरपोरेशन घाटे में चली गईं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग ने इसके लिए मौजूदा वायु सेवा कंपनियों की जर्जर माली हालात को ज़िम्मेदार बताया। तब से आज तक इनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। आयोग ने यह आकलन किया कि इन दोनों कंपनियों को अच्छी आर्थिक स्थिति में लाने के लिए 7 करोड़ रुपए की आवश्यकता है। ऑपरेटरों ने सरकार से केवल यह रियायत माँगी थी कि उन्हें घटी हुई दरों पर क़र्ज़ मुहैया कराया जाए। आयोग और सरकार ने उनकी इन शर्तों को अपने अनुकूल नहीं माना और वायु परिवहन का राष्ट्रीकरण कर दिया। यदि आर्थिक कारणों से ही सरकार को यह निर्णय लेना पड़ा तो फिर 5 साल का इतिहास यह बताता है कि सरकार ठीक आकलन में कहीं-न-कहीं चूक कर गई और उसका फ़ैसला ग़लत साबित हुआ। बहरहाल आर्थिक कारणों के अलावा और भी कारण हो सकते थे और वे न्यायोचित भी थे, जिसके कारण वायु परिवहन सरकार एवं सरकारी प्रबंधन के अधीन कर दिए गया।

यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि सरकारी अधिकारियों के लापरवाह रवैये के

कारण ही वायुयान कंपनियाँ घाटे में गईं। केंद्र सरकार की युद्ध के बाद की नीतियों में स्पष्ट कहा गया—

1. वायु सेवाओं का विकास एवं संचालन व्यावसायिक संगठनों पर छोड़ दिया जाएगा।
2. वाणिज्यिक वायु सेवाओं के संचालन के लिए एक लाइसेंस अनिवार्य होगा और इसके लिए एक इकाई, जिसे ट्रांसपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड कहा जाएगा, का गठन किया जाएगा।
3. भारत में सभी प्रमुख वायु सेवाओं का संचालन लगभग 4 कंपनियाँ करेंगी।
4. कुछ खास क्षेत्रों में सरकार वायु सेवा कंपनियों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराएगी।

इन घोषित नीतियों के उलट एयरपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड ने 4 कंपनियों के बजाय 9 कंपनियों को लाइसेंस जारी कर दिया। यदि ऐसा नहीं होता तो वित्तीय संकट खड़ा नहीं होता। वायु सेवा कंपनियों की आर्थिक हालत की जाँच के लिए गठित यह ट्रांसपोर्ट इन्क्वायरी कमेटी ने भी माना कि बड़ी संख्या में लाइसेंस दिया जाना ही ख़राब आर्थिक स्थिति के लिए मुख्य ज़िम्मेदार है। बहरहाल राष्ट्रीयकरण के बाद भी इनके हालात नहीं सुधरे। दूसरी तरफ़ किराया बढ़ा दिया गया, आगे और बढ़ाने की गुंजाइश छोड़ दी गई।

पहली पंचवर्षीय योजना के अंत में समग्र रूप से परिवहन व्यवस्था की स्थिति को देखें तो यह संतोषजनक नहीं थी। वास्तव में हम एक संकट की ओर बढ़ रहे थे। जहाँ रेलवे क्षमता से अधिक काम कर रहा था, वायुयान महँगे और सीमित थे, जल परिवहन उपेक्षित और सिमटा जा रहा था, सड़क परिवहन दम तोड़ रहा था। हमने एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम को शुरू तो किया, लेकिन परिवहन उद्योग की आवश्यकताएँ इससे कहीं ज़्यादा थीं।

11

कार्मिक प्रबंधन एवं मूल्यांकन

कार्मिक प्रबंधन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास के साथ-साथ स्वास्थ्य एवं शिक्षा और सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों को भी शामिल किया गया। हमें उसके विस्तार में जाने की ज़रूरत नहीं है। इन क्षेत्रों में देश की ज़रूरत की एक वृहद् तसवीर प्रस्तुत करने की न तो कोई विशेष योजना बनाई गई और न ही कोई अतिरिक्त प्रयास किया गया। पाँच वर्ष की अवधि में अगर बहुत हुआ तो कुछ और विद्यालयों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और अस्पतालों का निर्माण किया गया।

शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन किसी भी योजना की प्रमुख चिंता होनी चाहिए थी, लेकिन आयोग ने अपने दायित्वों को पूरा करने में अधिकतम श्रम, आर्थिक समस्याओं के अनुसंधान और देश में उपलब्ध संसाधनों के संतुलित उपयोग के ज़रिए उन्हें दूर करने के उपाय खोजने में लगाया। सच कहूँ तो केवल राजनीतिक कारणों से योजना में वे कार्यक्रम शामिल किए गए, जिनका राष्ट्र के आर्थिक जीवन से सिवाय इसके कि सभी मानव जीवन के लिए थे और मानव को अलग-अलग हिस्सों में करके नहीं देखा जा सकता, अन्य कोई सीधा संबंध नहीं था। जैसा कि हमने पहले ही कह दिया है कि योजना में उन कार्यक्रमों को शामिल किया गया, जो सत्ताधारी पार्टी के चुनावी घोषणा-पत्र के वायदों के अनुरूप थे और जिन्हें जनता पसंद करती थी।

जब हम यह टिप्पणी करते हैं तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था के पुनर्गठन की आवश्यकता को महसूस नहीं करते। लेकिन यह काम नहीं हुआ, यह भी उतना ही सही है। लेकिन इसके लिए हम केवल योजना आयोग को दोषी नहीं ठहरा सकते। इस प्रश्न से जुड़े सभी संदर्भों पर विचार के लिए एक अलग एजेंसी का गठन किया जाना चाहिए और विषयों से जुड़ी व्यवस्था का निर्माण करते समय

आर्थिक व राजनीतिक उद्देश्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

वास्तव में योजना आयोग को चाहिए था कि वह तकनीकी लोगों के प्रशिक्षण की योजना बनाए। इस संदर्भ में पहली योजना में कुछ ख़ास नहीं हुआ। बाद में द्वितीय योजना के मद्देनज़र एक इंजीनियरिंग कार्मिक कमेटी का गठन किया गया। कुल परिणाम में यह भी देखा गया कि तकनीकी और इंजीनियरिंग संस्थानों की संख्या में वृद्धि हुई, लेकिन यह औद्योगिक क्षेत्र में हो रहे विकास के सहज प्रभाव का प्रकटीकरण था। एक तेज़ी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था के लिए तकनीकी कर्मियों की आवश्यकता तो है ही, लेकिन राज्य के बढ़ते क्रियाकलापों के लिए प्रशासनिक कर्मियों, जो निष्ठावान कुशल और अर्थव्यवस्था की समझ रखते हों, की भी आवश्यकता है। जो सार्वजनिक क्षेत्र में हो रहे विस्तार के कारण मिलनेवाली ज़िम्मेदारियों के निर्वहन में सक्षम भी हों। जनसहयोग की आवश्यकता को भी कम करके नहीं देखा जा सकता। आयोग ने इस मामले को तीन बड़े समूहों में बाँट दिया है : 1. कार्मिक, 2. राज्य से लेकर गाँवों तक के सभी विकास कार्यक्रमों का जुड़ाव और 3. जन सहयोग संबंधी समस्याएँ। हम इन संदर्भों में योजना आयोग के खुद का आकलन प्रस्तुत कर रहे हैं।

निष्ठा के संदर्भ मे आयोग कहता है कि सरकार ने सतर्कता बरतने और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए बहुत सारे उपाय किए हैं और इस नतीज़े पर पहुँचा है कि 'कोई भी बना बनाया तरीक़ा ऐसा नहीं है, जिससे यह तय किया जा सके, प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के बाद भ्रष्टाचार कितना और कहाँ बढ़ा या कम हुआ है। जहाँ भी आशंका हुई है या कोई सबूत मिला है या निष्ठा में कमी दिखाई दी है, वहाँ या तो विभाग की ओर से कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई की गई है या न्यायालय की ओर से। बहरहाल यह स्पष्ट है कि प्रशासन में उच्च मानक बनाने और इसे चुस्त-दुरुस्त चलाने के लिए इस पर नज़दीकी नियंत्रण, सतर्कता और निगरानी ज़रूरी है।[1]

जाहिर है जहाँ भी भ्रष्टाचार के मामले थे, वहाँ अधिक सतर्कता की ज़रूरत थी। अर्थव्यव्यवस्था के संदर्भ में आयोग कहता है—मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि योजना में शामिल विकास के सभी क्षेत्रों में वित्तीय लागत पर सावधानी से काम करने की बहुत संभावनाएँ हैं और किए गए ख़र्च की तुलना में प्राप्त परिणाम का गंभीर आकलन करने की भी ज़रूरत है। विकास के बड़े ख़र्चों के संबंध में भी आर्थिक व मितव्ययिता के सिद्धांत के साथ ज़्यादा सतर्क रहने की आवश्यकता है।

जहाँ तक बात कार्यकुशलता की है, पहली पंचवर्षीय योजना का काल प्रयोग का काल था और सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंधन के लिए कौन सी पद्धति और कौन का प्रारूप ज़्यादा उपयुक्त है, इसे आयोग द्वारा तय नहीं किया जा सका। आयोग ने यह

1. रिव्यु ऑफ द फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 306।

महसूस किया कि राज्य स्तर पर विभिन्न विभागों के बीच समन्वय की कमी रही और ज़िला स्तर पर तो इसमें भारी कमी रही। उसने यह भी महसूस किया कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में ज़िला योजना के तहत बनाए गए विकास कार्यक्रमों को लागू करने में स्थानीय निकायों को भूमिका देने के मामले में कोई ख़ास प्रगति नहीं हुई। आयोग ने क्षेत्रीय कार्यालयों को समाप्त करने के विरुद्ध अपनी राय भी दी, क्योंकि ज़िला प्रशासन की बढ़ती ज़िम्मेदारी को देखते हुए देख-रेख की आवश्यकता बहुत बढ़ गई थी।

मूल्यांकन

हमने प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति की गहरी समीक्षा किन कारणों से की, यह बता दिया है। जहाँ तक इसके अल्पकालिक उद्देश्यों की बात है तो समीक्षा यह दरशाती है कि सफलता या विफलता का पैमाना सभी जगह एक जैसा नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चाहे वह निजी क्षेत्र हो, सार्वजनिक क्षेत्र, परंपरागत उत्पादन या सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में ख़र्च करने और उसका विस्तार करने में ज़्यादा सफल रहा है। नए उपक्रमों में सफलता एकदम सपाट रही है। इसमें देरी से शुरुआत के साथ-साथ सुस्त चाल भी रही। भौतिक और वित्तीय बजटों का पुनर्निर्धारण किया जाना ज़रूरी था। निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों में भारी घाटा हुआ। नेपा मिल्स, विशाखापत्तनम शिपयार्ड और दि ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन का अधिग्रहण सरकार को करना पड़ा, क्योंकि निजी क्षेत्र उनका सही और संतोषजनक प्रबंधन करने में विफल रहा। सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबंधन या उनका मालिकाना हस्तांतरण करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, क्योंकि सरकार लगातार हो रहे घाटे का बोझ करदाताओं के पैसे से उठा सकती है, इसलिए वह स्थिति ही नहीं आई, जहाँ वित्त के अभाव में कंपनी को बेचने या उसके हस्तांतरण के लिए मज़बूर होना पड़े। लेकिन यहाँ भी कई उल्लेखनीय विफलताएँ हैं। यदि सिंदरी और चितरंजन मज़बूत, स्थापित और उत्पादक इकाइयों के रूप में हमें गर्व प्रदान कर रही हैं तो हिंदुस्तान मशीन टूल्स, हिंदुस्तान शिपयार्ड, हिंदुस्तान एयरक्राफ्टस और भारत इलेक्ट्रॉनिक्स शर्म से गरदन झुकाए खड़ी हैं।

इनका, ख़ासकर अंतिम दो कंपनियों का संतोषजनक काम नहीं करना चिंता का सबब है, क्योंकि ये मुख्य रूप से रक्षा से जुड़ी हैं। हिंदू के औद्योगिक पत्रकार ने इनके बारे में लिखा है : 'कुछ ख़ास रक्षा उद्योग विभिन्न प्रकार की कमियों की पीड़ा से गुज़र रहे हैं और इसमें कोई शक नहीं कि उत्पादन की लागत उनके लिए महत्त्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण सच्चाई यह है कि वे उत्पादन के लिए सरकारी नीतियों की कृपा पर हैं—नीतियाँ जिसे अकसर नज़रंदाज़ कर दिया जाता है, क्योंकि वे ग़लत बनी हैं। कोई ऐसा नहीं है, जो भारी पूँजी से बनी हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट्स भारत इलेक्ट्रॉनिक्स जैसी

कंपनियों के मन में झाँकने का अवसर पाए और इस नतीजे पर न पहुँचे कि वे पूरी तरह निराश हैं। योजना अवधि में सार्वजनिक उपक्रमों का काम-काज सरकार को यह सीख देने में सक्षम है कि सरकारी उपक्रमों का अर्थ सरकार का सिर्फ़ मालिकाना नहीं है। मालिकाना आसानी से प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन उद्यमशीलता और प्रबंध कुशलता आसानी से स्थापित नहीं की जा सकती।'[2]

सार्वजनिक और निजी दोनों स्तरों पर कुछ नई परियोजनाओं के लिए निवेश कम पड़ गया। सरकार स्टील संयंत्र और हेवी इलेक्ट्रिकल संयंत्र स्थापित नहीं कर पाई। निजी क्षेत्र में भी एफएसीटी से जुड़ी कई योजनाओं, फर्टिलाइज़र एंड केमिकल्स (ट्रावनकोर) लिमिटेड, अल्युमिनियम, जिप्सम-सल्फर और केमिकल्स पल्प में अनावश्यक देरी हुई।

लघु उद्योग क्षेत्र ने कोई बड़ा वायदा नहीं किया था। आयोग ने भी इस क्षेत्र को मामूली महत्त्व ही दिया, लेकिन इसे जो सफलता मिली, वाकई उत्साह बढ़ाने वाली थी। इसने नए क्षेत्रों में प्रवेश किया और नई तकनीक भी विकसित की। लघु क्षेत्र ने अपने आपको स्थापित कर लिया और जब तक सरकार अपनी राजनीतिक मशीनरी और वित्तीय संसाधन बड़े उपक्रमों को मनचाहे प्रयोग के लिए उपलब्ध न करा दे, तब तक इसे विस्थापित नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ़ यदि सरकार इनके सहयोग के लिए आगे आती है और विकासवादी प्रक्रिया तेज़ होती है तो इस क्षेत्र में आर्थिक ठहराव और पश्चिमी औद्योगिकीकरण से पैदा हुई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने की बेहतर क्षमता है।

पहली पंचवर्षीय योजना में विचार तो संस्थागत परिवर्तन का था, लेकिन इस संबंध में कोई योजना सामने नहीं आई। वास्तव में कोई भी ढांचागत बदलाव नहीं हुआ। योजना द्वारा विकास की किसी प्रक्रिया की शुरुआत नहीं की गई, लेकिन लोगों ने प्रक्रिया की शुरुआत ज़रूर कर दी जैसा कि हमने ऊपर बताया है। यदि आयोग लोगों को साथ लेकर आगे बढ़ता तो निश्चित रूप से एक ज़्यादा महत्त्वाकांक्षी विकास के कार्यक्रम का आधार तैयार होता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस पर क्या हुआ, आगे के अध्यायों में देखेंगे।

---

2. द हिंदू : सर्वे ऑफ़ इंडियन इंडस्ट्री, 5 जनवरी, 1957।

भाग-चार

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

12

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण

योजना ढाँचा

द्वितीय पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1956 को लागू हुई, जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 2 मई, 1956 को स्वीकृत किया और 15 मई, 1956 को संसद् को सुपुर्द कर दिया। इसके पहले भारतीय सांख्यिकी संस्थान के प्रोफेसर पी.सी. महालनोबिस ने मार्च 1955 में पंचवर्षीय योजना के प्रारूप का प्रस्ताव एवं सुझाव (सामान्य तौर पर इसे योजना ढाँचा कहा जाता है।) का प्रकाशन किया था। वित्त मंत्रालय के आर्थिक विभाग एवं योजना आयोग ने भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना का एक ढाँचा तैयार किया था। इन्हीं दोनों, खासकर वित्त मंत्रालय एवं योजना आयोग के प्रारूप को ही मामूली फेरबंदल कर द्वितीय योजना का रूप दे दिया गया। जहाँ तक बात निवेश, रणनीति, योजना की तकनीक और संसाधनों के जुटाने जैसे मूल उद्‌देश्यों की है, तो योजना ढाँचे में योजना लक्ष्य को 3,400 करोड़ से बढ़ाकर 4,800 करोड़ रुपए कर देने के अलावा कोई बदलाव नहीं किया गया।

द्वितीय योजना के मुख्य निर्माता के नाते प्रो. महालनोबिस और कुछ लोगों ने यह महसूस किया कि सरकार धीरे-धीरे अधिनायकवादी योजना की तरफ़ बढ़ रही है। कहा जाता है कि प्रोफेसरों के सहयोग से प्रो. महालनोबिस ने जो योजना का प्रारूप तैयार किया था, वह पूरी तरह सोवियत रूस और उससे जुड़े देशों पर आधारित था। यही कारण है कि श्री जयप्रकाश नारायण ने यह टिप्पणी की थी, 'पंडित नेहरू की द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनानेवाले सभी सात विद्वान् परदे के पीछे से काम कर रहे थे।'[1]

मई 1955 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इसके बुनियादी दृष्टिकोण पर सहमति जताते हुए मौटे तौर पर योजना के प्रारूप को स्वीकार कर लिया और योजना ढाँचे से संबंधित इन सुझावों पर सहमति भी प्रदान कर दी —

1. डेंजर्स ऑफ फिजिकल प्लानिंग, पृष्ठ 7, डेमोक्रेटिक रिसर्च सर्विस-बॉम्बे

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य (1955-56 के स्तर से) राष्ट्रीय आय में कम-से-कम 25 प्रतिशत वृद्धि का होना चाहिए।
2. योजना एक करोड़ से एक करोड़ बीस लाख लोगों को रोज़गार प्रदान करनेवाली होनी चाहिए।
3. समाज में समाजवादी विचार की अवधारणा को व्यापक बल मिलना चाहिए।

पहला और दूसरा उद्देश्य जहाँ गुणात्मक अवधारणाएँ और वित्तीय एवं भौतिक लक्ष्य को निश्चित करता है, वहीं तीसरा उद्देश्य सैद्धांतिक आधार तैयार करता है, जोकि मुख्य तौर पर सार्वजनिक क्षेत्र पर ज़्यादा असर डालता है। जाने या अनजाने में योजना पर सोवियत संघ, जैसे इकलौते देश, जिसने व्यवहार में सामाजवाद का मॉडल प्रस्तुत किया है, की छाप पड़ने के कारण भारी उद्योगों पर भी इसका असर हो सकता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर विचार-विमर्श करते समय हम प्रो. महालनोबिस के योजना प्रारूप और अन्य संबद्ध दस्तावेज़ों, जो प्रासंगिक हैं, का संदर्भ लेंगे। द्वितीय योजना के लिए इन्हें अलग से पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती, यदि इनकी रूपरेखा में व्यापक बदलाव न हुआ होता।

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्रियों के एक दल ने भी योजना प्रारूप में इन्हीं मुद्दों को प्रमुख माना। एकाध को छोड़कर सबने योजना के आकार, ढाँचा और विषय, प्रारूप की नीति एवं संस्थागत प्रभाव पर लगभग सहमति जताई। लेकिन उन्होंने लगभग सभी मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव एवं सुझाव भी दिए। लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अंतिम रिपोर्ट देखने के बाद ऐसा लगता है कि प्रमुख मुद्दों पर विद्वान् अर्थशास्त्रियों, जो योजना के प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, की मुहर लगवाने के अलावा उनके सुझावों एवं सलाहों पर योजना आयोग ने कोई विचार नहीं किया। योजना आयोग शायद असहमति के शब्द लिखने वाले एक अर्थशास्त्री को कोई तवज्जो देने के मूड में नहीं था, जब उसके 20 साथी आयोग के सामने नतमस्तक थे।

उद्देश्य एवं तकनीक

कहा जा सकता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य समाज में समाजवादी प्रतिमान की स्थापना था। (इस मुहावरे को बाद में छोटा कर समाजवादी समाज का नाम दे दिया गया और हम इसके इसी नाम का प्रयोग करेंगे।) ऐसे समाज में उत्पादन, वितरण, उपभोग एवं निवेश समेत वे सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक विषयों से जुड़े सभी प्रमुख निर्णय अनिवार्य रूप से उन एजेंसियों द्वारा लिये जाते हैं, जो सामाजिक उद्देश्य से बनाई जाती हैं। इसके लिए उचित माहौल बनाने के लिए राज्य को समाज की तरफ़ से बात रखने एवं कार्य करने के लिए एक मुख्य एजेंसी के रूप में भारी ज़िम्मेदारी

लेनी पड़ती है। सार्वजनिक क्षेत्र में तेज़ी से विस्तार होना चाहिए। इसे उन विकास कार्यों को, जिन्हें निजी क्षेत्र करने में या तो अरुचि रखते हैं या अक्षम होते हैं, न सिर्फ़ शुरू करना चाहिए बल्कि अर्थव्यवस्था में निवेश के संपूर्ण प्रारूप को एक आकार देने के लिए मुख्य एवं निर्णायक भूमिका भी निभानी चाहिए। समुदाय द्वारा स्वीकृत वृहद योजना के दायरे में निजी क्षेत्र को भी अपनी भूमिका अवश्य निभानी चाहिए। सार्वजनिक मालिकाना, चाहे आंशिक हो या पूर्ण, और सार्वजनिक नियंत्रण या प्रबंधन में भागीदारी, उन क्षेत्रों में विशेष रूप से वांछनीय है, जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं केंद्रीकृत नियंत्रण के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग हो और आर्थिक शक्ति एवं संपदा केंद्रीकरण की ओर अग्रसर हो।

उद्देश्य : द्वितीय पंचवर्षीय योजना इस वृहद् दृष्टिकोण के दायरे में तैयार हुई और इसके निम्न प्रमुख उद्देश्य रखे गए—

1. देश के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठे, इसके लिए राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की बड़ी वृद्धि हो।
2. मूलभूत एवं भारी उद्योगों को प्रमुखता प्रदान करते हुए तेज़ी से औद्योगीकरण हो।
3. रोज़गार के अवसर में भारी बढ़ोतरी हो।
4. आय एवं संपत्ति के वितरण में असमानता कम हो और आर्थिक संपन्नता के लिए बराबरी में वितरण हो।

निम्न या जड़ जीवन स्तर, अर्ध बेरोज़गारी और बेरोज़गारी, औसत आय एवं उच्च आय के बीच भारी खाई विकासशील अर्थव्यवस्था के मानक हैं और ये कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के चरित्र को दरशाते हैं। इसलिए विकास का मूल मंत्र तेज़ी से औद्योगीकरण और विकेंद्रीकरण है। लेकिन यदि औद्योगीकरण तेज़ी से होना है तो इसके लिए हमें कुछ ऐसे मूल उद्योगों का विकास करना होगा, जो आगे विकास के लिए मशीनों का निर्माण कर सकें। यह लोहा एवं इस्पात ग़ैर-लौह धातु, कोयला, सीमेंट, भारी रसायन एवं अन्य महत्त्व के उद्योगों में भारी विस्तार की माँग करता है और इसके लिए भारी निवेश की आवश्यकता है।

मूलभूत उद्योगों में निवेश से उपभोक्ता वस्तुओं की माँग उठती है, जिसे मौजूदा उपभोक्ता वस्तु उद्योग की अनुपयुक्त उत्पादन क्षमता का उपयोग कर और श्रम आधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा पूरी की जा सकती है।

इस छोर को सुनिश्चित करने के लिए सरकार की औद्योगिक नीति में भारी फेरबदल की आवश्यकता है। 1948 की औद्योगिक नीति को 30 अप्रैल, 1956 को संसद् में प्रस्ताव पारित कर बदल दिया गया। इस तरह से उद्योगों को तीन वर्गों में

विभाजित कर दिया गया और राज्य इन तीनों क्षेत्रों में प्रमुख भूमिका निभाएगा। पहले वर्ग में वे उद्योग जिन पर राज्यों का एकाधिकार है, दूसरे में सहअस्तित्व की अनुमति हो और तीसरे में वे सभी ग़ैर-अनुसूचित उद्योग आएँगे, जो निजी क्षेत्रों की पहल पर छोड़ दिए गए हैं। लेकिन निजी उद्यमों के लिए कोई भी क्षेत्र रक्षित नहीं है। यदि राज्य सोचता है या उसे आवश्यकता महसूस होती है तो वह उस क्षेत्र में घुस जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र को आगे बढ़ना है और बहुत तेज़ी से बढ़ना है और निजी क्षेत्र को भी योजना की आवश्यकताओं के अनुसार काम करना है। इसलिए सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के बीच परस्पर सहयोग और परस्परानुबंधन की आवश्यकता है।

असमानताओं में कमी : आय एवं संपदा के मामले में असमानता को संस्थागत बदलाव एवं वित्तीय उपायों के जरिए कम किया जा सकता है। योजना में प्रस्तावित निवेश के तरीक़े, राज्यों द्वारा दी गई कार्य सूची में आर्थिक गतिविधियों की दिशा, योजना के लिए आवश्यक संपदा को जुटाने के लिए प्रयोग किए गए वित्तीय उपकरणों का प्रभाव, सामाजिक सेवाओं का विस्तार और भूमि के मालिकाना हक एवं प्रबंधन के लिए किए गए संस्थानिक बदलाव, संयुक्त पूँजी शेयर वाली कंपनियों एवं प्रबंधन एजेंसियों के क्रियाकलाप, राज्यों द्वारा पोषित सहकारी क्षेत्र का विकास आदि यह सुनिश्चित करेंगे कि किस तरह नई आय अर्जित होती है और कैसे इनका वितरण होता है। आयकर में बढ़ोतरी की कोई खास गुंजाइश नहीं है, लेकिन व्यय कर, संपत्ति कर और संपदा शुल्क, साथ ही उपहार कर के ज़रिए स्तर को थोड़ा नीचे लाया जा सकता है। आयकर की सीमा बिना संपत्ति की सीमा तय किए लागू नहीं की जा सकती। ज़िदपूर्वक किसी सीमा को तय करने का प्रयास कई समस्याएँ पैदा कर सकता है।

रणनीति एवं तकनीक : योजना के संदर्भ में किसी भी आर्थिक नीति का क्रियाकलाप सिर्फ़ आवश्यक वित्तीय संपदा को जुटाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उपभोग के तरीक़े और वास्तविक संसाधनों के उपयोग, जो योजना की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, सभी तरीक़े से बढ़ावा देना भी है। सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा निवेश योजना का प्रमुख उपकरण है। इसके अतिरिक्त अन्य वित्तीय एवं नियंत्रण के तरीक़ों को भी इस उद्देश्य के लिए आज़माया जाता है। पहली बात यह कि मुख्य तौर पर वित्तीय एवं मौद्रिक नीतियों के ज़रिए आर्थिक गतिविधियों का नियमन होता है, दूसरे यह कि निर्यात एवं आयात पर नियंत्रण, मूल्य नियंत्रण, उद्योग एवं व्यापार के आवंटन के लिए लाइसेंस जैसे उपकरण हैं, जो खास क्षेत्र या उपक्षेत्र से जुड़ी अर्थव्यवस्था के नियमन को प्रभावित करते हैं। एक ऐसी वृहद योजना जिसका मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में निवेश को बढ़ाना है, जिसकी अपनी क्रमबद्ध प्राथमिकताएँ हैं, को दोनों तरह का नियंत्रण रखने की आवश्यकता है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय बेशक मुद्रास्फीतिक

दबाव बनाता है। आपूर्ति से अधिक माँग निकालना विकास की रणनीति का एक हिस्सा है। इसलिए सार्वजनिक ख़र्चे में कटौती एवं ख़र्चे में अन्य रोकथाम के तरीक़े अंतिम विकल्प के रूप में आज़माने चाहिए। इसका मतलब यह है कि एक आगे की तैयारी रहनी चाहिए। ये नियंत्रण बिना एकीकृत व्यवस्था के काम नहीं कर सकते।

संक्षेप में कहें तो विकास के लिए योजना का दृष्टिकोण आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों, जिस पर योजना के उद्‌देश्य एवं उसकी प्राथमिकताएँ आधारित हैं, के बीच समन्वय की आवश्यकता प्रस्तुत करता है, यदि योजित निवेश का लक्ष्य प्राप्त करना है तो आवश्यक संसाधन को सुनिश्चित करना होगा और उन्हें मौजूदा तंत्र के दायरे में काम कर रहे अनुमोदक एवं नियामक संस्थाओं की ओर मोड़ना होगा। परंतु तंत्रों का जाल कम करना होगा ताकि प्रोत्साहन एवं निरोध के बीच इच्छित संतुलन क़ायम किया जा सके और अस्थायी नियंत्रण एवं सुधार से बाहर निकला जा सके।

13

योजना की रूपरेखा

एक नज़रिए से देखें तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू किए गए विकास के प्रयास से ही जुड़ा भाग है, लेकिन प्राथमिकताएँ बदल गई हैं। ज़्यादा ज़ोर औद्योगीकरण, ख़ासकर भारी उद्योग एवं परिवहन जैसे उसके सहयोगी के विकास पर है। समाजवाद को लक्ष्य के रूप में स्वीकार करने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र के मुक़ाबले अधिक निवेश की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

योजना परिव्यय

प्रथम पंचवर्षीय योजना के 1,960 करोड़ रुपए के सार्वजनिक परिव्यय के मुक़ाबले द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 4,800 करोड़ रुपए का कुल परिव्यय और निजी क्षेत्र के लिए 2,400 करोड़ रुपए के परिव्यय का खाका तैयार किया गया। सरकार द्वारा प्रमुख क्षेत्रों में वितरण इस तरह किया गया—

तालिका
प्रमुख क्षेत्रों में योजना परिव्यय का वितरण

(करोड़ रुपए में)

	प्रथम पंचवर्षीय योजना		द्वितीय पंचवर्षीय योजना	
	कुल प्रावधान	प्रतिशत	कुल प्रावधान	प्रतिशत
1	2	3	4	5
1. कृषि एवं सामुदायिक विकास	**357**	**15.1**	**568**	**11.8**
(अ) कृषि	241	10.2	341	7.1
कृषि कार्यक्रम	197	8.3	170	3.5
पशुपालन	22	1.0	56	1.1

वन	10	0.4	47	1.0
मत्स्य पालन	4	0.2	12	0.3
सहकारिता	7	0.3	47	1.0
अन्य	1	–	9	0.2
(ब) एन.ई.एस. एवं समुदाय परियोजना	90	3.8	200	4.1
(स) अन्य कार्यक्रम	26	1.1	27	0.6
ग्रामीण पंचायतें	11	0.5	12	0.3
स्थानीय विकास कार्य	15	0.6	15	0.3
2. सिंचाई एवं बिजली	**661**	**28.1**	**913**	**19.0**
सिंचाई	384	16.3	381	7.9
बिजली	260	11.1	427	8.9
बाढ़ नियंत्रण और अन्य जाँच परियोजनाएँ आदि	17	0.7	105	2.2
3. उद्योग एवं खनन	**179**	**7.6**	**890**	**18.5**
बड़े एवं मध्यम उद्योग	148	6.3	617	12.9
खनिज विकास	1	–	73	1.5
ग्रामीण और छोटे उद्योग	30	1.3	200	4.1
4. परिवहन एवं संचार	**557**	**23.8**	**1,385**	**28.9**
रेलवे	268	11.4	900	18.8
सड़क	130	5.5	246	5.1
सड़क परिवहन	12	0.5	17	0.4
बंदरगाह एवं तट	34	1.4	45	0.9
जहाज़रानी	26	1.1	48	1.0
अंतरदेशीय जल परिवहन	–	–	3	0.1
नागरिक एवं उड्डयन परिवहन	24	1.0	43	0.9
अन्य परिवहन	3	0.1	7	0.1
डाक एवं तार	50	2.2	63	1.3
अन्य संचार	5	0.2	4	0.1
रेडियो प्रसारण	5	0.2	9	0.2
5. सामाजिक सेवाएँ	**533**	**22.6**	**945**	**19.7**
शिक्षा	164	7.0	307	6.4
स्वास्थ्य	140	5.9	274	5.7

आवास	49	2.1	120	2.5
पिछड़ा कल्याण वर्ग	32	1.3	91	1.9
समाज कल्याण	5	0.2	29	0.6
श्रमिक एवं श्रम कल्याण	7	0.3	29	0.6
पुनर्स्थापन	136	5.8	90	1.9
बेरोजगारी से जुड़ी विशेष योजनाएँ	–	–	5	0.1
6. विविध	**69**	**30**	**99**	**2.1**
कुल	2,356	100.0	4,800	100.0

ऊपर दिए गए परिव्यय में स्थानीय निकायों, विकास की योजनाओं के लिए उनके कोष, और स्थानीय विकास के लिए लोगों से प्राप्त नक़दी एवं सामान के ख़र्च शामिल नहीं हैं। यह देखा गया है कि लगभग सभी प्रमुख मदों में परिव्यय की राशि, पहली पंचवर्षीय योजना के मुक़ाबले बढ़ी हुई है, लेकिन उद्योग एवं खनन और परिवहन एवं संचार के लिए परिव्यय राशि में भारी बढ़ोतरी की गई है। जबकि पहली पंचवर्षीय योजना में सिंचाई एवं ऊर्जा तथा कृषि क्षेत्र को प्रमुखता दी गई थी, लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ज़्यादा ज़ोर उद्योग एवं खनन को दिया गया है।

कुल 4,800 करोड़ की योजना परिव्यय में 2,559 करोड़ केंद्र के और 2,241 करोड़ राज्यों के अंश के रूप में हैं, जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना में वास्तव में केंद्र की ओर से 1,114 करोड़ और राज्यों की तरफ़ से 897 करोड़ रुपए के अंश थे। कुल परियोजना व्यय में से 3,800 करोड़ रुपए निवेश के रूप में, जिनके ख़र्च से उत्पादक परिसंपत्ति का निर्माण होना है और 1000 करोड़ रुपए चालू विकास के ख़र्चे के लिए है। इन मदों के आँकड़े इस प्रकार हैं—

तालिका

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निवेश : सार्वजनिक क्षेत्र

(करोड़ रुपए में)

	निवेश परिव्यय	चालू परिव्यय	कुल
1. कृषि एवं सामुदायिक विकास	**338**	**230**	**568**
कृषि	181	160	341
राष्ट्रीय-विस्तार एवं सामुदायिक विकास	157	70	227

2. सिंचाई एवं बिजली	**863**	**50**	**913**
सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	456	30	486
बिजली	407	20	427
3. उद्योग एवं खनन	**790**	**100**	**890**
बड़े एवं मध्यम उद्योग एवं खनन	670	20	690
ग्रामीण एवं छोटे उद्योग	120	80	200
4. परिवहन एवं संचार	**1,335**	**50**	**1,385**
5. सामाजिक सेवाएँ			
6. अन्य	19	80	99
कुल	**3,800**	**1,000**	**4,800**

निजी क्षेत्र में लगभग 2,400 करोड़ रुपए का निवेश का अनुमान किया गया है, जिन्हें नीचे तालिका में अलग-अलग मदों में दिखाया गया है—

तालिका

निजी क्षेत्र में निवेश

(करोड़ रुपए में)

1. संगठित उद्योग एवं खनन	575
2. वृक्षारोपण, बिजली उपक्रम एवं परिवहन (रेलवे के अलावा)	125
3. कृषि और ग्रामीण एवं लघु उद्योग	300
4. अंश पूँजी	400
कुल	1,400

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल 3,100 करोड़ रुपए के निवेश का अनुमान लगाया गया था, जिसमें से 1,500 करोड़ रुपए यानी कुल निवेश का लगभग 48 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में निवेश का अनुपात 2:1 रहा।

उत्पादन एवं विकास का लक्ष्य

वित्तीय संसाधनों के आवंटन के अतिरिक्त भौतिक रूप में प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार तय किए गए—

तालिका
उत्पादन एवं विकास के मुख्य लक्ष्य

क्षेत्र एवं वस्तु	इकाई	1955-56	1960-61	प्रतिशत वृद्धि 1955-56 से 1960-61 में
1	2	3	4	5
1. कृषि एवं सामुदायिक विकास				
अनाज	(मि.टन)	65.0	75.0	15
कपास	(10 लाख बेल्स)	4.2	5.5	31
गन्ना एवं रार गुड़	(10 लाख टन)	5.8	7.1	22
तिलहन	(10 लाख टन)	5.5	7.0	27
जूट	(10 लाख बेल्स)	4.0	5.0	25
चाय	(10 लाख पौंड)	644	700	9
राष्ट्रीय विस्तार खंड	(संख्या में)	500	3,800	660
सामुदायिक विकास खंड	(संख्या में)	622	1,120	80
2. सिंचाई एवं बिजली				
सिंचित क्षेत्र	(10 लाख एकड में)	67	88	32
बिजली (स्थापित क्षमता)	(10 लाख किलोवाट)	3.4	6.9	103
3. खनिज				
लौह अयस्क	(10 लाख टन)	4.3*	12.5	191
कोयला	(10 लाख टन)	38.0†	60.0†	58
4. बड़े उद्योग				
तैयार इस्पात	(10 लाख टन)	1.3	4.3	231
अल्युमिनियम	(हजार टन)	7.5	25.0	233
ऑटोमोबाइल	(संख्या में)	25,000	57,000	128
रेल इंजन	(संख्या में)	175	400	129
सीमेंट	(10 लाख टन)	4.3	13	202
रासायनिक खाद				
(अ) नाइट्रोजन (अमोनियम सल्फेट के संदर्भ में)				

	(हज़ार टन)	380	1,450	282
(ब) फास्फेटिक (सल्फर फोस्फेट के संदर्भ में)				
	(हज़ार टन)	120	720	500
सूती कपड़े	(10 लाख गज)	6,850	8,500	24
चीनी	(10 लाख टन)	1.7	2.3	35
काग़ज़ एवं काग़ज़ बोर्ड	(हज़ार टन)	200	350	75
5. परिवहन एवं संचार				
रेलवे				
सवारी गाड़ी	(10 लाख मील)	108	124	17
माल वाहक	(10 लाख टन)	120	162	35
सड़क				
राष्ट्रीय राजमार्ग	(10 लाख मील)	12.9	13.8	7
भू-सड़क	(10 लाख मील)	107.0	125.0	17
डाकघर	(10 लाख संख्या)	55	75	36
6. शिक्षा एवं स्वास्थ्य				
प्राथमिक एवं बुनियादी स्कूल (लाख)		2.93	3.50	19
प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में शिक्षक				
	(लाख)	10.3	13.4	30
स्वास्थ्य संस्थाएँ	(हज़ार)	10	12.6	26

* कैलेंडर वर्ष से संबंधित

† कैलेंडर वर्ष 1954 से संबंधित

ऊपर दिए उत्पादन के लक्ष्य एवं विकास कार्यक्रम के आधार पर राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय में जो वृद्धि होनी है, उसे इस तालिका में दिखाया गया है —

तालिका

उद्योग जनित राष्ट्रीय उत्पादन का अनुमान

(करोड़ रुपए में 1952-53 के मूल्य पर आधारित)

				अवधि प्रतिशत वृद्धि	
	1950-51	55-56	60-61	51-56	56-61
1. कृषि एवं जुड़े उद्योग	4,450	5230	6170	18	18
2. खनन	80	95	150	19	58
3. फैक्ट्री अवस्थापना	590	840	1380	43	64

4. छोटे उद्यम	740	840	1085	14	30
5. निर्माण	180	220	295	22	34
6. व्यापार, परिवहन और संचार	1650	1875	2300	14	23
7. पेशा एवं सेवाएँ (सरकारी प्रशासन समेत)	1420	1700	2100	20	23
कुल राष्ट्रीय उत्पाद	**9,110**	**10,800**	**13,480**	**18**	**25**
प्रति व्यक्ति आय	**253**	**281**	**331**	**11**	**18**

चूँकि घरेलू उत्पाद का अधिकांश हिस्सा बचत और निवेश किया जाना है, इसलिए अर्थव्यवस्था में सामानुपातिक उपभोग का स्तर नहीं बढ़ेगा। नीचे दी गई तालिका द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में 1950-51 और 1955-56 के मुक़ाबले राष्ट्रीय आय, निवेश, घरेलू बचत एवं उपभोग पर ख़र्च को दरशाती है।

तालिका

(करोड़ रुपए 1952-53 के मूल्य पर आधारित)

	1950-51	1955-56	1960-61
1. राष्ट्रीय आय	9,110	10,800	13,480
2. शुद्ध निवेश	448	790	1440
3. विदेशी संसाधनों का शुद्ध आवक	-7	34	130
4. शुद्ध घरेलू बचत (2-3)	455	756	1310
5. उपभोग ख़र्च (1-4)	8655	10,044	12170
6. राष्ट्रीय आय के प्रतिशत में निवेश (2% 1)	4.94	7.31	10.68
7. राष्ट्रीय आय के प्रतिशत में घरेलू बचत (4% 1)	4.98	7.00	9.7

यदि विदेशी संसाधन आवश्यकता के अनुसार नहीं आते तो हमें आगे उपभोग को रोकना पड़ेगा, ताकि राष्ट्रीय आय में प्रस्तावित विकास के लिए आवश्यक निवेश को बरक़रार रख सकें।

संसाधन

योजना के वित्त पोषण के लिए बनाई गई योजनाएँ इस प्रकार हैं—

तालिका

(करोड़ रुपए में)

1. चालू राजस्व से प्राप्त आधिक्य		800
(अ) कराधान की चालू (1955-56) दरें	350	
(आ) अतिरिक्त कराधान	450	
2. जनता से उधार		1200
(अ) बाजार से ऋण	700	
(आ) लघु बचत	500	
3. अन्य बजटीय स्रोत		400
(अ) रेलवे का योगदान	150	
(आ) भविष्य निधि एवं अन्य जमा	250	
4. विदेशों से उगाहे जानेवाले संसाधन		800
5. घाटे की वित्त व्यवस्था		1200
6. अतिरिक्त उपाय एवं स्रोतों से अंतर पाटना		400
कुल		4800

1955-56 में लागू करों की दरों के हिसाब से केंद्र व राज्य सरकारों से 5 साल की अवधि में लगभग 5,000 करोड़ रुपए की पावती का अनुमान है। इसमें से ग़ैर-विकास एवं विकास मद के अंतर्गत वे ख़र्च जो 1955-56 के स्तर से योजना में शामिल नहीं थे, 4,650 करोड़ रुपए के हुए। योजना के लिए सिर्फ़ 350 करोड़ रुपए बचे। अतिरिक्त कराधान से 400 करोड़ रुपए और रेलवे के सहयोग, जो कि चालू आय की बचत का हिस्सा थे, से 150 करोड़ रुपए आए। इस तरह से सरकार की कुल बचत 950 करोड़ रुपए रही। योजना में निवेश परिव्यय 3,800 करोड़ और चालू ख़र्चें 1,000 करोड़ रुपए प्रस्तावित हैं। कुल मिलाकर चालू खाते में बचत राशि 50 करोड़ रुपए नीचे आ गई। यदि परियोजनाओं में निवेश को बरक़रार रखना है तो निश्चित रूप से निजी बचत पर एक प्रस्ताव होना चाहिए।

निजी क्षेत्रों के लिए संसाधन : निजी क्षेत्रों के लिए निवेश का कार्यक्रम 2,400 करोड़ रुपए का रखा गया। इस क्षेत्र के लिए स्रोतों का पता लगाना काफी मुश्किल है, क्योंकि इसका एक बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्र से आता है। संगठित औद्योगिक क्षेत्र के लिए उपलब्ध स्रोतों का आकलन इस प्रकार है—

तालिका

(करोड़ रुपए में)

	1956-61
1. औद्योगिक और राज्य वित्त निगमों से ऋण	40
2. सरकारों, केंद्र एवं राज्यों की भागीदारी से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से ऋण	20
3. प्रदायक सहित विदेशी पूँजी	100
4. नई प्रतिभूति	80
5. आंतरिक स्रोत (नई प्रतिभूति एवं स्थानापन्न)	300
6. अन्य स्रोत जैसे प्रबंधन एजेंटों से अग्रिम	80
7. कुल	620

इस तरह 650 करोड़ रुपए की कुल आवश्यकता के मद्देनज़र 620 करोड़ रुपए दिख रहे हैं। 55 करोड़ रुपए का प्रावधान राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम से करना पड़ेगा। इसमें से 20-25 करोड़ रुपए कपास एवं जूट, टैक्सटाइल उद्योग के आधुनिकीकरण पर ख़र्च होने का अनुमान है।

विदेशी मुद्रा के स्रोत : योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों के लिए विदेशी मुद्रा स्रोत पर भारी दबाव होगा। विदेशी मुद्रा आय को लेकर कई अनिश्चितताओं का आकलन किया गया है और विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति सिर्फ़ यथास्थिति में नहीं हो सकती। इन अनिश्चितताओं के कारण भुगतान संतुलन व आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्रा की उपलब्धता को लेकर एक अलग राय बन रही है।

नीचे की तालिका में द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में भुगतान संतुलन की स्थिति की अनुमानित स्थिति दरशाई गई है—

तालिका
चालू खाते पर भारत के भुगतान संतुलन
(1956-57 से 1960-61)

(करोड़ रुपए में)

	56-57	57-58	58-59	59-60	60-61	कुल 1956-61
1. निर्यात (माल भाड़े समेत)	573	583	592	602	615	2965
2. आयात (सी आई आई)	783	886	990	895	786	4340

3. व्यापार संतुलन (1-2)	-210	-303	-398	-293	-171	1375
4. गुप्त (सरकारी अनुदान को छोड़कर)	+62	+55	+51	+46	+41	+255
5. कुल चालू खाता संतुलन (3+4)	-148	-248	-347	-247	-130	1120

पाँच वर्ष की अवधि में चालू खाते में कुल 1,120 करोड़ रुपए का शुद्ध घाटा रहा। इस घाटे को पाटने के लिए 200 करोड़ रुपए बकाया पाउंड खाते से लिया जा सकता है और 93.8 करोड़ रुपए प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान लिए गए अनुपयुक्त विदेशी ऋण एवं अनुदान की बचत से पूरा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 170 करोड़ रुपए सोवियत रूस और ब्रिटेन की सरकार से स्टील संयंत्र के लिए ऋण के रूप में सुनिश्चित किया जा सकता है। बाकी के लिए नए स्रोत तलाशने होंगे।

रोज़गार

हमारे जैसे पिछड़े देश में रोज़गार की समस्या का समाधान एक लंबे समय के लिए तेज विकास के ज़रिए ही किया जा सकता है। पाँच साल की अवधि में पूँजी निर्माण और बड़ी संख्या में रोज़गार के अवसर को लेकर दावे-प्रतिदावे को लेकर अलग-अलग राय हो सकती है। अगले पाँच साल के लिए कार्यक्रमों को सुनिश्चित करते समय हमें मुख्य रूप से इस बात का ध्यान रखना होगा कि कम-से-कम बेरोज़गारी में आ रही गिरावट को किसी तरह से रोका जाए।

अनुमान है कि 2.5 लाख बेरोज़गारों की संख्या शहरी क्षेत्रों में और 28 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में है। हर साल लगभग 18 लाख लोग, यानी हमारी जनसंख्या वृद्धि का 40 फीसदी हिस्सा श्रम बल से जुड़ जाता है। इस तरह 5 साल में बेरोज़गारों की संख्या 1 करोड़ से अधिक बढ़ गई है। इसमें से 62 लाख लोग ग्रामीण क्षेत्रों में से हैं। नीचे तालिका यह दरशाती है कि यदि बेरोज़गारी को ख़त्म करना है तो हमें कितने अवसरों की ज़रूरत है—

तालिका

(आँकड़े 10 लाख में)

	शहरी क्षेत्र में	ग्रामीण क्षेत्र में	कुल
श्रम बल में शामिल नए लोग	3.8	6.2	10.0
बेरोज़गारों की लंबित संख्या	2.5	2.8	5.3
कुल	6.3	9.0	15.3

इस क्रम में रोज़गार सृजन यदि संभव हुआ भी तो बेरोज़गारी की समस्या से निजात नहीं पाई जा सकती। उचित आँकड़े नहीं होने के कारण भी समस्या को सही संदर्भ में प्रस्तुत करना कठिन है।

नीचे दी गई तालिका में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित अतिरिक्त रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए जाने को दरशाया गया है।

तालिका
प्रस्तावित अतिरिक्त रोज़गार

(लाख में)

1. निर्माण	21.00
2. सिंचाई एवं बिजली	0.51
3. रेलवे	2.53
4. अन्य परिवहन एवं संचार	1.80
5. उद्योग एवं खनिज	7.50
6. कुटीर एवं लघु उद्योग	4.50
7. वन, मत्स्य, एन.ई.एस. और संबद्ध योजनाएँ	4 13
8. शिक्षा	3.10
9. स्वास्थ्य	1.16
10. अन्य सामाजिक योजनाएँ	1.42
11. सरकारी सेवाएँ	4.34
कुल (1 से 11)	51.99
12. अन्य व्यापार एवं व्यवसाय कुल के 52 फीसदी की दर से	27.04
कुल योग	**79.03**
या कह सकते हैं	**80.00**

और अधिक रोज़गार की संभावना नहीं बनती, क्योंकि परिवहन और भारी उद्योगों में ज़्यादा निवेश की परिकल्पना की गई, जो कि कम समय में रोज़गार जैसे विषय पर कम प्रभाव डालते हैं।

शिक्षित बेरोज़गारी अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी की समस्या का सामान्य हिस्सा है। सितंबर 1955 में आयोग द्वारा गठित एक अध्ययन दल ने अनुमान लगाया था कि आनेवाले पाँच वर्षों में 14.5 लाख अतिरिक्त शिक्षित लोग (मैट्रिक व इससे ऊपर) श्रम बल से जुड़ जाएँगे। मौजूदा समय में अनुमानित शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या 5.5 लाख

है। यानी इन 20 लाख शिक्षित बेरोज़गारों में से 14.4 लाख लोग ही आनेवाले पाँच साल में रोज़गार पा सकेंगे। यानी समस्या जस-की-तस रहेगी।

हमने यहाँ द्वितीय पंचवर्षीय योजना, इसके उद्देश्य, तकनीक और दृष्टिकोण, वित्तीय एवं भौतिक लक्ष्य, संसाधनों का आकलन और देश के समक्ष खड़ी समस्याओं से लड़ने के तरीक़े की मौटे तौर पर एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की तरह द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी सुझाव एवं सलाह के प्रावधान हैं। हमने उनका विश्लेषण नहीं किया है। न ही हमने विभिन्न क्षेत्रों के विकास कार्यक्रम से संबंधित आँकड़ों को पुनर्पादित किया है। सांख्यिकी अनुसंधान जैसे कार्यक्रमों पर भी बातचीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह योजना दृष्टिकोण के उपांग है। हमने आयोग की भाषा को ही यथासंभव प्रयोग किया है, ताकि हमारी व्याख्या एवं संक्षेपण के प्रयास पर वास्तविकता के विरूपण का आरोप न लगे। आयोग के विमर्श को अखंडित रखने का हमने भरसक पूरा प्रयास किया है।

किसी भी योजना की सफलता के लिए आयोग द्वारा आशा एवं पूर्व शर्त को ही व्यक्त करते हुए हम इस अध्याय का समापन इन शब्दों के साथ कर रहे हैं—'यदि केंद्र और राज्य दोनों की प्रशासनिक मशीनरी दक्षता, सत्यनिष्ठा, तात्कालिकता की भावना, समुदाय के लिए चिंता के भाव से काम करती है तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता सुनिश्चित है।'

'यदि' बोलना कोई ज़्यादती तो नहीं?

भाग-पाँच
दूसरी योजना की आलोचना

14

विशिष्ट विशेषताएँ

कहा जा सकता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना, जहाँ तक कुछ योजनाओं और विविध क्षेत्र के कार्यक्रमों का संबंध है, प्रथम पंचवर्षीय योजना की ही अगली कड़ी और उसका प्रक्षेपण है। लेकिन अपने उद्देश्यों, प्रक्रियाओं और तकनीक में कुछ अलग है या फिर प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुछ अंतर्निहित विचारों को द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ज़्यादा मुखर रूप से रखने की कोशिश की गई है।

वैचारिक आधार – समाजवाद

द्वितीय योजना की पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्ट विशेषता समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य है। ऐसा करने में आयोग ने कांग्रेस के अवादी सत्र के प्रस्ताव का अनुसरण किया, न कि संविधान में दर्ज स्वयंसिद्ध राज्य के नीति निर्धारक सिद्धांत का। कांग्रेस और नेहरू को किसने समाजवाद का ढोंग फैलाने के लिए प्रेरित किया, यह कहना मुश्किल है। हो सकता है कि यह पंडित नेहरू का चीन और रूस के नेताओं के साथ नज़दीकी का संबंध होने का परिणाम हो या पाकिस्तान-अमरीका के सैन्य संबंधों पर प्रतिक्रियात्मक असर। कुछ लोग हैं, जो यह राय रखते हैं कि किसी भी योजना के प्रति लोगों का सहयोग तब तक संभव नहीं है जब तक कि विचार के रंग में रँग न जाए और यह विचार सिर्फ़ आर्थिक नहीं होना चाहिए, बल्कि राजनीतिक भी होना चाहिए। समाजवाद यह विचार हो सकता है। सोवियत रूस और अन्य वाम विचार वाले देशों के विकास को इस विचार के लिए श्रेय दे सकते हैं।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सामान्य जन के मुक़ाबले व्यक्तियों और देशों को किसी आदर्श को साकार करने के लिए दंड या बलिदान का भागीदार अधिक बनना पड़ सकता है। विकास की योजना के लिए कड़ी मेहनत और त्याग की ज़रूरत होती है। उत्पादन से पहले निवेश ज़रूरी है। यदि आप उपज चाहते हैं तो पहले

बुवाई करनी होगी और आप उतना ही निवेश कर सकते हैं, जितना बचत किया है। बचत तभी हो सकती है, जब आप वर्तमान के उपभोग को कम करेंगे। एक ग़रीब देश में जहाँ उपभोग पहले से ही कम है, वहाँ बचत के लिए दृढ संकल्प के साथ प्रयास की ज़रूरत है। बचत के लिए संकल्प और उपभोग न करने की इच्छाशक्ति कैसे उत्पन्न करेंगे।

एक खुली अर्थव्यवस्था में बचत, निवेश और उत्पादन के बीच संबंध इतना सहज है कि किसी को इस बात के लिए प्रेरित करने में ज़्यादा कोशिश करने की आवश्यकता नहीं होती कि भविष्य में अपनी माँग को पूरा करने और संतुष्टि को सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान में अपने उपभोग को कुछ कम कर ले। वह जानता है कि वह तभी फ़सल काट सकता है जब वह रोपेगा, यदि वह नहीं रोपता तो वह फ़सल नहीं काट सकता। इस अर्थव्यवस्था में अंतरर्संबंधों का सामूहिक प्रकटीकरण अप्रत्यक्ष और विस्तृत है। सरकार इसके बीच में आती है। जब सरकार यह गारंटी देती है कि आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति वह सुनिश्चित करेगी तो फिर आपको वर्तमान उपभोग को छोड़ने की आवश्यकता तब तक महसूस नहीं होती, जब तक या तो आपको ऐसा करने के लिए मज़बूर किया जाए या आप बड़े आत्मज्ञानी और सामाजिक रूप से जागरूक इनसान हों। लोगों की भावनाओं को जगाने के लिए अपील भी की जाती है। उन्हें देशभक्ति के नाम पर बलिदान और परेशान, पीड़ित और दुर्बल करने को प्रेरित किया जाता है।

केंद्रीय योजना के साथ समाजवादी योजना यदि कहीं सफल हुई तो वह कम्युनिस्ट रूस, नाज़ी जर्मनी और फासिस्ट इटली में हुई। चीन या अन्य उपाश्रित देशों के बारे में कुछ कहना अभी जल्दीबाज़ी होगी। इन सभी देशों में राजनीतिक और राष्ट्रीय उद्देश्यों को जनता के सामने गंभीरता से रखा गया। नाज़ी जर्मनी चाहता था कि वह शुद्ध आर्य रक्त वाली श्रेष्ठ नस्ल के रूप में दुनिया पर दबदबा क़ायम करे। इटली के मुसोलिनी का सपना था कि वह राजनीतिक शक्ति बढ़ाने के लिए एक नया रोमन साम्राज्य स्थापित करे। सोवियत रूस ने सार्वजनिक संपत्ति में वृद्धि, श्रमिकों के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर में धीरे-धीरे बढ़ोतरी और सोवियत रूस की स्वतंत्रता को मज़बूत व सैन्यशक्ति बढ़ाने की योजना बनाई। जापान भी एशिया का नेतृत्व करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा की संतुष्टि के लिए आगे बढ़ा। ये राजनीतिक इरादे उन शक्तियों के प्रतिक्रियावादी रवैये के कारण उभरे, जिन्होंने उनके राष्ट्रीय अस्तित्व को ही चुनौती दी थी। सोवियत रूस को पूँजीवादी विश्व से हमेशा ख़तरा महसूस होता था, जो उसके श्रमिकों के राज्य को छिन्न-भिन्न करने के मंसूबे बना रहा था। इंग्लैंड की भेजी हुई अभियान सेना का लाभ सोवियत नेताओं ने भय की ग्रंथि डालने में आसानी से उठा लिया। हिटलर और मुसोलिनी ने भी इन्हीं संवेदनाओं से खेला। आज भी आंग्ल-अमरीकी शक्तियाँ सोवियत रूस के

लोगों के लिए दुश्मन मानी जाती हैं और यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी देशों की तानाशाही उनकी साज़िश या नेतृत्व के गुणों पर उतनी नहीं टिकी हुई है, जितनी कि लोकतंत्र की ख़ूबियों और खामियों पर।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने योजना को एक वैचारिक आधार देने की कोशिश की है, लेकिन इसे सिर्फ़ आर्थिक परिधि में ही सीमित रखा गया है। 'एक अविकसित देश के सामने ज़िम्मेदारी' पर रिपोर्ट कहती है—महज़ आर्थिक व सामाजिक संस्थाओं के मौजूदा ढाँचे के अंतर्गत बेहतर परिणाम प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि उन्हें इस तरह ढालना या तैयार करना है कि व्यापक व गहरे सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावी ढंग से योगदान कर सकें। इन मूल्यों या बुनियादी उद्देश्यों को हाल ही में 'समाज के समाजवादी दृष्टिकोण' जैसे मुहावरे के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इन दिनों 'समाजवाद' शब्द के वास्तविक अर्थ और व्याख्या को लेकर भारी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं और ये भ्रांतियाँ समाजवाद विरोधी या ग़ैर-समाजवाद की उपज नहीं हैं, बल्कि उनकी ओर से भी हैं, जो धुर समाजवादी होने का दावा करते हैं। निश्चित है कि जिस समाजवाद को यूरोप में पढ़ाया गया और उसकी व्याख्या की गई और समाजवादी सोवियत गणराज्य व अन्य देशों की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा इसे लागू किया गया, वह 'एक ऐसी व्यवस्था है जो माँग करती है कि भूमि और अन्य अचल बिक्री के लिए उत्पादन में उपयोग पूँजी, राज्य या राज्य द्वारा अधिकृत सार्वजनिक संस्थानों की संपत्ति होगी। यदि एक प्रकार के समाजवाद का दूसरे प्रकार से कोई अंतर है तो वह सिर्फ़ संपत्ति के प्रबंधन के तरीक़े को लेकर है। संपत्ति के स्वामित्व के अधिग्रहण के लिए अपनाए गए तरीक़ों में भी अंतर हो सकता है। उदाहरण के लिए भारत में कांग्रेस क़ानून के तहत निजी संपत्ति का अधिग्रहण करना चाहती है और क़ानूनी संस्थान द्वारा तय क्षतिपूर्ति का भुगतान करना चाहती है। समाजवादी इसी को शांतिपूर्ण तरीक़े से लेकिन बिना कोई क्षतिपूर्ति का पैसा दिए अधिग्रहण करना चाहेंगे। साम्यवादी इसी काम के लिए हिंसक तरीक़े अपनाने से भी नहीं हिचक सकते हैं और जब्त कर सकते हैं। सर्वोदयी इसके लिए लोगों को समझाएँगे और उन्हें दान के लिए यह कहकर प्रेरित करेंगे कि साम्यवादी इसे बलपूर्वक छीनकर ले जाएँगे। इनमें से सबके अंतिम उद्देश्य में कोई अंतर नहीं है। फिर प्रबंधन के तरीक़े में अंतर है। साम्यवादी जो सोवियत के मॉडल का अनुसरण करते हैं, वे केंद्रीय प्रबंधन को पसंद करेंगे। समाजवादी इसके विकेंद्रीकरण की वकालत करेंगे और वे राज्य द्वारा अधिकृत संस्थानों जैसे निगमों, नगरपालिकाओं और अन्य इकाइयों के ज़रिए इसका प्रबंधन करेंगे। इसे संभवतः 'नगरपालिका समाजवाद' का नाम ठीक ही दिया गया है। ज़ाहिर है, कांग्रेस सार्वजनिक उपक्रमों का विस्तार करेगी और राज्य के नियंत्रण व देखरेख में विभिन्न तरीकों से इसका प्रबंधन करेगी। सर्वोदयवादी

अपनी ग्रामराज की पूर्व कल्पना पर चलेंगे, जिसमें भूमि और उत्पादन के अन्य संसाधन पर पूरे गाँव का अधिकार है और वही इसके प्रबंधन के लिए ज़िम्मेदार भी है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने इस तरह सिद्धांत रूप से सभी सामाजिक संगठनों का समर्थन प्राप्त किया। उनमें से कुछ ऐसे आलोचक हो सकते हैं, जो कि देश में समाजवाद के पनपने की गति को लेकर असंतुष्ट हों। द्वितीय पंचवर्षीय योजना अवधि में ही समाजवाद पूरी तरह स्थापित हो जाए, यह संभव नहीं है। यही कारण है कि द्वितीय योजना में समाजवाद की पूर्ण तसवीर उभरकर सामने नहीं आई। 7 जनवरी, 1956 को राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थायी समिति की बैठक में दिए अपने भाषण में पंडित नेहरू ने कहा, 'सबकी सहमति से और जो हमारी दृढ नीति भी है, हम समाज के समाजवादी ढाँचे की ओर बढ़े। मैं आशा करता हूँ कि हर व्यक्ति यह महसूस करता है कि देश में समाजवाद या अन्य किसी भी उच्च मानक को प्राप्त करना एक लंबी प्रकिया है। लोगों को धोखा देने की कोई ज़रूरत नहीं है कि हम इसे शीघ्र प्राप्त कर लेंगे। यहाँ तक कि चीन में चैयरमैन माओ सभी तरह सत्तावादी ताक़तों को रखने और चीन की जनता की काम करने की अदम्य क्षमता के बावजूद लगातार यह कहते हैं कि समाजवाद को लाने में 20 वर्ष या उससे अधिक लग सकते हैं।'

तो 20 साल की अवधि के भीतर ही पूर्ण समाजवाद की योजना का खाका तैयार हो सकता है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने समाजवाद की प्रकिया की सिर्फ़ शुरुआत करने का इरादा जताया है। अंतत: इसका स्वरूप क्या होगा, इस बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा गया है, सिवाय इसके कि इस संबंध में किसी भी पहल की बुनियादी कसौटी निजी लाभ नहीं बल्कि सामाजिक उपलब्धि होनी चाहिए और यह कि ' उपयुक्त माहौल बनाने के लिए राज्य को लोगों की ओर से बात रखने और समुदाय के लिए काम करने हेतु एक मुख्य एजेंसी की तरह अपने उपर भारी ज़िम्मेदारी लेनी पड़ेगी।' पंडित नेहरू ने इस संबंध में अपने भाषण में अपनी सोच का संकेत देते हुए कहा, 'जैसा मैं परिकल्पना कर सकता हूँ, भविष्य में सभी बुनियादी उद्योग, सभी खनिज-संपदा और सभी भारी उद्योग आदि सरकारी नियंत्रण में होने चाहिए, जबकि मध्यम और लघु उद्योग सहकारी संस्थाओं के अधीन होने चाहिए।'

पहली योजना निजी क्षेत्रों के प्रति अपने रवैये को इस तरह परिभाषित करते हुए कहती है—'सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच फर्क इसके संचालन के तरीक़े को लेकर है, न कि इसके अंतिम उद्देश्य को लेकर।' और यह भी कि 'विकास की गुंजाइश और आवश्यकता इतनी ज़्यादा है कि सार्वजनिक क्षेत्र के लिए बेहतर होगा कि वे उन उद्योगों का विकास करें, जिनमें निजी उद्यमी आवश्यक संसाधनों को लगाने और उसमें ज़ोखिम उठाने में या तो असमर्थ हैं या अनिच्छुक हैं। दूसरी तरफ़ द्वितीय योजना

इस आधार पर आगे बढ़ती है कि इन दोनों क्षेत्रों के बीच अंतर 'संचालन के तरीकों को लेकर नहीं, बल्कि उद्देश्यों को लेकर है और सार्वजनिक उपक्रम औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश आवश्यकता के अनुसार नहीं बल्कि पसंद के आधार पर भी करते हैं।'

द्वितीय योजना में प्रतिपादित योजनाओं का कहाँ तक क्रियान्वयन होता है, यह अभी देखना है। मौजूदा परिस्थितियों में सरकार के पास ख़र्च करने के सीमित संसाधन है, इसको देखते हुए कहा जा सकता है कि निजी उद्यमियों ने जिन क्षेत्रों को हाथ लगाने से मना कर दिया है, उसमें घुसने की कोई स्थिति बनती है। समाजवादी नेहरू यदि राष्ट्रीयकरण की सोचते हैं तो तब तक बहुत बड़ा ख़तरा नहीं हो सकते। बड़ी बात तब हो सकती है, जब कोई एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न होती है। लेकिन राज्य स्तर पर समाजवादी उन्हीं उद्यमों पर अपना हाथ रखेंगे, जो उसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं और संविधान में वर्णित राज्य सूची में दर्ज हैं। इसलिए राज्य सरकारें सड़क परिवहन, पाठ्यपुस्तक आदि का राष्ट्रीयकरण करने पर विचार करेंगी। इसके और नीचे एक समाजवादी ग्राम पंचायत के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए ग्राम पंचायत के ज़रिए तालाबों से मछली पकड़ने, बाज़ार में बैलगाड़ी चलाने जैसे कामों का राष्ट्रीयकरण और प्रबंधन कर अपने अस्तित्व को न्यायोचित ठहराएगा। गाँव में नाम के विधिवक़्ताओं की तरह ये ग्रामीण समाजवादी भोले-भाले लोगों को संकट में डाल सकते हैं और पूरे आर्थिक सौहार्द को बिगाड़ सकते हैं।

द्वितीय योजना और सरकार ने घोषणाएँ की हैं कि वे समाजवाद प्रजातांत्रिक तरीक़ों से लेकर आएँगे, लेकिन हम फिर एक बार पंडित नेहरू को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं जिससे पता चलता है कि वे खुद इस रास्ते के प्रति निश्चित नहीं है। वह कहते हैं, 'कुछ लोग लोकतंत्र का पूँजीवाद के साथ इसलिए घालमेल कर देते हैं, क्योंकि कुछ पूँजीवादी देशों में लोकतंत्र पनप रहा है। इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि यह पूँजीवाद का आवश्यक अंग है या इसके उलटा है। इसी तरह समाजवाद का मतलब अधिनायकवाद हो, ज़रूरी नहीं है। कम-से-कम सिद्धांत में तो ऐसा नहीं है। लेकिन व्यवहार में नहीं जानता कि देश कैसे आगे बढ़ेगा।'[1] जहाँ तक समाजवाद का प्रश्न है, तो हम केवल इतना जोड़ सकते हैं कि सिद्धांत में यह अधिनायकवादी है और व्यवहार में यह सब जगह सर्वसत्तावादी सरकार के रूप में परिणत हुआ है। भारत इसका अपवाद कैसे रह सकता है, जब तक कि हम 'समाजवाद' के नाम पर कुछ नक़ली चीज़ों को आगे न बढ़ने दें।

ढाँचागत नियोजन

पहली और दूसरी योजना में दूसरा बड़ा फ़र्क़ यह रहा कि पहली योजना एक सामान्य कार्यात्मक योजना थी, जबकि द्वितीय योजना ढाँचागत परिवर्तन का एक प्रयास

---

1. प्लानिंग एंड डेवलपमेंट, पृष्ठ 42, पब्लिकेशन डिवीजन।

थी। दो स्वरूपों की इन योजनाओं में अंतर यह है कि कार्यात्मक योजना, मूल ढाँचे व समाज के पेशागत स्वरूप में बदलाव का कोई प्रस्ताव नहीं करता। यह वर्तमान क्रम में मरम्मत और सुधार की कोशिश करता है, लेकिन इसके स्वरूप में कोई बदलाव नहीं करता। दूसरी तरफ़ एक संरचनात्क या ढाँचागत योजना एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहती है, जो मौलिक रूप से वर्तमान व्यवस्था से अलग हो और उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में श्रमिकों और उनके संदर्भित अनुपात को पुनः आवंटित करें।

एक अविकसित देश में प्राथमिक से द्वितीयक और द्वितीयक से तृतीयक क्षेत्र की ओर प्राथमिकताएँ बदलने की आवश्यकता होती है। आयोग ने महसूस किया कि 1975-76 तक कृषि मज़दूरों का अनुपात 60 फीसदी या उससे नीचे लाया जाना चाहिए। योजनाकारों के मन में किस तरह के ढाँचागत बदलाव की परिकल्पना थी, वे किस हद तक उसे पूरा करने के लिए इच्छुक थे और ऐसा करना कितना संभव था, हम दूसरे अध्याय में चर्चा करेंगे।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की तीसरी ख़ास विशेषता उद्योग पर ज़्यादा ज़ोर देना था, जबकि पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि को ज़्यादा महत्त्व दिया गया था। प्राथमिकता में इस बदलाव का पहला कारण आयोग का यह निष्कर्ष था कि पहली योजना के लागू होने के समय मौजूद खाद्य संकट से देश बाहर निकल चुका है और दूसरा ढाँचागत परिवर्तन का उसका लक्ष्य, जिसका जिक्र हमने ऊपर किया है। अब इस बात पर बहस की कोई गुंजाइश नहीं है कि उनका निष्कर्ष ग़लत था। कुछ लोग विभिन्न रायों और विचारों को प्रकट कर अपने परस्पर विरोधी दृष्टिकोण को उचित ठहरा सकते हैं।

योजना का आकार

अंत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना पहली योजना के मुक़ाबले न सिर्फ़ आकार में बड़ी है, बल्कि क्षेत्रगत कार्यक्रमों में भी। जब योजना की रूपरेखा प्रकाशित हुई तो सार्वजनिक क्षेत्र का अनुमानित परिव्यय 4300 करोड़ रुपए का था, जिसमें से 3400 करोड़ रुपए निवेश खाते में आने थे और 900 करोड़ रुपए चालू विकास परियोजनाओं के लिए थे। उस समय के अर्थशास्त्रियों के दल ने 'ऊँची महत्त्वाकांक्षा' के रूप में इसका वर्णन किया था और यह राय जाहिर की थी कि इस वृद्धि के जो प्रयास किए गए हैं, वे बहुत हैं और अंततः अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव बढ़ाएँगे। बहरहाल उन्होंने इस टिप्पणी के साथ महालनोबिस के सिद्धांत पर अपनी सहमति दे दी कि अधिकतम प्रयास के तरीक़ों को आगे बढ़ाने के लिए एक निश्चित कोशिश से राष्ट्रीय आय के उद्देश्य, जो कि निवेश की दर से ही परिणाम देंगे, को प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन दल के

एक सदस्य गुजरात विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बी.आर. शेनाय ने स्पष्ट रूप से अपनी असहमति जताते हुए कहा कि योजना के आकार का क्रियान्वयन राष्ट्र की क्षमता से बाहर है। आलोचनाओं की परवाह किए बिना योजना आयोग ने न सिर्फ़ योजना के आकार को स्वीकार कर लिया, बल्कि व्यय के लक्ष्य को बढ़ाकर 4800 करोड़ रुपए कर दिया। उस समय श्री के.सी. नियोगी ने यह ज़ोर देकर कहा, योजना का आकार देखते हुए इसे पाँच वर्ष में लागू करना बहुत कठिन होगा। फिर भी योजना आयोग नहीं माना और लक्ष्य को 5600 करोड़ रुपए करने का फिर प्रस्ताव कर दिया।

इस तरह कुल प्रस्तावित योजना परिव्यय को तब तक बढ़ाया गया, जब तक यह पता न चल गया कि विदेशी मुद्रा के मोर्चे पर गंभीर ख़तरा उत्पन्न हो गया है। लोगों ने यह महसूस किया कि देश के वित्तीय संसाधनों का पुनर्मूल्यांकन करना बहुत ज़रूरी है। 10 जुलाई, 1957 को मद्रास में अपने भाषण में सी.डी. देशमुख ने कहा, 'वह जहाँ तक परिस्थितियों को पढ़ रहे हैं, उसके अनुसार क्रियान्यवन के लिए जितने संसाधन जुटाने की अपेक्षा कर रहे हैं, वह एक या अन्य कारणों से उपलब्ध नहीं हो सकते। परिणामतः उन्हें इसमें कटौती के लिए तैयार होना पड़ेगा या योजना कार्यकाल को योजनाकारों के अनुमान से थोड़ा आगे बढ़ाना पड़ेगा। आगे वह जोड़ते हैं, 'चूँकि हमारी राष्ट्रीय आय नहीं बढ़ी है और हम सीमांत निर्वहन पर जी रहे हैं, इसलिए आवश्यक त्याग करना संभव नहीं होगा, क्योंकि योजना का वित्तीय आकलन वह नहीं है जो था।'[2]

योजना के वित्तीय आकलन और भविष्य की संभावनाओं से पहले बीत चुके दो वर्षों में योजना पर हुए कार्य की समीक्षा करना और यदि कोई आंतरिक विरोधाभास है तो उसे जानना ज़्यादा बेहतर होगा।

---

2. हिंदू, मद्रास, 11 जुलाई, 1957।

15

तकनीकी ख़ामियाँ

ग़लत धारणाएँ

किसी भी देश का आर्थिक विकास उसके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलुओं के अलावा (1) जनसंख्या विकास दर, (2) पूँजी निर्माण की वृद्धि दर और (3) पूँजी उत्पादन अनुपात पर मुख्य रूप से निर्भर रहता है। इन कारकों को देखते हुए एक विशेष अवधि में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय के लगभग निकट पहुँचा जा सकता है। चूँकि इन दरों को एकदम दुरुस्त मापने के लिए कोई ख़ास मशीनरी नहीं है, इसलिए अर्थशास्त्री इन प्रश्नों पर काम करते समय कुछ अनुमान लगा लेते हैं। जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में बताया है कि योजना आयोग ने यह आकलन किया था कि जनसंख्या प्रतिवर्ष 1.25 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है, निवेश की दर राष्ट्रीय आय का पाँच प्रतिशत है और दो वर्ष के समय अंतराल में पूँजी उत्पादन अनुपात 3:1 है। लेकिन पहली पंचवर्षीय योजना की प्रगति की समीक्षा करते समय आयोग ने यह पाया कि ये आकलन सही नहीं हैं और इसलिए भविष्य की योजनाओं के लिए इसमें सुधार किया गया। यहाँ आयोग ने अपने आकलन में प्रारंभ और अंत, दोनों स्थितियों में ग़लतियाँ कीं।

जहाँ तक बात जनसंख्या में वृद्धि दर की है तो इस संबंध में दस वर्ष में होने वाली जनगणना कुछ आँकड़े प्रस्तुत करती है। 1941 की जनगणना में संभावित स्फीति और राजनीतिक कारणों से 1947 में बड़े पैमाने पर हुए पलायन का विचार 1951 की जनगणना के आँकड़े में करेंगे।

निवेश की दर का आकलन करना हमेशा से ही एक दुरूह कार्य रहा है। जब से दादाभाई नौरोजी ने भारत में पहली बार राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय का आकलन प्रस्तुत किया, तब से कई सरकारी स्तरों पर इन आँकड़ों को तय करने का प्रयास चल रहा है। लेकिन किन्हीं भी दो विभाग ने आज तक न तो इन आँकड़ों की गणना के तरीक़े

पर और न परिणाम पर कोई साझा सहमति जताई है। आँकड़ों में भारी अंतर को दिखाने के लिए कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं, डॉ. वाई.के.आर.वी. राव ने वर्ष 1925-29 के लिए 76 रुपए प्रति व्यक्ति आय का आकलन प्रस्तुत किया तो साइमन कमीशन ने 116 रुपए का। मूल्य स्तर में बदलाव के कारण भी यह अंतर आया। हमने पीछे के अध्यायों में देखा है कि किस तरह योजना पूर्व और पहली योजना के प्रारंभिक वर्षों 1948-49 के मौजूदा मूल्य स्तर पर, राष्ट्रीय आय की तुलना में अलग-अलग नतीज़े आए। 1955-56 में 1948-49 के मूल्य स्तर पर प्रति व्यक्ति आय 272 रुपए और 1952-53 के मूल्य स्तर पर 281 रुपए और वर्तमान मूल्य पर 252 रुपए आँकी गई।

पूँजी गुणांक : योजना आयोग ने आकलन किया है कि योजना अवधि के दौरान राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिशत में निवेश की दर 1950-51 में 4.9 से बढ़कर 1955-56 में 7.3 प्रतिशत हो गई। राष्ट्रीय आय, 1952-53 के मूल्य स्तर के अनुसार, 1950-51 में 9,110 करोड़ रुपए से बढ़कर 1955-56 में 10,800 करोड़ रुपए हो गई। यानी पाँच वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय आय में 1,700 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई। इस अवधि में 3,100 करोड़ रुपए के निवेश का अनुमान है। यह पूँजी उत्पादन अनुपात में 3:1 के आयोग के आकलन के विरुद्ध 1.8:1 की वृद्धि देता है। आयोग इस सकारात्मक परिणाम से गद्‌गद होकर अगले पाँच साल के लिए 2.3:1 के आकलन से सारी गणनाएँ कर दीं।

आयोग के इस आकलन को सही नहीं ठहराया जा सकता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिए पूँजी गुणांक तय करते समय सभी पहलुओं को ध्यान में नहीं रखा गया। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि सांख्यिकी और फौरी रही। लगातार दो अच्छे मानसून ने हमें दो अच्छी फ़सलें दीं। अदोहित क्षमता के उचित दोहन से भी उत्पादन में वृद्धि हुई। सांख्यिकी की बेहतर पहुँच के कारण भी आँकड़े आगे बढ़ते हुए दिखे।

इस तरह आयोग ने भविष्य के वर्ष के लिए परिणामों का आकलन प्रस्तुत किया। उसने यह अनुमान लगाया कि 6200 करोड़ रुपए के निवेश से द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत तक राष्ट्रीय आय 25 फीसदी बढ़ जाएगी। हमें ऐसा लगता है कि यह आकलन भी पंचवर्षीय योजना की तरह ही ग़लत साबित होगा। यदि पाँच वर्ष की अवधि में 6100 करोड़ रुपए का निवेश भी हो जाता है तो भी 25 फीसदी राष्ट्रीय आय में वृद्धि का आयोग का लक्ष्य पूरा नहीं होगा।

आयोग ने इस मामले में दो मूलभूत ग़लतियाँ की हैं। पहली तो यह जाने बिना कि यहाँ की परिस्थितियाँ पूरी तरह अलग हैं, आयोग ने पश्चिम के पूर्ण औद्योगिक देशों से उधार लिये गए पूँजी गुणांक आँकड़े का भारत में उपयोग किया है। वास्तव में जब

आयोग ने पूँजी और आय का अनुपात 3:1 का आकलन किया, तब अन्य प्राधिकारों का आकलन इससे काफ़ी नीचे था। हम यहाँ विभिन्न प्राधिकारों के दिए आकलन को प्रस्तुत कर रहे हैं।

तालिका
पूँजी-आय अनुपात

स्रोत	पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए	ग़ैर-कृषि क्षेत्र के लिए	कृषि क्षेत्र के लिए
कोलिन क्लार्क	3.0	—	—
संयुक्त राष्ट्र	—	5.8	—
आई.बी.आर.डी.	3.62	—	3.29

आयोग ने इन अनुपातों का आकलन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए नहीं किया है। जहाँ तक कृषिक्षेत्र की बात है तो हमारे पास काफी अदोहित क्षमता है, जिनका हम सिर्फ़ अच्छे मानसून वाले वर्ष में ही दोहन कर पाते हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान निवेश के तरीक़ों में बड़े बदलाव होने जा रहे हैं। पूँजी पोषित उद्योग हमें त्वरित परिणाम देनेवाले नहीं हैं। ऐसे उद्योगों में पूँजी गुणांक अधिक होता ही है। यदि आयोग मौजूदा ढाँचागत संबंधों से प्राप्त गुणांक में ढाँचागत बदलाव के बारे में सोचता है तो वह बदलते स्वरूप में लागू नहीं हो सकता। आयोग ने पहले निवेश के लक्ष्य निश्चित कर दिए और केवल यह दिखाने के लिए कि यह राष्ट्रीय आय में बड़ी वृद्धि प्राप्त कर लेगा, एक ऐसी पूँजी आय के अनुपात को मान लिया, जो वास्तविकता से परे था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय आय की गणना में आयोग ने पूँजी आस्तियों को सम्मिलित करने और बनने वाले माल को भी उत्पादन के बराबर मान लेने की ग़लती की।

अगला प्रश्न, जिसे लेकर हम चिंतित हैं, वह बचत दर है, और स्पष्टता से कहें तो निवेश की दर। आयोग ने बचत और निवेश के बीच कोई अंतर नहीं रखा है। ऐसा हो सकता है कि सभी बचत का, निवेश नहीं किया जाए। बचत उन लोगों के द्वारा भी की जा सकती है, जो या तो निवेश करने के प्रति इच्छुक ना हों या फिर उनके लिए निवेश का कोई अवसर ही न हो। भारत में अधिकतर ग्रामीण या कुछ हद तक शहरी भी बचत सोने या अन्य संपत्तियों के रूप में करते हैं, जो मूल्य में वृद्धि के अलावा ग़ैर-उत्पादक ही होती हैं।

आयोग का आकलन है, 6,200 करोड़ रुपए के निवेश के लक्ष्य को प्राप्त करने के

लिए 1955-56 में राष्ट्रीय आय का 7 फ़ीसदी निवेश से बढ़ाकर 1960-61 में 11 फ़ीसदी करना ज़रूरी है। यहाँ यह उद्धृत करना बेमानी नहीं होगा कि आयोग ने इस मामले में अपने पुराने आकलन को भी बदल दिया था। ऐसा लगता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रथम पंचवर्षीय योजना के मुक़ाबले अपेक्षाएँ कुछ ज़्यादा ही थीं। इन आँकड़ों के संदर्भ में कहें तो कोई भी केवल 4 फ़ीसदी अतिरिक्त निवेश से राष्ट्रीय आय में 25 फ़ीसदी की वृद्धि के प्रति लालायित हो सकता है। जब आयोग जापान, यू.एस.एस.आर. और अमरीका जैसे अन्य देशों से अपने यहाँ के निवेश की दर की तुलना करता है, तो वाकई कोई भी कह सकता है कि भारत बहुत ही थोड़ा निवेश कर रहा है। लेकिन वास्तविकता इससे अलग है।

पहली बात तो यह कि जो निवेश के आँकड़े दिए गए हैं, उनमें कई चीज़ें निकाल दी गई हैं, जो निवेश के दायरे में ही आते हैं। इस संबंध में अस्थायी रूपरेखा यह बताती है कि 'इस दस्तावेज़ के लिए जब पूरी अर्थव्यवस्था की बात की जाती है तो हम 'शुद्ध निवेश' का उपयोग करते हैं। यदि किसी ख़ास आकार और चरित्र की योजना की निवेश लागत का आकलन हमें करना हो तो इससे जुड़ी बचत, कुल आय और कुल निवेश पर विचार करना ज़्यादा तर्कसंगत है। स्पष्ट कहें तो अर्थव्यवस्था का संपूर्ण उत्पादन, उपभोग या निवेश के लिए उपलब्ध रहता है। कई मामलों में मूल्य ह्रास के लिए दी गई छूट, सिवाय मरम्मत, रख-रखाव या प्रतिस्थापन के अर्थ में काल्पनिक ही है। वास्तविक संसाधनों के अनुमानित मूल्य ह्रास की कोई आवश्यकता ही नहीं है। प्रतिस्थापन भी किसी मशीन या भवन का उसी जैसे किसी अन्य इकाई का स्थानापन्न मात्र है।"[1]

दूसरी बात यह कि निवेश में ग़ैर-मौद्रिक निवेश को शामिल नहीं किया गया, लेकिन इससे प्राप्त उत्पादन को राष्ट्रीय उत्पादन की गणना में शामिल कर लिया गया। आयोग की ऐसी आदत हो गई है कि राष्ट्रीय आय के आँकड़े को बढ़ा-चढ़ाकर और निवेश के आँकड़े को कम करके दिखाया जाए। कुल मिलकर परिणाम देखें तो कुल राष्ट्रीय उत्पादन के संदर्भ में निवेश का प्रतिशत कम दरशाया गया। आयोग ने यह दिखाने की कोशिश की कि देश कम त्याग कर बहुत ज़्यादा फल प्राप्त कर रहा है। यह लोगों को भ्रमित करने की कोशिश है।

प्रतिशत के आधार को छोड़ दें और आयोग के अनुसार निवेश की दर में वृद्धि को जायज़ मान लें, जो सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में 6,200 करोड़ रुपए के निवेश के लक्ष्य को हासिल कर लेगा। हम इसका विस्तृत विश्लेषण अगले अध्याय में करेंगे, लेकिन हम यहाँ यह कह सकते हैं कि यदि निवेश की दर बढ़ानी है तो हमें जनता के उपभोग के मानक को कम करना ही पड़ेगा या असमानता सहनी ही पड़ेगी। हो सकता

1. द सेकंड फाइव इयर प्लान, पृष्ठ 75।

है, दोनों साथ-साथ हों। एक ग़रीब देश में उपभोग के प्रति झुकाव बहुत ज़्यादा होता है और इच्छित बचत के लक्ष्य को केवल प्रशासनिक उपायों के ज़रिए नियंत्रण, नियंत्रित वितरण, वित्तीय उपाय के ज़रिए ऊँचे कर और सार्वजनिक उद्यमों के कर राजस्व समेत लाभ को वापस लेकर ही प्राप्त किया जा सकता है। सीधे नियंत्रण के उपाय के लिए ज़रूरी है कि सार्वजनिक क्षेत्र ही बड़े पैमाने पर उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन व वितरण करे, ताकि एक उचित मूल्य नीति का पालन किया जा सके और सरकार आवश्यक बचत सुनिश्चित करे। अब इसके लिए यह निर्णय लेना आवश्यक है कि लोगों पर उपभोग का नीचा मानक थोपा जाए। यदि ऐसा नहीं किया जाना है तो प्रशासनिक मशीनरी के कुशल होते हुए भी बचत नहीं की जा सकती। लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने अपने मूल उद्देश्यों के तहत लोगों का जीवन स्तर लगातार ऊपर उठाया।

बचत तब भी हो सकती है जब एक खास वर्ग, ऊँचे आय वर्ग के लोग, को उनकी आय एकत्र करने दी जाए। लेकिन इसका मतलब होगा, पहले से ही व्याप्त असमानता को और बढ़ाना, जिसे द्वितीय योजना कम करना चाहती है। ज़ाहिर है, योजनाकारों के लिए एक ही समय में इन ऊँचे उद्देश्यों और ऊँची दर की बचत को हासिल करना संभव नहीं है।

यदि अगले पाँच साल में बचत करना और 6,200 करोड़ रुपए का निवेश करना संभव भी हो, यदि आयोग द्वारा पूँजी गुणांक का अनुमान सही भी हो, तो भी राष्ट्रीय आय में वांछित 25 फ़ीसदी की वृद्धि अन्य क्षेत्रों की कमियों के कारण प्राप्त नहीं की जा सकती। लगता है, योजना आयोग भी इस तथ्य के प्रति जागरूक है, जब वह लिखता है—'यह स्पष्ट है कि 6,200 करोड़ रुपए का निवेश राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत के वृद्धि का परिणाम तभी ला सकता है, जब सभी धारणाएँ सही हों—नियोजन में समन्वय की धारणा, बरबादी पर रोक, संगठन के स्तर पर आवश्यक प्रयास और विकास के अनुरूप माहौल तैयार करने तथा आपसी सहयोग व समन्वय पैदा करनेवाला नेतृत्व।'[2] ऐसी धारणाएँ वही बना सकता है, जो वास्तविकता को पूरी तरह नकारने के प्रति दृढ हो। हिलते-डुलते नींव पर महल बनाना कोई योजना नहीं है, बल्कि आशावादी कामनाएँ हैं।

हम द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उपसंहार इस तरह कर सकते हैं—

1. ग़ैर नियोजित कारकों का संज्ञान नहीं लिया गया, जबकि पहली पंचवर्षीय योजना में उनका भी योगदान राष्ट्रीय आय बढ़ाने में रहा;
2. और इस तरह पूँजी-आय अनुपात 1.8:1 की ग़लत गणना की गई;
3. भविष्य के अनुमान के लिए राष्ट्रीय आय को बढ़ाकर इस आधार पर

2. द सेकंड फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 15।

दिखाया गया कि पूँजी गुणांक कम होगा और बचत अनुपात अधिक होगा;
4. नतीज़े निकालने में ढाँचागत परिवर्तन और मूल्य विचरण का ध्यान नहीं रखा गया। विभिन्न क्षेत्र के लिए पूँजी और बचत गुणांक की अलग-अलग गणना करनी चाहिए थी। पूरी अर्थव्यवस्था के लिए योगात्मक परिणामों को आधार बनाने से भ्रामक औसत मिलते हैं।

संतुलन का अभाव

यद्यपि द्वितीय पंचवर्षीय योजना भौतिक और वित्तीय नियोजन के अंतर्संबंधों की चर्चा करती है, फिर भी विभिन्न क्षेत्रवार कार्यक्रमों को आपस में जोड़ने वाले बुनियादी समीकरणों को स्पष्ट नहीं किया गया है। योजना ढाँचा में कुछ खास संतुलन बनाए गए और उसी के आधार पर लक्ष्य निश्चित कर दिए गए। योजना के मसौदे में लक्ष्यों को बदल दिया गया और अंतिम योजना में भी कुछ फेरबदल कर दिए गए। लेकिन उसके अनुरूप अन्य वस्तुओं के लक्ष्य या वित्तीय आवंटन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

द्वितीय योजना भौतिक नियोजन के इस पहलू पर चर्चा करते समय यह कहती है— 'एक कार्यक्रम तैयार करते समय, इसकी लागत व लाभ, वित्तीय या मौद्रिक ओट के पीछे झाँककर देखना ज़रूरी है, ताकि वास्तविक अर्थों में कार्यक्रम के प्रभाव या महत्त्व का आकलन किया जा सके, यानी कम-से-कम रणनीतिक क्षेत्रों में पूर्ति और माँग पर क्या प्रभाव हो सकता है।'[3]

वास्तविक और वित्तीय संदर्भों में यह संतुलन स्थापित न करना, पूरी योजना की ग़ैर नियोजित और ग़ैर समन्वित प्रकृति का खुलासा करते हैं और इससे कार्यपद्धति में अवरोध पैदा होते हैं। ज़ाहिर है जब तक सरकार के पास नोट छापने का अधिकार है, तत्काल वित्तीय दिक्कतों से बचा जा सकता है, लेकिन भौतिक परेशानियों से बचना आसान नहीं है। जहाँ तक प्रश्न उपभोक्ता वस्तुओं की भौतिक उपलब्धता की है तो आयोग बजटीय नीति और प्रत्यक्ष नियंत्रण से वित्तीय संतुलन का मूल्यों में समायोजन और कारक भुगतान या टुकड़े में भुगतान के ज़रिए संतुलन बनाने की कल्पना करता है। लेकिन जब वास्तविक संसाधनों की कमी होती है तो भुगतान के साधनों की विपुलता से आगे चीज़ों की और कमी होती जाती है, परिणामस्वरूप वित्तीय संसाधनों की माँग और बढ़ जाती है। इसलिए वित्तीय और भौतिक दृष्टि में संतुलन व एक-दूसरे के पूरक बनाने की ज़बरदस्त आवश्यकता है। यदि योजना ने कोई महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य तय कर रखा है, तो यह और आवश्यक हो जाता है कि किसी कारण से उपयोग में नहीं लाए जाने के कारण या अन्य दिक्कतों के कारण हमारी पूँजीगत संपत्ति की बरबादी को रोका

3. द सेकंड फाइव इयर प्लान, पृष्ठ 15।

जाए। यहाँ भी हम सिर्फ़ योगात्मक तुलना पर निर्भर नहीं रह सकते। न सिर्फ़ वृत्तवार बल्कि क्षेत्रवार आँकड़ों का विश्लेषण ज़रूरी है और योजना के क्रियान्वयन में इन संतुलनों को ध्यान में रखते हुए अधिकारों का हस्तांतरण भी किया जाना चाहिए।

हम यहाँ नीचे कुछ वस्तुओं के लक्ष्य को प्रस्तुत कर रहे हैं, जो समय-समय पर सामने आते हैं।

तालिका

योजना के उत्तरोत्तर चरणों में लक्ष्य

वस्तुओं के नाम	योजना ढाँचा	मसौदा	अंतिम
स्टील (दस लाख टन)	5.0	4.3	4.3
लौह अयस्क (दस लाख टन)	13.0	12.5	12.5
कोयला (दस लाख टन)	60.0	60.0	60.0
सीमेंट (दस लाख टन)	10.0	10.0	13.0
बिजली (मेगा किलोवाट)	6.0	6.8	6.9
भारी मशीनरी-फेब्रीकेशन (रुपए करोड़)	150.0	–	–
भारी मशीनरी-इलेक्ट्रीसिटी (रुपए करोड़)	40.0	–	–
रेल इंजन (संख्या)	400	300	400
सवारी माइल (अनुसूची)	130	115	115
माल ढुलाई (अनुसूची)	140	118	118
राष्ट्रीय राजमार्ग (हज़ार मील)	17.5	13.6	13.8
राज्य सड़कें (हज़ार मील)	3500	–	–
तकनीकी प्रशिक्षण, उच्च शिक्षा और शोध (अनुसूची)	175	–	–
खाद्यान्न (दस लाख टन)	76	75	75
सिंचाई (दस लाख एकड़)	100	88	88
नाइट्रोजन युक्त रसायन (हजार टन)	560	380	345
फास्फेट उर्वरक (हजार टन)	200	600	600
बंदरगाह संचालन क्षमता दस लाख टन)	–	33.8	32.5

तालिका
व्यय आवंटन

क्षेत्र	प्रारूप योजना ₹ करोड़	प्रारूप योजना प्रतिशत	अंतिम योजना ₹ करोड़	अंतिम योजना प्रतिशत
कृषि सिचांई और बिजली	1150	17.7	1200	16.6
ग्रामीण विकास	500	7.7	470	6.5
उद्योग एवं खनिज	1500	23.1	1660	23.1
परिवहन एवं सचार	1000	15.1	1425	19.8
निर्माण एवं भंडार	1850	28.4	1500	20.9
सामाजिक सेवाएँ	500	7.7	945	13.1
कुल	6500	100	7200	100

वस्तुओं के संतुलन की प्रकृति को ठीक से समझा जाना ज़रूरी है। उत्पादन के मामले में कुछ तकनीकी संबंधों पर लक्ष्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, राष्ट्रीय आय के वितरण से उत्पन्न माँग संबंधों का एक-दूसरे से कोई लेना-देना नहीं है।

कैसे और क्यों लक्ष्यों को बदला गया, कोई नहीं जानता। यदि औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य बढ़ाया जाता है, तो यह आवश्यक है कि उन सभी वस्तुओं के भी संशोधित लक्ष्य ऊपर कर दिए जाने चाहिए, जो उत्पादक वस्तुओं या औद्योगिक कच्चे माल के रूप में इन उद्योगों में प्रयुक्त होते हैं। तकनीकी कर्मियों का प्रशिक्षण लक्ष्य भी बढ़ाया जाना चाहिए, परिवहन और अन्य आर्थिक ख़र्चों के लक्ष्य को भी बढ़ाया जाना चाहिए और अंत में वित्तीय आवंटन भी बढ़ाया जाना चाहिए। इसके विपरीत हमने पाया कि रेलवे, सड़क परिवहन और परिवहन के अन्य साधनों के लक्ष्य कम कर दिए गए।

ये लक्ष्य मनमाने ढंग से तय किए गए और बदले गए तथा जनता के बीच इसे इस रूप में पहुँचाया गया कि ये कृषि मंत्रालय और योजना आयोग के बीच का विवाद है। योजनावधि में खाद्य उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 फ़ीसदी कर दिया गया, लेकिन जहाँ तक वित्तीय परिव्यय का संबंध है, उसे उतना ही रखा गया। न तो छोटी और बड़ी सिंचाई, और न उर्वरक व खाद के लिए अतिरिक्त वित्तीय परिव्यय का प्रावधान किया गया। फिर कैसे अतिरिक्त लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है, आज भी कोई नहीं जानता।

पंडित नेहरू ने लोकसभा में द्वितीय पंचवर्षीय योजना को पेश करते समय अपने भाषण के दौरान जो कहा, उससे ही यह अंदाज़ लग सकता है कि योजना आयोग किस तरह काम करता है और कैसे यह वृहद एवं तथाकथित वैज्ञानिक दस्तावेज़ तैयार होता है।

'मुझे सदन को कहना चाहिए', पंडित नेहरू ने कहा, 'यह रिपोर्ट तैयार होने के बाद भी इसमें बदलाव किया गया। छपने जाने से ठीक पहले जब राष्ट्रीय विकास परिषद् इस पर विचार कर रही थी तो उसने एक प्रमुख लक्ष्य, जो हमारे लिए बहुत महत्त्व का है, यानी खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य, को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने तय लक्ष्य को मानने से मना कर दिया। माना यह गया कि यह बहुत कम है। यह निर्देश दिया गया कि इसे बढ़ाओ और मामूली नहीं, दुगना, तिगुना भी नहीं। रिपोर्ट में जो आँकड़ा दिया गया था, मैं समझता हूँ कि उसमें शायद अगले पाँच वर्ष में खाद्यान्न उत्पादन में 15 फ़ीसदी का लक्ष्य रखा गया था। मुझे यह कहते हुए ख़ुशी हो रही है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इसे उपयुक्त नहीं माना और इसलिए हमें अनाज उत्पादन को 30 से 40 फीसदी बढ़ाने की कोशिश करनी होगी। 15 के मुक़ाबले 40 प्रतिशत का यह एक बड़ा बदलाव होगा।'

ज़ाहिर है, यह एक ऐसा ज़बरदस्त बदलाव था, जिसका निर्णय एक बार क़लम चलाकर और प्रकाशन में भेजे जाने से ठीक पहले किया गया। इन हालातों में सिवाय पहले की स्थिति को छिन्न-भिन्न करने के अलावा कोई संतुलन स्थापित करने की आशा कैसे की जा सकती है।

तकनीक की अनुपस्थिति

योजना के क्रियान्वयन में किसी भी ख़ास तकनीक की अनुपस्थिति द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सबसे स्पष्ट ख़ामी है। इस दृष्टिकोण से पहली योजना ज़्यादा अच्छी थी। उसमें स्पष्ट और ज़ोरदार ढंग से लिखा गया था कि 'मूल्य ढाँचे को स्थिर रखना, जो कि योजना में दर्ज लक्ष्यों के अनुरूप संसाधनों का आवंटन कराता है, आर्थिक नीति का स्थायी उद्देश्य होना चाहिए।'[4] यह अलग बात है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान सरकार कोई भी स्थिर मूल्य स्तर को बरक़रार नहीं रख पाई और न ही कोई मूल्य ढाँचा ही स्थापित कर पाई। लेकिन यह भी सत्य है कि योजना के अंतिम दो वर्षों में योजना व्यय में वृद्धि का कुछ न कुछ संबंध मूल्य से था। द्वितीय योजना सामान्य तौर पर तकनीक एवं योजना की बात तो करती है और कई रणनीतिक उपायों का सुझाव भी देती है, योजना कहती है—'सार्वजनिक विभागों द्वारा निवेश ही इस योजना का सबसे बड़ा उपकरण है।' योजना आगे कहती है—'मिश्रित अर्थव्यवस्था में किसी आर्थिक

4. फर्स्ट फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 35।

नीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका संदर्भित मूल्य एवं लाभप्रदता में आवश्यक परिवर्तन कर निजी क्षेत्र के निवेश को प्रभावित करने में है।''

योजना ढाँचा इस नीति का वर्णन करते हुए कहता है—'आपूर्ति से अधिक नई माँगों की रचना, विकास की रणनीति का एक हिस्सा है।' द्वितीय योजना आगे कहती है कि 'यदि मुद्रा स्फीति दबाव को बनने से रोकना है तो भौतिक नियंत्रणों का होना अत्यंत आवश्यक है।' इस तरह द्वितीय योजना के शस्त्रागार में कई अस्त्र-शस्त्र हैं, और किसी के लिए यह पता लगाना मुश्किल है कि योजनाकार किस अस्त्र पर ज़्यादा भरोसा करते हैं। यह एक गंभीर भूल है।

सरकार के पास कई ऐसे नियंत्रणात्मक तरीक़े हैं, जिससे वह निजी उद्यमियों को किसी ख़ास क्षेत्र में प्रवेश से रोक सकती है या फिर उन्हें एक हद से ज़्यादा बढ़ने पर नियंत्रण लगा सकती है। लेकिन सरकार के पास ऐसा कोई उपाय है, जो उत्पादन में उद्यमियों के कम होते प्रयास या उनकी रुचि को बढ़ा सके? योजना की सफलता पूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति में निहित है, केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य में नहीं, निजी क्षेत्र के लक्ष्य में भी। यदि निजी क्षेत्र द्वारा धीमा प्रयास किया जाता है और इस क्षेत्र को दिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट आती है तो यह पूरी अर्थव्यवस्था के संतुलन को बिगाड़ सकती है। यदि यह क्षेत्र गांधीजी के असहयोग आंदोलन को अपना लेता है, तो ऐसा कुछ नहीं बचता, जिससे द्वितीय योजना को सही पटरी पर लाया जाए।

जहाँ तक लघु उद्योग, खासकर हस्तकरघा और खादी की बात है तो सरकार ने उन्हें सब्सिडी देने का निर्णय किया था और उसे उचित भी ठहराया जा सकता है। लेकिन योजना के पास ऐसी कौन सी तकनीक है, जिसे अपनाकर यह देखा जा सकता है कि इस उद्योग में सब्सिडी प्रच्छन्न बेरोज़गारी या ठेकेदारी को कुछ हद तक कम कर सकती है, यह कोई नहीं जानता। संक्षेप में श्री डी.आर. गाडगिल के शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है—'बैंकिंग, व्यापार व परिवहन आदि के क्षेत्र में नियंत्रण के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीक़े ईजाद किए गए हैं, लेकिन इनसे जुड़ा कोई प्रायोगिक या सैद्धांतिक तरीक़ा ऐसा नहीं है, जिससे किसी खास उद्‌देश्य के अलावा कुछ और हासिल हुआ हो।'[5] पूरी अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण करनेवाला कोई भी उपकरण नहीं है और न विभिन्न नियंत्रणों के तरीक़ों के बीच समन्वय या उनके न्यायपूर्वक उपयोग को निर्देशित करनेवाली ऐसी कोई मशीनरी है।

---

5. डी.आर. गाडगिल : प्रोस्पेक्ट फॉर द सेकंड प्लान, इंडिया क्वार्टरली, वॉल.13, न.1

16

घटते संसाधन–घरेलू

जब द्वितीय योजना भ्रूणावस्था में ही थी, तभी प्रोफेसर शेनाय या अर्थशास्त्रियों के संकाय समेत तमाम लोगों ने इसे महत्त्वाकांक्षी बता दिया था। लेकिन योजना आयोग के साथ सरकार एक कठोर कदम के लिए तैयार थी। जो योजना को वास्तविक बनाने की सलाह दे रहे थे, उन्हें थके-हारे लोगों का नाम दे दिया गया। 15 मई, 1957 को वित्त मंत्री ने लोकसभा में अपने भाषण के दौरान ऐसे लोगों के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया—'यह उद्घोषित करना कि हमारी मौजूदा योजना बहुत महत्त्वाकांक्षी है, पहले ही हार स्वीकार करने जैसा होगा। जो काम हमने अपने हाथ में लिया है, उसका काफी महत्त्व है और उनका सफल क्रियान्वयन आगे के विकास में बड़ा योगदान होगा। इसलिए इन्हें आगे बढ़ाने के प्रयास में कोई कोताही या लापरवाही नहीं होनी चाहिए।' इसके पहले प्रधानमंत्री ने भी फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री की एक बैठक में इसी लहज़े में कहा था—'हम यह नहीं कहने जा रहे हैं, हमारे ऊपर भारी बोझ है, और इसे आगे ले जानेवाले हाथ या अंग बहुत कमज़ोर हैं। क्या कोई साहसी व्यक्ति या राष्ट्र इस तरह की बात कह सकता है? हमने यह बोझ स्वीकार कर लिया है और अब जो भी हो हम इसे उठाएँगे।"[1]

अब जबकि सरकार ने यह मान लिया है कि योजना पूर्णता में क्रियान्वित नहीं की जा सकती और योजना के मुख्य और सबसे प्रमुख तत्त्वों की बात होने लगी है तो अब हमें यही कहने की आवश्यकता है कि जीवन के कठोर सत्यों ने उन्हें वह सब मानने के लिए मज़बूर कर दिया है, जिसका आकलन वे पहले नहीं कर सके। लेकिन जब वे योजना की मुख्य बिंदुओं की बात करते हैं तो वे सिर्फ़ भौतिक परियोजनाओं और लक्ष्यों

---

1. अनुमानों और वास्तविक मूल्यों में हमेशा काफ़ी अंतर होता है। 1956-57 के लिए योजना का बजट 830 करोड़ का था। संशोधित अनुमान 761 करोड़ का था। अब वास्तविक 670 करोड़ का बताया जा रहा है, जिसमें कि 160 करोड़ की कमी है। इसी प्रकार 1957-58 का प्रस्तावित योजना परिव्यय 965 करोड़ का है। संशोधित अनुमान 845 करोड़ का है। वास्तविक इससे बहुत कम भी हो सकता है।

के संदर्भ में ही सोचते हैं। अभी तक उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया है कि योजना में जिन वित्तीय लक्ष्यों की परिकल्पना की गई है, वे हासिल नहीं हो सकते। प्रधानमंत्री ने सिर्फ़ यह आश्वासन दिया है कि योजना का वित्तीय परिव्यय 4,800 करोड़ रुपए से ज़्यादा नहीं बढ़ेगा। सरकार बस यह मानने के लिए तैयार हुई है कि आयोग के आकलन सही नहीं थे। लगभग सभी परियोजनाओं की लागत का अनुमान कम लगाया गया था और दूसरे मूल्यों को नियंत्रण में नहीं रखा गया और मूल्य वृद्धि के साथ ही अनुमानित लागत भी बढ़ती चली गई। जिसके कारण लक्ष्य को कम करना आवश्यक हो गया। लेकिन जब लोगों ने योजना को महत्त्वाकांक्षी बताया था तो उनका भी आशय यही था कि यह देश के संसाधनों से कहीं ऊपर है। आइए, यह आकलन करते हैं कि क्या पाँच वर्षों में 4,800 करोड़ रुपए के लक्ष्य को हासिल करना संभव होगा?

पहले दो वर्ष : पाँच साल में 4,800 करोड़ रुपए के प्रस्तावित परिव्यय के मुक़ाबले पहले दो वर्षों का अनुमानित परिव्यय लगभग 1,515 करोड़ रुपए 1956-57 में 670 करोड़ रुपए और 1958-59 में 845 करोड़ रुपए रखा गया। इनमें केंद्र और राज्यों से घाटे के वित्त से प्राप्त 670 करोड़ रुपए भी शामिल है। चालू वित्त वर्ष के लिए केंद्र एवं राज्यों ने योजनागत व्यय के रूप में लगभग 1,000 करोड़ रुपए के आवंटन का प्रस्ताव किया है। इस तरह मोटे तौर पर वर्ष 1956-59 के तीन वर्ष के लिए 2,500 करोड़ रुपए के योजनागत व्यय का अनुमान किया जा सकता है। यह वर्ष 1958-59 के स्थूल और 1956-57 के संशोधित तथा 1957-58 के बजटीय अनुमानों पर आधारित है।[2] सकल वास्तविक परिव्यय इस अंक से कम ही होगा। इस तरह से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अगर पाँच वर्षों में 4,800 करोड़ रुपए के सकल परिव्यय का लक्ष्य हासिल करना है तो औसत 1,250 करोड़ रुपए का आवंटन 1959-60 और 1960-61 के लिए अवश्य करना होगा। हम यह महसूस करते हैं कि अर्थव्यवस्था पर पहले से ही अधिक दबाव है, और हम इसे आगे बिखरने के मुहाने पर नहीं पहुँचाना चाहते तो हम आवश्यक संसाधन जुटाने में सफल नहीं हो सकते। हमने पीछे पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान सार्वजनिक वित्त के प्रवाह का विश्लेषण किया है। वे द्वितीय पंचवर्षीय योजना के इस आकार को कहीं से भी उचित नहीं ठहराते। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के ये दो वर्ष भी हमें उसी निष्कर्ष की ओर धकेलते हैं।

राजस्व अधिशेष

आयोग ने यह मान लिया है कि कुल 4,800 करोड़ रुपए में से 800 करोड़ रुपए केंद्र और राज्यों के राजस्व अधिशेष से आएँगे। बाद में दिसंबर 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने यह तय किया कि 400 करोड़ रुपए के अंतर को भी अतिरिक्त कराधान के

---

2. द कंटेम्परेरी, डेल्ही, अप्रैल, 1958।

ज़रिए उगाहे जानेवाले संभावित संसाधन से पाटा जाएगा। इस तरह जो 1,200 करोड़ रुपए राजस्व अधिशेष से जुटाए जाने थे, उनमें से 350 करोड़ रुपए 1955-56 के स्तर पर राजस्व से और 850 करोड़ रुपए कराधान के नए उपायों से होने वाले अतिरिक्त आय से। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पहले दो वर्ष कईं नए कर लगाए गए। वर्ष 1856-57 में केंद्र ने एक नया कर लगाया, जिससे 40 करोड़ रुपए पूरे वित्त वर्ष में जमा होने का अनुमान लगाया गया। फिर से 1957-58 में केंद्र द्वारा कराधान में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया गया। वित्त मंत्री के रूप में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपने बजट भाषण में इसे एक नए उपाय के रूप में परिभाषित किया, जिसमें शांति काल के बजट में करों में बहुत अधिक और अद्वितीय बढ़ोतरी शामिल थी। इन उपायों से वित्त वर्ष में 107 करोड़ रुपए की अतिरिक्त उगाही का अनुमान लगाया गया। इस साल भी 6.33 करोड़ की अतिरिक्त कर आय के लिए कुछ नए उपायों का फिर से प्रस्ताव किया गया है। इस तरह वर्ष दर वर्ष जनता पर भारी बोझ डाला जा रहा है। कैसे ये भार विभिन्न श्रेणी के लोगों पर डालने का प्रस्ताव है, उसे इन मदों पर लगे करों के आधार पर समझ सकते हैं।

1956-57 : वस्तु कर—(अ) केंद्रीय उत्पाद शुल्क जिन पर बढ़ाए गए, 1.सूती कपड़ा, 2. साबुन, 3. स्ट्रॉबोर्ड और सिल्क कपड़ा। नए शुल्क लगाए गए—4. ग़ैर-आव़श्यक खाद्य तेल, हाई स्पीड डीज़ल एवं वेपराइजिंग तेल।

(ब) पंजीकरण शुल्क एवं अंतरदेशीय टेलीग्राम की दरें बढ़ाई गईं।

यह अनुमान लगाया गया कि उत्पाद शुल्क में परिवर्तन से अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा और डाक व तार विभाग की दरें बढ़ाने से 86 लाख रुपए अतिरिक्त प्राप्त होंगे।

(स) आय कर की दरों में परिवर्तन किया गया और सुपर कर लागू किया गया, इसके ज़रिए राज्यों के 1.80 करोड़ के अंश समेत 3.20 करोड़ के अतिरिक्त राजस्व का अनुमान लगाया गया। इस वर्ष फरवरी में पेश हुए बजट के अलावा सितंबर 1956 और नवंबर 1956 में संसद् में नए कर प्रस्ताव पेश किए गए। पहले प्रस्ताव में कपड़ों पर उत्पाद शुल्क बढ़ाए गए। इस बढ़ोतरी के ज़रिए 17.5 करोड़ की अतिरिक्त आय का अनुमान लगाया गया। नवंबर बजट में पूँजीगत लाभकर, बढ़ा हुआ सुपर कर, ऊँचे आयात व उत्पाद शुल्क, बढ़े हुए स्टांप शुल्क कंपनियों के मूल्यह्रास व अन्य रिज़र्व पर नियंत्रण के प्रावधान शामिल हैं। इन प्रस्तावों से पूरे वर्ष में 16 करोड़ रुपए जमा होने का अनुमान था। यानी वास्तव में देखें तो एक साल में तीन बजट और उनसे कुल (रुपए 35.0+17.5+16.0) = 68.5 करोड़ रुपए की अतिरिक्त आय का अनुमान रखा गया। इससे स्पष्ट होता है कि ज़्यादा भार वस्तु कर पर डाला गया।

1957-58 : निम्नलिखित कर एवं उनसे प्राप्त होने वाली अनुमानित आय, जिन्हें 1957-58 के बजट में शामिल किया गया है, उन्हें इस तालिका में दिखाया गया है।

तालिका

(करोड़ रुपए में)

अप्रत्यक्ष कर				80.80
(ए)	आयात शुल्क		6.00	
(बी)	उत्पाद शुल्क		60.80	
1	मोटर स्प्रिट	6.65		
2	डीजल ऑयल (शोधित)	1.90		
3	डीजल ऑयल (अनिर्दिष्ट)	0.35		
4	केरोसिन	0.20		
5	सीमेंट	6.70		
6	इस्पात इंगट	5.70		
7	चीनी	18.55		
8	खाद्य तेल	3.15		
9	चाय	2.45		
10	कॉफी	0.80		
11	अनिर्मित तंबाकू	6.15		
12	दियासलाई	6.20		
13	काग़ज़	2.00		
(सी)	रेलवे यात्री भाड़े पर कर	14.00		
प्रत्यक्ष कर				25.00
(ए)	आय कर व निगम कर		10.00	
(बी)	संपत्ति कर		15.00	
	डाक मूल्य दर			0.85
		कुल योग		106.65

1958-59 : वर्ष 1958-59 में निम्नलिखित नए एवं अतिरिक्त कर प्रस्ताव लाए गए।

तालिका

अप्रत्यक्ष कर			2.83
उत्पाद शुल्क		2.83	
सीमेंट	2.24		

कपड़े	0.83		
वनस्पति उत्पाद (-) 0.24			
प्रत्यक्ष कर			3.50
उपहार कर		3.00	
संपत्ति कर		0.50	
		कुल	6.33

कर तो लगाए जा रहे हैं, लेकिन सामाजिक न्याय के सिद्धांत पर या लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने के द्वितीय योजना के उद्देश्यों के बारे में कोई विचार नहीं किया जा रहा है। इस संबंध में 1957-58 में कर प्रस्तावों के विवरण वाली वित्त मंत्रालय द्वारा जारी एक पुस्तिका कहती है, 'एक ग़रीब देश में जहाँ लगभग हर व्यक्ति ग़रीब है, एक बिंदु तक विकास के लिए बलिदान का व्यापक आधार होना चाहिए। इसलिए एक विकासवादी बजट से यह उम्मीद करना आदर्शवादी स्थिति है कि यह सभी ग़रीबों को बख़्श देगा।'

वर्ष 1955-56 में केंद्र सरकार का कर राजस्व 496.97 करोड़ रुपए था। यह 1956-57 में 489.75 करोड़ पर आ गया। वर्ष 1957-58 के लिए संशोधित अनुमान 553.85 करोड़ रुपए और वर्ष 1958-59 के बजट अनुमान में यह 562.51 करोड़ रुपए था। इस तरह तीन साल की अवधि में 375.20 करोड़ अतिरिक्त आय का अनुमान किया गया। यह निश्चित रूप से पाँच वर्ष की अवधि में कुल 225 करोड़ रुपए के योजना अनुमान से अधिक है।

अब राज्यों की ओर आते हैं। वर्ष 1955-56 में उनका कुल कर राजस्व 349.53 करोड़ रुपए था। यह वर्ष 1957-58 के बजट में बढ़कर 401.42 करोड़ रुपए हो गया। द्वितीय वित्त आयोग के सुझाव के अनुसार विभाज्य करों के अतिरिक्त हिस्से से यह और भी ज़्यादा हो सकता है। दो वर्षों में बढ़ी हुई आय 69 करोड़ रुपए तक हो सकती है, यानी औसत 34 करोड़ रुपए। वास्तव में यह योजना में दर्ज औसत 45 करोड़ रुपए से कम है। केंद्र का औसत लगभग 125 करोड़ रुपए प्रति वर्ष आता है। राज्यों और केंद्र को मिला दें तो यह 1955-56 के स्तर पर 170 करोड़ रुपए बढ़ जाता है। इस दर के आधार पर यह उम्मीद की जा सकती है कि योजना की पूरी अवधि में वर्तमान कराधान से 1955-56 के स्तर पर कर राजस्व 850 करोड़ रुपए होना चाहिए। यह तुलना 850 करोड़ के योजना अनुमान के पूरी तरह अनुकूल है। जहाँ तक लोगों की बात है, तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने आयोग की अपेक्षा के अनुरूप योजना में पहले ही योगदान कर दिया है। लेकिन

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ह्रासमान प्रतिफल के नियम महत्त्वपूर्ण कर वसूली में लागू होने लगे हैं। यह संकेत है कि अब भार सहन योग्य नहीं है।

लेकिन जब हम आय और व्यय के वास्तविक खाते को देखते हैं तो हम पाते हैं कि कर बढ़ाने से जो आय में वृद्धि होती है, उसका अधिकांश हिस्सा प्रशासनिक और ग़ैर योजना मदों में ख़र्च कर दिए जाते हैं। इस तरह लगातार ख़र्चे में वृद्धि के कारण राजस्व बजट घाटे का ही हो जाता है। केंद्र सरकार का राजस्व बजट 1947-48 तक बचत का बजट था, जो अगले वर्ष घाटे के बजट के रूप में पेश किया गया। यहाँ तक कि नए कर से प्राप्त आय को जमा खाते में लिखने के बावजूद राजस्व खाते में 27.02 करोड़ रुपए का अनुमानित शुद्ध घाटा रहा। सबसे अधिक उल्लेखनीय वृद्धि रक्षा ख़र्चे में हुई।

लेकिन कोई भी ऐसी योजना, जो देश की रक्षा ज़रूरतों पर विचार नहीं करती और उसके लिए उपयुक्त प्रावधान नहीं करती तो उसे हम राष्ट्रीय योजना का नाम नहीं दे सकते। कोई भी सरकार रक्षा को नज़रंदाज़ नहीं कर सकती। रक्षा बजट में बढ़ोतरी के बाद भी वर्ष 1958-59 में भारतीय रक्षा सेवा को केंद्र और राज्यों के कुल ख़र्च का 12 फ़ीसदी से ज़्यादा नहीं मिला। यानी कुल 1,267 लाख वर्ग मील क्षेत्रफल और 3,525 मील तटीय सीमा की रक्षा के लिए कुल 1,800 से 1,900 करोड़ रुपए। इसकी तुलना में पाकिस्तान रक्षा बजट को 100 करोड़ रुपए मिले, यानी रेलवे को मिलाकर कुल राजस्व बजट का 70 फ़ीसदी। लेकिन रक्षा से कहीं अधिक ग़ैर-योजना गत मदों में और नागरिक प्रशासन के अनावश्यक ख़र्चे में वृद्धि हुई। वर्ष 1955-56 में इस मद में कुल ख़र्चा 94.08 करोड़ रुपए था, जबकि 1958-59 में अनुमानित बजट 200.44 करोड़ रुपए का था। वास्तव में देखा जाए तो यह कहीं उससे भी अधिक बैठता है। वर्ष 1955-56 में रक्षा ख़र्च 62 प्रतिशत बढ़ा, जबकि इसी अवधि में नागरिक प्रशासन का ख़र्च 113 फ़ीसदी बढ़ाया गया। यदि हम इन दो मदों के ख़र्चे की तुलना 1948-49 के वर्षों से करें तो हम पाएँगे कि नागरिक प्रशासन के ख़र्चे में असाधारण बढ़ोतरी हुई है। नीचे तालिका यह दरशाती है कि किस तरह योजना के बाहर के ख़र्चे पिछले दशक में बेतहाशा बढ़े हैं।

तालिका

केंद्र सरकार के अधीन कुछ महत्त्वपूर्ण मदों पर हुए ख़र्च

वर्ष	नागरिक प्रशासन	पुलिस	विदेश मामले	रक्षा
1948-49	35.50	1.69	2.86	146.06
1949-50	39.30	2.10	3.07	148.86

1950-51	48.80	3.04	3.65	164.13
1951-52	53.67	3.80	3.98	170.96
1952-53	51.71	2.91	4.19	179.52
1953-54	64.17	3.16	4.56	186.30
1954-55	75.11	4.17	5.44	186.66
1955-56	94.08	4.17	5.99	172.28
1956-57	122.29	6.58	6.91	192.15
1957-58(RE)	194.71	7.89	7.17	266.05
1958-59(BE)	200.44	8.27	7.50	278.14

सच तो यह है कि सरकार कोष जुटाने के लिए लगातार नए कर लगाती जा रही थी। उसने ख़र्चे पर कभी नहीं सोचा। केंद्रीय मंत्रिमंडल से श्री जॉन मथाई के जाने के बाद मितव्ययिता और बचत के बजाय सरकार द्वारा ज़्यादा भव्य ख़र्चे पर ज़ोर दिया गया, शायद वे उस पश्चिमी सिद्धांत का अनुसरण कर रहे थे, जिसके अनुसार सार्वजनिक ख़र्च बढ़ाकर बेरोज़गारी से लड़ा जा सकता है। वे यह भूल गए कि भारत में बेरोज़गारी की प्रकृति पश्चिमी देशों की बेरोज़गारी से अलग है। यदि हम वर्ष 1957-58 के संशोधित आँकड़ों को देखें और उसी वर्ष के बजट अनुमान से उसकी तुलना करें तो हम पाएँगे कि किस तरह से ख़र्चे अनुमानों से परे और बेलगाम तरीक़े से बढ़ रहे हैं। बजट में 672.29 करोड़ रुपए के ख़र्च का अनुमान लगाया गया था, लेकिन संशोधित आँकड़ा 719.58 करोड़ रुपए का, यानी 48 करोड़ रुपए अधिक है। वर्ष 1958-59 के लिए बजटीय ख़र्च 796.01 करोड़ रुपए है, जो संशोधित आँकड़े से 77.55 करोड़ रुपए की और वर्ष 1957-58 के बजट आँकड़े से 124.28 करोड़ रुपए की वृद्धि दिखा रहा है।

राज्यों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। सरकार का वर्ष 1957-58 का आर्थिक सर्वेक्षण यह कहता है—"राज्यों के कर उगाही के प्रयास योजना के लिए तय किए गए अनुमानों से कहीं नीचे हैं। हालाँकि प्रतिबद्ध व्यय का आरंभिक योजना अनुमान काफी बढ़ गया है, फिर भी कुछ राज्य वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के अनुसार केंद्र के संसाधन का एक बड़ा हिस्सा हस्तांतरित कर दिए जाने के बाद भी अपनी वार्षिक योजना के लिए उपयुक्त संसाधन जुटाने में सफल नहीं हो सके हैं।"[3]

घाटे की वित्त व्यवस्था

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि लोगों पर असह्य कर बोझ डालने के

3. इकोनॉमिक सर्वे 1957-58, पृष्ठ 20, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया।

बावजूद सरकारें योजना के लिए आवश्यक संसाधन देने में विफल रहीं। वे जितना अधिक लोगों से लेते हैं, उतना ही अधिक अपव्यय कर देते हैं और अंततः योजना के वित्त पोषण के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था पर निर्भर हो जाते हैं। वे वित्त व्यवस्था से बचने के नाम पर नए कर लगाते हैं, लेकिन उनकी आवश्यकता इतनी अधिक लगती है कि कोई भी राशि उनकी अपव्ययता को पूरा करने में मददगार नहीं हो सकती। पिछले वर्ष जब वित्त मंत्री ने क्रांतिकारी कर प्रस्ताव प्रस्तुत किए और वस्तु व अन्य करों में कई गुणा बढ़ोतरी की, तो उन्होंने एक ही मज़बूरी बताई थी कि हमें अर्थव्यवस्था को घाटे की वित्त व्यवस्था से बचाना है। 15 मई, 1857 को लोकसभा में दिए अपने भाषण में वित्त मंत्री ने कहा, 'अर्थव्यवस्था में जो तनाव और दबाव बढ़ गया है, वह बेलगाम घाटे की वित्त व्यवस्था की चेतावनी है। मैं कोई घाटे की वित्त व्यवस्था के ख़िलाफ़ नहीं हूँ। मैं यह मानता हूँ कि यह विकास को बढ़ावा देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। लेकिन यह एक ऐसी दवा है, जिसकी कम ख़ुराक लेनी चाहिए। यह कोई भोजन नहीं है कि इससे व्यवस्था चल सकती है। कुल मिलाकर कहें तो मुझे शंका है कि हम योजना अवधि में घाटे की वित्त व्यवस्था उस स्तर पर रख सकेंगे जितना योजना में संकेत किया गया है और इसी कारण हमें करों, ऋणों और लघु बचतों के ज़रिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने हैं।'

कर बढ़ा दिए गए, लेकिन अभी भी घाटे की वित्त व्यवस्था का भोजन की तरह उपयोग किया जा रहा है। वर्ष 1957-58 का पूँजी व राजस्व बजट दिखाता है कि कुल 284 करोड़ रुपए के घाटे हुए, जिसमें से 275 करोड़ रुपए सरकारी हुंडी के ज़रिए और बाकी नक़दी शेष से निकालकर पूरे किए जाने थे। संशोधित अनुमान में कुल 380 करोड़ रुपए के घाटे यानी बजट अनुमान से 96 करोड़ रुपए अधिक दिखाए गए, जिसकी पूर्ति पूरी तरह से सरकारी हुंडियों में विस्तार से ही होनी थी।[4]

इस नए या फिर अंतरिम कह लीजिए, निर्णय को लेने में वित्त मंत्री कितने बुद्धिमान हो सकते हैं, इसका आकलन हम वित्त मंत्रालय द्वारा 1957-58 के बजट में कर प्रस्तावों का विश्लेषण करनेवाले प्रकाशन के इस उदाहरण से समझ सकते हैं—

''अभी प्रस्तावित नए करों के बावजूद चालू वित्त वर्ष के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था लगभग 275 करोड़ रुपए की होगी। कुछ वस्तुओं को पाने के लिए बहुत पैसे का व्यय अंततः आवश्यक रूप से हमें मुद्रास्फीति के फिसलन वाले रास्ते पर पहुँचा देगा, जहाँ चारों ओर घुमावदार मूल्यवृद्धि होगी। 275 करोड़ रुपए का घाटा—यानी एक साल में इतने रुपए की छपाई—बहुत बड़ा है। गंभीर रूप से यह सलाह नहीं दी जा सकती कि हम खुली आँखों से बिना गंभीर मुद्रास्फीति का ज़ोखिम उठाए इतने बड़े घाटे के लिए तैयार हो सकते हैं। 1,500 करोड़ रुपए से भी कम के कुल योजना परिव्यय में

4. वास्तविक घाटा 403 करोड़ रहने का अनुमान है, आरबीआइ वीकली बुलेटिन, 28-3-58।

600 करोड़ रुपए तक की घाटे की वित्त व्यवस्था है। हम कैसे यह आशा कर सकते हैं कि इन परिस्थितियों में मुद्रास्फीतिक दबाव नहीं पनपेगा?

सार्वजनिक उधारियाँ

लघु बचत : जब हम योजना आयोग द्वारा कोष जुटाने के अन्य संसाधनों की ओर आते हैं तो हम पाते हैं कि आयोग ने वास्तविकता से अधिक आकलन किया है। आयोग ने लघु बचत के ज़रिए प्रति वर्ष 100 करोड़ रुपए जुटाने की योजना बनाई है। वर्ष 1956-57 में 59 करोड़ रुपए का संग्रह हुआ, जबकि चालू वर्ष के दस महीने में कुल 37.6 करोड़ रुपए ही आए। वर्ष 1958-59 के बजट में इस मद से 100 करोड़ रुपए जुटाने को कहा गया है, लेकिन पिछले दो वर्ष की प्रवृत्तियाँ और महँगे जीवन स्तर को देखकर नहीं लगता कि इसे हासिल किया जा सकता है। कुल मिलाकर देखें कि यदि पाँच वर्ष में लघु बचत से 500 करोड़ रुपए जुटाए जाने हैं तो पहले दो साल में हुई कमी की भरपाई अगले तीन साल में करनी पड़ेगी। इस मामले में हम निराशा ही महसूस करते हैं।

ऋण : दो वर्ष में सार्वजनिक ऋण से कुल 213 करोड़ रुपए प्राप्त हुए, जो कि प्रति वर्ष 140 करोड़ रुपए के योजना अनुमान से कम है। विदेशी सहायता भी हमें उम्मीद से कम ही प्राप्त हुई है। वर्ष 1956-57 के बजट ने विदेशी स्रोतों से 135 करोड़ रुपए जुटाने का श्रेय लिया, लेकिन संशोधित आँकड़ा 61.1 करोड़ रुपए तक नीचे आ गया। वास्तविक आँकड़ा 31.50 करोड़ के आस-पास रहा। इसी तरह वर्ष 1957-58 का संशोधित आकड़ा 109.93 करोड़ रुपए के अनुमानित बजट से कम होकर 78.8 करोड़ रुपए हो गया। इस तरह दो साल में आनेवाली विदेशी सहायता लगभग 105 करोड़ रुपए रही, जो कि योजना अनुमान से काफी कम है। कुछ अधिकार-पत्रों का उपयोग नहीं हो सका, क्योंकि उसके लिए घरेलू स्तर पर आवश्यक प्राथमिक काम पूरे नहीं किए गए थे।

यदि योजना की संसाधन संबंधी संकल्पना के अनुसार इन विभिन्न मदों की प्राप्ति की तुलना करें तो कहा जा सकता है कि इन दो वर्षों का प्रदर्शन अपेक्षा से काफ़ी कम रहा है।

17

गिरता संसाधन-विदेशी

विदेशी मुद्रा का संकट

योजना आयोग की सबसे बड़ी विफलता विदेशी मुद्रा बजट को लेकर रही, जिसने पूरी योजना के अवास्तविक आधार को सरकार एवं लोगों के सामने ला खड़ा कर दिया। हालाँकि भुगतान संतुलन संकट का दबाव अप्रैल 1956 से ही शुरू हो गया, जब द्वितीय योजना की शुरुआत ही हुई थी, लेकिन सरकार को इस समस्या की गंभीरता को समझने में तीन साल लग गए और फिर असंतुलन को ठीक करने के कुछ प्रयास किए गए। 1956-57 में चालू खाते का घाटा बढ़कर 293 करोड़ हो गया और चालू वर्ष के दो तिमाही का घाटा 298 करोड़ रुपए तक पहुँच गया। नीचे दी गई तालिका इन दो अवधियों में विदेशी मुद्रा की स्थिति दरशाती है—

तालिका

भारत का चालू खाते में भुगतान संतुलन

(करोड़ रुपए में)

	1956-57	1957-58 (अप्रैल से सितंबर)
1. निर्यात	637.0	267.1
2. आयात	1076.5	622.2
3. व्यापार घाटा (1-2)	439.5	355.1
4. अदृश्य (शुद्ध)	147.0	57.4
5. चालू खाते का घाटा (4-3)	292.5	297.7

इन दो समयावधि में घाटे की पूर्ति इस प्रकार की गई—

तालिका

(करोड़ रुपए में)

	1956-57	1957-58 (अप्रैल से सितंबर)
1. विभागीय ऋण (शुद्ध)	56.4	27.9
2. आई.एम.एफ. से निकासी	60.7	34.5
3. अन्य पूँजी हस्तांतरण	-39.0	45.5
4. विदेशी मुद्रा भंडार का उपयोग	219.0	173.8
5. भूल-चूक लेनी-देनी	-4.6	16.0
कुल	292.5	297.5

इस तरह हमने पौंड की भारी निकासी की। पाँच वर्ष की अवधि में 200 करोड़ रुपए की निकासी के योजना अनुमान के विपरीत द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष में ही हमें 219 करोड़ रुपए निकालने पड़े। आयोग ने 1956-57 में 210 करोड़ रुपए का व्यापार घाटा और 148 करोड़ रुपए के चालू खाते के घाटे का आकलन किया था। असल में दोनों खातों में इससे कहीं ज़्यादा घाटा हुआ है। इसी तरह 1957-58 में भी आयोग का गणित पूरी तरह गड़बड़ा गया।

प्रतिकूल भुगतान संतुलन अवस्थिति के कारण भारतीय रिज़र्व बैंक की पौंड परिसंपत्ति तेज़ी से कम हुई। जिसके कारण सरकार को छह महीने में दो बार रिज़र्व बैंक अधिनियम में संशोधन करना पड़ा। पहला संशोधन अक्तूबर 1956 में किया गया। छापे गए नोटों का कम-से-कम 40 फ़ीसदी सोने एवं विदेशी मुद्रा में रखने की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया। 400 करोड़ रुपए का न्यूनतम विदेशी मुद्रा भंडार रखना सरकार ने तय किया, ताकि संकट के समय में विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। लेकिन यह संकट इतनी जल्दी आ गया कि इस न्यूनतम को भी एक साल के अंदर 300 करोड़ रुपए और उसके बाद 200 करोड़ रुपए कर दिया गया। 62.50 रुपए प्रति तौले के हिसाब से 115 करोड़ रुपए का सोना रिज़र्व रखा गया। संशोधित क़ानून में न्यूनतम 100 करोड़ रुपए विदेशी मुद्रा में रखने का प्रावधान भी सरकार की मंज़ूरी से स्थागित कर दिया गया। हमें विदेशी मुद्रा भंडार को एक स्तर तक बनाए रखने से कोई मतलब नहीं है, लेकिन जब भारत अपनी विकास योजनाओं के लिए ही नहीं, बल्कि खाद्यान्न के लिए आयात पर निर्भर है, तो विदेशी मुद्रा के महत्त्व को कम करके नहीं देखा जा सकता। चूँकि हमारा निर्यात बाज़ार की चाल के प्रति

अतिसंवेदनशील है और आयात को कम नहीं कर सकते तो हम विश्वास के साथ अनुकूल भुगतान संतुलन की भविष्यवाणी नहीं कर सकते। यह सचमुच हमारे लिए दुर्भाग्य है कि सरकार में दूरदर्शिता का अभाव और अपव्यय का उन्माद होने के कारण बड़ी कठिनाई से कमाई गई विदेशी मुद्रा को यों ही ज़ाया कर दिया गया।

विदेशी मुद्रा संकट के कारण—विदेशी मुद्रा भंडार का संकट सरकार के नियंत्रण से बाहर परिस्थितियों के कारण नहीं था। अधिकारियों द्वारा स्वेज़ नहर क्षेत्र का विकास और उसके साथ ही ईस्ट-वेस्ट यातायात में परिवर्तन को मौटे तौर पर विदेशी मुद्रा के संकट के लिए ज़िम्मेदार बताया गया। अगर ऐसा है तो भी पं. नेहरू की सरकार इस क्षेत्र में जो कुछ भी हुआ, उससे अपना पिंड नहीं छुड़ा सकती। पं. नेहरू मिस्र के कर्नल नासिर के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए हुए थे। वह हर परिस्थिति में उनके साथ तन-मन से खड़े होते थे। सभी देशों में भारत पहला देश था, जिसने मिस्र और सीरिया के एकीकरण का स्वागत किया। क्या यह विचित्र नहीं लगता कि पं. नेहरू भारत और पाकिस्तान के एकीकरण को छोड़कर बाक़ी सभी एकीकरण के प्रयास का समर्थन करते हैं। यह अपेक्षा थी कि कर्नल नासिर भारत के हितों को बुरी तरह प्रभावित करनेवाली योजना को लागू करने से पहले पं. नेहरू को विश्वास में लेते। योजनाकार अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों में घटने वाली किसी भी अप्रिय घटना की क्षतिपूर्ति के लिए कोई प्रावधान न रखने का ख़तरा मोल नहीं ले सकते। स्वेज़ नहर का संकट थोड़े समय रहा और यह कोई बहुत बड़ा नहीं था। अगर हमारी योजनाएँ इन छोटी घटनाओं से विचलित होने लगीं तो हम यह कह सकते कि आयोग ने नई दिल्ली के वातानुकूलित कमरे के बाहर भी कोई दुनिया है, यह सोचा नहीं। हम छुई-मुई वाली योजनाओं के साथ आगे नहीं बढ़ सकते।

हमारा मानना है कि जिन कारकों ने यह संकट पैदा किया, वे योजना में ही समाहित थे। यदि स्वेज़ संकट ने कुछ किया तो बस इतना कि इससे कुछ महीने का समय आगे बढ़ गया। माल भाड़े के अलावा इससे भुगतान संतुलन में कोई और बड़ा परिवर्तन नहीं होने वाला था। इस संकट के कारण आनेवाले शुल्कों में अंतर को दरशाने वाला कोई भी विश्वसनीय आँकड़ा नहीं है। लेकिन हम 15 से 20 करोड़ रुपए से ज़्यादा की वृद्धि नहीं मान सकते।[1] स्वेज़ नहर यातायात के लिए 1 नवंबर, 1956 से 28 मार्च, 1957 तक बंद रही। लेकिन नवंबर 1956 तक भारत की विदेशी संपत्ति द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सात महीने की अवधि में ही 177.40 करोड़ रुपए घट गई। नीचे दी गई तालिका इन खास तिथियों में पौंड संतुलन को दरशाती है।

1. रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया, मंथली बुलेटिन, जुलाई 1957।

तालिका
भारत के स्टर्लिंग शेष

(करोड़ रुपए में)

वर्ष	महीने एवं तिथि	संपत्ति
1956	मार्च 30	746.13
	अप्रैल 27	725.65
	जून 1	705.34
	जून 29	681.52
	अगस्त 3	653.46
	अगस्त 31	631.61
	सितंबर 28	615.06
	नवंबर 2	568.73
	नवंबर 30	536.53
	दिसंबर 28	529.91
1957	फरवरी 11	515.40
	मार्च 29	526.88
	अप्रैल 26	504.91
	मई 31	455.07
	जून 28	453.31
	अगस्त 2	401.84
	अगस्त 30	379.86
	सितंबर 27	352.51
	अक्तूबर 25	327.10
	नवंबर 29	309.49
	दिसंबर 27	297.65

आई.एम.एफ. से 95.5 करोड़ रुपए की ख़रीद समेत
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक

इस संकट का असली कारण आयात आधारित बड़ी योजनाएँ थीं। योजना में भारी व आधारभूत उद्योग, रेलवे व अन्य पूँजी प्रधान योजनाओं का प्रस्ताव था और संयंत्र व मशीनरी का आयात होना था। निजी क्षेत्र भी विकास के प्रति ज़्यादा उत्साहित था। लेकिन सरकार के तेज़ नियंत्रण के बावजूद दोनों क्षेत्रों के बीच समन्वय का पूरा अभाव

था। कई बिचौलिया इकाइयाँ भी थीं, जो यदा-कदा मिलती थीं और मंत्रियों व कुछ अन्य लोगों के भाषण सुनने के बाद काम समाप्त कर लेती थीं। दोनों ही क्षेत्रों के आयातों को एक ढेर में रख दिया जाता था। आयात का कोई चरणबद्ध कार्यक्रम नहीं था। अग़र ऐसा होता और कुछ प्राथमिकताएँ तय हो जातीं तो उपलब्ध संसाधनों का उपयोग नियोजित तरीक़े से अधिक उपयोगी हो सकता था।

संकट का दूसरा कारण आयोग द्वारा लगभग सभी मामलों में संयंत्र और मशीनरी की लागत का कम आकलन करना था। केंद्रीय कार्मिक, खनन व ऊर्जा मंत्री ने लोकसभा में पूछे गए एक प्रश्न के जवाब में बताया कि तीन इस्पात संयंत्रों की लागत इस प्रकार बढ़ गई :

तालिका

करोड़ रुपए में

	आकलन	
संयंत्र	वास्तविक	संशोधित
राऊरकेला	128	170
दुर्गापुर	115	138
भिलाई	110	131

इन सयंत्रों में विदेशी मुद्रा का भाग भी बढ़ गया। संशोधित आँकड़ा इस प्रकार है—

तालिका

करोड़ रुपए में

	विदेशी मुद्रा का अनुमान	
संयंत्र	वास्तविक	संशोधित
राऊरकेला	72	103
दुर्गापुर	67	77
भिलाई	54	78

ये अंतर निम्नलिखित कारकों की वजह से आए :

1. परियोजना रिपोर्ट में अतिरिक्त चीज़ें जुड़ने और सुधार किए जाने के कारण।
2. वे स्टील कार्य के ढाँचे, रिफ्रैक्टरीज़ (उच्चताप सहने वाला ढाँचा) एवं स्टोर की विदेशों में ख़रीद, जिनका भारत में ही मिलने के बारे में सोचा गया था। इन चीज़ों के विदेशों में दाम सामान्य तौर पर भारत से अधिक ही होते हैं।

3. सलाहकार फर्मों द्वारा कम क़ीमत का अनुमान करने तथा यूरोप में ठेके देने के पहले की आकलित लागत और ठेके के अनुसार काम होने के बीच मूल्य एवं मज़दूरी बढ़ने के कारण। खासकर ऐसा राउरकेला के साथ हुआ।

मुख्य तौर पर आयात बढ़ने और निर्यात कम होने के कारण प्रतिकूल भुगतान संतुलन हुआ। आयोग यह आकलन नहीं कर सका कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की माँग ज़्यादा होती है, जो कि अन्य परिस्थितियों में निर्यात हो सकता है। जब विकास की योजनाएँ बड़े सार्वजनिक परिव्यय पर आधारित होती हैं, तो ऐसे में या तो मुद्रास्फीति के दबाव से बचने या कम-से-कम उस पर अंकुश रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए उपभोक्ता वस्तुएँ उचित मात्रा में रखने की आवश्यकता होती है। इसका आशय यह है कि निर्यात के उद्देश्य वाली वस्तुओं का अधिशेष कम हो रहा है। घरेलू व विदेशी बाज़ार में मूल्यों में अंतर भी निर्यात अधिशेष को प्रभावित करता है, जब मुद्रास्फीति के दबाव के कारण घरेलू क़ीमत बढ़ती है। इसलिए यह आवश्यक था कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना शुरू करने से पहले एक समन्वित विदेश व्यापार नीति तैयार करते। निर्यात संवर्धन समिति विभिन्न कार्यक्रमों के बीच तालमेल पर ज़ोर देते हुए कहती है—'योजना बनाते समय सरकार यदि विदेशी व्यापार कार्यक्रमों के बीच तालमेल बिठाने में विफल होती है, जो कि उनकी सामान्य आर्थिक योजना है, तो घरेलू और विदेशी बाज़ार मूल्य स्तर में, भुगतान संतुलन में, पूँजी की आवक में और वस्तुओं के उत्प्रवाह में अंतर उत्पन्न होना ही है। घोषित राष्ट्रीय आर्थिक उद्देश्यों व स्वीकृत विदेशी व्यापार नीति के बीच एक सामंजस्य होना ही चाहिए। अनुमन्य आयात व नियोजित निर्यात में क्या शामिल किया जाए, इस पर एक स्पष्ट राय तो बननी ही चाहिए। विदेशी वित्त स्वीकार्य शर्तों पर मिले या कठिन दिनों के लिए उपयुक्त विदेशी मुद्रा भंडार बना रहे, इस प्रश्न के अलावा आयात व निर्यात के मूल्य में संतुलन, कम से दीर्घावधि के लिए, बनाने पर ध्यान अवश्य दिया जाना चाहिए।'

आयोग ने इस मामले में कोई योजना नहीं बनाई। सामान्य तौर पर सरकार समय से पहले सोचती या उस पर कार्रवाई करती, परंतु उसने तब समिति की स्थापना की जब संकट गहरा गया। सरकार ने निर्यात संवर्धन समिति का गठन किया और वह काम किया, जिसे आयोग को ख़ुद ही पहले करना चाहिए था। समिति इसके पहले कि अपनी सिफ़ारिशें देती कि परिस्थितियाँ और बिगड़ गईं। बावजूद इसके सरकार ने समिति की सिफ़ारिशों के आलोक में नीतियाँ अभी तक नहीं बनाई हैं।

देश में खाद्यान्न उत्पादन में कमी के कारण विदेशी मुद्रा भंडार के साथ-साथ आंतरिक अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई। आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओं को द्वितीय योजना में पूरी तरह उलट दिया था और सारा ज़ोर भारी

उद्योगों और परिवहन पर डाल दिया गया था। ऐसा करते समय आयोग संभावित परिस्थितियों को नहीं देख सका। पहली पंचवर्षीय योजना देश में खाद्यान्न की भारी कमी के आलोक में बनाई गई थी, लेकिन जब प्रकृति की दया से देश खाद्यान्न संकट से निकल गया तो दूसरी योजना की रचना प्रचुरता को मानकर दी गई। योजना का परिप्रेक्ष्य व कार्यक्रम तैयार करते समय इसका दृष्टिकोण लंबी अवधि के लिए देश की ज़रूरतों को ध्यान में रखना होना चाहिए। यदि विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति में कोई सुधार हुआ तो इस कारण कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्न का आयात कुल 30 लाख टन ही था, जबकि योजना में 90 लाख टन का प्रावधान था।

लेकिन जैसे ही द्वितीय योजना शुरू हुई, खाद्यान्न उत्पादन कम हो गया और उपभोग के इस महत्त्वपूर्ण वस्तु का आयात बढ़ाने की आवश्यकता पड़ गई। वर्ष 1956 में 14.26 लाख टन अनाज का आयात किया गया और 1957 के लिए 37.16 लाख टन आयात का अनुमान लगाया गया। खाद्यान्न के मामले में भी सरकार ने एक समिति का गठन किया और यह पता लगाने की कोशिश की गई कि खाद्य पदार्थों की क़ीमत बढ़ने के कारण क्या हैं और उन्हें स्थिर करने के क्या उपाय हो सकते हैं। नवंबर 1957 को रिपोर्ट पेश की गई, लेकिन तब तक मौसमी कारणों व रिज़र्व बैंक द्वारा कुछ वित्तीय कदम उठाए जाने के कारण मूल्य नीचे की तरफ़ आते दिखने लगे। खाद्यान्न के मामले में कहा जा सकता है कि पिछले दस वर्षों में सरकार की नीतियाँ लगातार संशयपूर्ण और अस्थिर चरित्र वाली रही हैं। जब तक इस मामले में कोई ठोस नीति लागू नहीं होती, तब तक एक औद्योगिक भारत को विकसित करने का कोई अवसर हमारे पास नहीं है। खाद्य पदार्थों की कमी और अस्थिर मूल्य किसी भी योजना को चौपट कर सकते हैं।

योजना आयोग ने विदेशी मुद्रा पर तैयार किए गए अपने एक वक्तव्य में यह माना है कि द्वितीय योजना को लागू करने के लिए आयात आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण ही मुख्य तौर पर यह संकट आया। लेकिन यह कमी काफ़ी हद तक रक्षा की माँगों में वृद्धि, ज़्यादा खाद्यान्न आयात और अधिक औद्योगिक उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल व अन्य अवयवों की बढ़ती ज़रूरतों, 'बल्कि वर्ष 1955-56 व 1956-57 में बड़ी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं के आयात' और मूल्य तथा भाड़े में बढ़ोतरी के कारण तेज़ी से बढ़ी है।

स्वेज़ संकट के अलावा, जो थोड़ा-बहुत भाड़ा बढ़ने का कारण बना, अन्य सभी कारक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकार द्वारा सोची-समझी योजना से ही संबंधित हैं। खाद्यान्न व रक्षा ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। कच्चे माल का आयात और उपभोक्ता वस्तुओं को कुछ हद तक उपलब्ध कराना ही चाहिए था। योजना अवधि में भारी सरकारी ख़र्च, उपभोक्ता वस्तुओं की भारी किल्लत मुद्रा स्फीति का अधिक

दबाव बनाएगी ही। यदि उपभोक्ता वस्तुओं का भारी आयात नहीं होता, हालाँकि यह द्वितीय योजना का उल्लंघन है, तो भी मूल्य वृद्धि ज़्यादा ही होती।

विदेशी सहायता

जब से विदेशी मुद्रा का संकट सामने आया है, तभी से हमारा सारा ध्यान विदेशी सहायता के दुखित सवाल पर टिका है। पिछले कुछ महीनों में बहुत गंभीर प्रयास किए गए हैं। हमारे प्रतिनिधि, आधिकारिक और अनाधिकारिक, द्वितीय योजना को बचाने के लिए भीख का कटोरा लेकर सभी देशों में गए। पूर्व वित्त मंत्री टीटी कृष्णामचारी ने सहायता प्राप्त करने के अभियान के तहत अमरीका, यूनाइटेड किंग्डम और जर्मनी का दौरा किया। हमारे प्रधानमंत्री ने अपनी जापान यात्रा को, एशिया के इस विकसित देश से सहायता प्राप्त करने के अवसर के रूप में भुनाया। रूस से भी संपर्क साधा गया। और हमारे राष्ट्रपति ने भारत को सहायता प्रदान करने के लिए संसद् सत्र के उद्घाटन भाषण में इन सभी और कई अन्य देशों का आभार व्यक्त किया। वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में भारत को दिए निम्नलिखित ऋण एवं प्रदान की गई अन्य सहायता को गिनवाया।

(करोड़ रुपए में)

1. इंटरनेशनल बैंक फॉर रिकंस्ट्रक्शन एंड डेवलपमेंट	
(i) रेल विकास ऋण	45.00
(ii) टाटा आयरन एवं स्टील को ऋण	15.00
(iii) ट्रांबे थर्मल स्टेशन के लिए ऋण	05.00
2. यू.एस.ए.	
225 मिलियन (अमरीकी डॉलर)	107.00
3. जापानी ऋण	24.00
4. यू.एस.एस.आर.	60.00
5. फ्रांस	28.00

मार्च 1957 तक बाहरी देशों द्वारा भारत को उपलब्ध कुल आर्थिक सहायता 453 करोड़ रुपए थी, जिसमें से 219 करोड़ का उपयोग उक्त तिथि तक कर लिया गया और बाक़ी बचे 244 करोड़ रुपए को उपकरणों व वस्तुओं की आपूर्ति के लिए सुरक्षित कर लिया गया। यह उम्मीद जताई गई कि आनेवाले वर्ष 1958–59 के लिए 325 करोड़ रुपए की विदेशी सहायता उपलब्ध होगी और बजट में इसे शामिल कर लिया गया।

ताज़ा संकेत हैं कि योजना के तहत पाँच वर्ष की अवधि के लिए जितनी विदेशी

सहायता का अनुमान लगाया गया है, वह प्राप्त हो सकती है। यह भी संभावना है कि अनुज्ञा इससे भी अधिक की हो और योजना अवधि के बाद यह अगली योजना के लिए भी अग्रसरित कर दिया जाए। लेकिन हम जो विदेशी सहायता प्राप्त करते हैं, उसके दो पहलुओं को ध्यान में रखना पड़ेगा। एक का संबंध चालू या भविष्य के किसी विदेशी मुद्रा संकट से बचाव का है तो दूसरा योजना कार्यक्रम के क्रियान्वयन का है। कुछ ऐसी सहायता का भी भरोसा मिला है, जिसमें योजना के बाहर की परियोजनाएँ भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए रूसी क़र्ज़ में एक ऑप्टिकल ग्लास फैक्टरी और कोल माइनिंग मशीनरी प्लांट शामिल है, जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना का हिस्सा नहीं हैं। यदि ऋण सशर्त हैं और उनका उपयोग किसी ख़ास परियोजना के लिए होना है, जबकि व्यावहारिक रूप में सभी विदेशी ऋण इसी प्रकृति के हैं, तो उसके समकक्ष रुपया आंतरिक स्रोतों पर अतिरिक्त दबाव डालेगा। दूसरे, चूँकि सभी परियोजनाओं का लागत अनुमान बढ़ गया है, इन अनुमानों में विदेशी मुद्रा का हिस्सा उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया है तो संभव है कि कुल प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता भी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उपयुक्त न हो। चूँकि एक बहुत बड़ा हिस्सा खाद्यान्न के आयात पर उपयोग में लाया जानेवाला है, इसलिए यह कहना कठिन है कि योजना के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता कहाँ तक पूरी हो पाएगी।

इसके अतिरिक्त एक और पहलू है। हमने यह मान लिया है कि पाँच साल की अवधि के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता वर्तमान स्तर से ज़्यादा नहीं होगी। हमारा यह आकलन सही नहीं भी हो सकता है। इस समय आयात पर अंकुश लगा हुआ है। लेकिन इससे कच्चे माल और अन्य उत्पादक वस्तुओं की कमी से घरेलू उत्पादन के नीचे जाने का ख़तरा भी हो सकता है। ऐसा लगता है कि इस पाँच वर्ष की अवधि में निजी क्षेत्रों को उनकी बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं मिल सकती है। अधिकतर निर्यातपरक वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा ही किया जाता है। इसलिए यह संभावना है कि घरेलू खपत कम करने की इच्छाशक्ति के बाद भी हमारा निर्यात बहुत ज़्यादा न बढ़े। इसलिए योजना को नए सिरे से पुनर्विन्यासित किया जाए और निर्यात संबंधित उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए, भले ही इसके लिए उन परियोजनाओं की प्रगति को थोड़ा धीमी करने की आवश्यकता ही क्यों न आन पड़े, जिनके इस योजना अवधि में पूरा होने की संभावना नहीं है।

वर्तमान समस्या पर काबू पाने के लिए भारत सरकार ने विलंबित भुगतान वाले आयात की व्यवस्था की है। लेकिन यह मालूम नहीं है कि योजना आयोग, वाणिज्य व उद्योग विभाग या वित्त मंत्रालय ने यह गणना की है या नहीं कि हर साल कितनी देय राशि देश चुकानी पड़ेगी। हमें तब तक आय के संभावित स्रोतों को ईजाद कर लेना

चाहिए। यदि हमारा घाटा वर्तमान दर पर ही बना रहता है तो बिना नए ऋण के हमारे लिए भुगतान करना संभव नहीं होगा। हमारी ऋणग्रस्तता और बढ़ जाएगी। आइए, हम सुनिश्चित करें कि गलत सोच पर बनाई गई इस योजना को पूरा करने के लिए हम अपना भविष्य गिरवी न रखें।

वर्ष 1958 और 1959 के अंत में भारत की संभावित क़र्ज़ स्थिति इस प्रकार हो सकती है।

तालिका

(करोड़ रुपए में)

	31 मार्च, 1939 के अनुसार	31 मार्च, 1958 के अनुसार	31 मार्च, 1959 के अनुसार
रुपए में क़र्ज़	484.82	3138.73	3466.80
स्टर्लिंग पौंड ऋण	464.95	22.35	21.47
डॉलर ऋण	–	159.85	341.68
यूएसएसआर से ऋण	–	15.30	45.98
पश्चिम जर्मनी से ऋण	–	14.00	44.00
अन्य विदेशी स्रोतों से ऋण	–	–	15.33
कुल	949.77	3350.23	3934.26

वर्तमान के लिए हम रुपए में ऋण का संज्ञान नहीं लेते। लेकिन हमारा विदेशी ऋण, खासकर डॉलर ऋण बढ़ रहा है। हम उनका पुनर्भुगतान कैसे करने जा रहे हैं? हमारी द्वितीय योजना का पूरा ध्यान संभावित विकास कार्यक्रम पर है। या तो आयात में कमी होनी चाहिए या फिर पूर्व एवं पश्चिम एशिया के देशों को निर्यात में कुछ बढ़ोतरी होनी चाहिए। सभी विदेशी ऋण में डॉलर का ऋण सबसे अधिक है। ठीक है, क़र्ज़ की शर्तों के अनुसार इसमें से कुछ हिस्से का पुनर्भुगतान रुपए में करना है, लेकिन शेष के लिए तो डॉलर कमाना ही होगा। इस समय हमारे पास सभी क्षेत्रों के व्यापारिक खाते में घाटा है। सबसे बड़ा घाटा ओईईजी (ऑर्गेनाइजेशन फॉर यूरोपीयन इकोनॉमिक कोऑपरेशन) के देशों के साथ है। पश्चिमी जर्मनी भी भारत को बड़ी मात्रा में क़र्ज़ दे रहा है। अमरीका, पश्चिमी जर्मनी, जापान और यूएसएसआर सभी ने आगे बढ़कर क़र्ज़ की सहायता दी है, शायद इसलिए कि वे अपने लिए एक बाज़ार का निर्माण करना चाहते हैं। लेकिन हमें भी बाज़ार बनाने के बारे में सोचना चाहिए, कम-से-कम बकाये क़र्ज़ के पुनर्भुगतान के लिए। इसके लिए निर्यात व्यापार का विविधीकरण करने और

लघु क्षेत्र, जिसके उत्पाद के लिए इन देशों में ख़रीददार हों, के निर्माण की आवश्यकता है।

कहा जा सकता है कि सरकार इस भारी बोझ के प्रति जागरूक है, कि ये विदेशी ऋण देश पर लाद दिए गए हैं। इस संबंध में वर्ष 1957-58 का आर्थिक सर्वेक्षण कहता है कि 'इस सच्चाई का अवश्य ज़िक्र होना चाहिए कि योजना की आयात आवश्यकताओं में भारी वृद्धि होने के कारण और उसके बाद भुगतान संतुलन के अंतर को पाटने के लिए तथा विदेशी सहायता की ज़रूरतों का ही परिणाम ब्याज़ भुगतान और पूँजी के पुनर्भुगतान के प्रति हमारी बड़ी बचनबद्धता है। ये दोनों तथा बाक़ी अवधि के लिए अतिरिक्त आवश्यकता, मिलकर तृतीय योजना में देश के भुगतान संतुलन पर भारी बोझ डालेंगे। इसलिए निर्यात बढ़ाने के लक्ष्य को केवल तत्काल ज़रूरतों के हिसाब से नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इन देनदारियों को पूरा करने के लिए निरंतर डॉलर कमाने की आवश्यकता के आलोक में भी देखा जाना चाहिए। यह उल्लेख करना ज़रूरी नहीं है कि भविष्य के लिए भी निवेश कार्यक्रम की आवश्यकता होगी। लेकिन बिना व्यावहारिक नीति और कार्यक्रम के यह सिर्फ़ एक सद्विचार ही हो सकता है।

श्री अशोक मेहता ने लोकसभा में सुझाया कि ऋण का पुनर्भुगतान नए ऋण लेकर हो सकता है। हालाँकि आचार्य कृपलानी ने इसकी तुलना मुद्रा डील से की थी, यानी एक सौदे के भुगतान के लिए दूसरा सौदा, फिर भी भुगतान के इस तरीक़े को अपनाने की संभावना से हम इनकार नहीं कर सकते। लेकिन जब तक हम अपनी भुगतान संतुलन स्थिति में सुधार नहीं करते, तब तक हम देश पर अतिरिक्त बोझ बढ़ाते जाएँगे। भले ही हम अपने क़र्ज़ के पुनर्भुगतान की अंतिम तिथि को टालते जाएँ, लेकिन हम इसे नजरंदाज़ नहीं कर सकते।

यह आमतौर पर माना जाता है कि प्रधानमंत्री ने भी इसका उस समय ज़िक्र किया था, जब स्टील संयंत्र उत्पादन के लिए जा रहा था—हमें इस स्थिति में होना चाहिए कि हम स्टील का निर्यात कर सकें या कम-से-कम इतना कि स्टील का आयात कम कर सके और इस प्रकार से हम अपने व्यापारिक खाते के संतुलन में सुधार कर सकें। लेकिन उनके इस विचार को उन लोगों ने साझा नहीं किया जो भारत में इस्पात, सीमेंट और इस तरह के अन्य उत्पादों की तेज़ी से बढ़ती आवश्यकताओं को देख सकते थे। सीमेंट का उत्पादन माँग की अपेक्षा कम रहा। ऐसी ही स्थिति इस्पात की भी हो सकती है। वर्ष 1960-61 में द्वितीय योजना ने तैयार इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य 43 लाख टन तय किया था, परंतु आयोग ने इस वर्ष 45 लाख टन कुल तैयार इस्पात की आवश्यकता का आकलन किया था, द्वितीय योजना ढाँचा में यही आकलन 50 लाख टन का था। स्पष्ट है कि यदि इस्पात उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त भी कर लिया जाता है तो भी हमारे पास

कोई अधिशेष बचने की संभावना नहीं, जिसका हम निर्यात कर सकें। सबसे बड़ी बात तो यह है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना न तो अपने आप में परिपूर्ण है और न ही इस बारे में कोई अंतिम प्रयास ही किया गया है। औद्योगिक विकास के लिए संभावनाएँ खोलने का प्रयास किया गया है। यदि एक क़र्ज़दार देश के रूप में अपनी बचनबद्धता को पूरा करने के लिए स्वदेशी उत्पादों को विदेशी बाज़ारों की ओर मोड़ने की आवश्यकता पड़ी तो तृतीय व क्रमबद्ध योजना उस लंबी अवधि के नियोजन के परिप्रेक्ष्य में नहीं होगी, जिसकी कल्पना आयोग ने की है।

प्रधानमंत्री ने लोकसभा को यह सूचित किया कि वर्ष 1960 से 1963 के बीच 'भारत को 92 करोड़ से लेकर 123 करोड़ रुपए तक का पुनर्भुगतान करना पड़ेगा। सबसे अधिक वर्ष 1961 से 1962 में 100 करोड़ रुपए से अधिक, बहुत बड़ी राशि, का पुनर्भुगतान करना होगा', नेहरू ने कहा, लेकिन साथ ही जोड़ा 'केवल एक तसल्ली है कि खराब समय सिर्फ़ दो वर्ष का होगा।'

मार्च 1958 तक लिए हमारे ऋण के अनुसार पुनर्भुगतान के वार्षिक आँकड़े इस प्रकार हैं।

तालिका

(करोड़ रुपए में)

वर्ष	राशि
1958–59	23
1959–60	35
1960–61	92
1961–62	123
1962–63	107
1963–64	48

परिस्थितियाँ और ख़राब हो जाएँगी, क्योंकि भारत को वर्ष 1960 से 1963 तक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिये पैसे का पुनर्भुगतान करना पड़ेगा। अब आगे कोई संकट आता है या नहीं, यह सब कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में—'अगर अंधा ईश्वर हमारे साथ कोई नाइंसाफी नहीं करता, जैसा कि अकसर करता रहा है, तो हम आनेवाले वर्ष में अच्छा करने की आशा रख सकते हैं।' हम केवल यही कह सकते हैं कि योजनाकार विज्ञान और धर्मनिरपेक्षता पर अपने विश्वास की डींग हाँकने के बावजूद योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए अंधे भगवान् पर ही आश्रित हैं।

द्वितीय योजना का भविष्य पूरी तरह से विदेशी ऋण से बँधा है। हमें योजना के क्रियान्वयन के लिए क़र्ज़ चाहिए और उनके पुनर्भुगतान के लिए योजना चाहिए। योजना तैयार करते समय इसकी केंद्रीय भूमिका तब महसूस नहीं की गई। वर्ष 1958-59 का पूँजीगत बजट अनुमान 285 करोड़ रुपए तक के विदेशी ऋण की आवश्यकता जताता है। यह कुल 412 करोड़ के केंद्रीय पूँजीगत बजट का 70 फ़ीसदी है। विदेशी ऋण पर इस स्तर तक निर्भरता सुरक्षित सीमा नहीं मानी जा सकती। बहरहाल अधिशेष कृषि उत्पाद के रूप में विदेशी सहायता का एक हिस्से का उपयोग उत्पादक निवेश के बजाय वर्तमान उपभोग के लिए हो रहा है। क्या हमें योजना के विदेशी संसाधन के हिस्से को कम कर न्यूनतम पर नहीं लाना चाहिए?

कुछ और भी विचारणीय बातें हैं, जो विदेशी सहायता पर कम-से-कम निर्भर रहने की आवश्यकता बताती हैं। इंटरनेशनल बैंक फॉर रिकंस्ट्रक्शन एंड डेवलपमेंट के 71.50 करोड़ के ऋण के अलावा सभी ऋण विदेशी शक्तियों द्वारा जारी किए गए हैं।[2] यूएसए और यूएसएसआर दोनों ने भारत को क़र्ज़ दिए हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अधिकांश विदेशी सहायता, जो हमें मिल रही हैं, वे शीत युद्ध रणनीति का हिस्सा हैं। राष्ट्रपति आइज़नहावर ने 'स्टेट ऑफ़ द यूनियन एड्रेस' में आर्थिक सहायता को इन संदर्भों में परिभाषित किया—

''आपसी आर्थिक सहयोग कार्यक्रम से हमें तीन गुणा लाभ हो रहा है। पहला, वे देश, जो हमसे सहायता प्राप्त कर रहे हैं, वे साम्यवादी अतिक्रमण के खिलाफ हमारे लिए पहरेदार बन गए हैं, क्योंकि उनकी सैन्य क्षमता और अर्थव्यवस्था मज़बूत हो गई है। वे देश जो उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर में लगातार सुधार के प्रति जागरूक हैं, वे साम्यवादी साम्राज्य की चोंचलेबाज़ी के झाँसे में नहीं आनेवाले। दूसरा, इन देशों की सहायता इसलिए की जा रही है, ताकि वे ऐसे स्तर तक पहुँच जाएँ, जहाँ उनके साथ हम परस्पर लाभ के व्यापार का विस्तार कर सकें। तीसरा, साथ काम करने से जो आपसी विश्वास बनता है, उससे एक ऐसे वातावरण का निर्माण हो सकता है, जिसमें वास्तविक तालमेल और शांति फल-फूल सकती है।''

श्रीमान डलेस ने विदेश संबंध समिति के समक्ष अपना बयान देते हुए कहा-'यदि साम्यवाद भारत को कब्ज़े में लेता है तो यह झटका विश्व के इस भाग की स्वतंत्रता पर ऐसा कुठाराघात होगा, जो साम्यवादियों के मुख्य चीनी भूमि पर कब्ज़े से कहीं बड़ा है। भारत की अपनी संस्कृति है, इस क्षेत्र में प्रभाव व सम्मान है, यदि यह थाती साम्यवादियों के हाथ आती है तो एशिया के अन्य स्वतंत्र देश भी ख़तरे में आ जाएँगे। इसलिए यदि हम आज़ादी के प्रतिष्ठानों को विकसित करने के भारत सरकार के ईमानदार और विवेकपूर्ण

2. एक्सप्लेनेटरी मेमोरैंडम ऑन द बजट, 1958-59, पृष्ठ 339।

प्रयासों पर विश्वास कर सहायता प्रदान करते हैं तो हम सिर्फ़ भारत को नहीं बल्कि सभी को मदद पहुँचा रहे हैं।

भारत को लंबे समय के लिए क़र्ज़ सहायता के प्रस्ताव को पेश करते हुए अमरीकी सीनेट के सीनेटर जॉन केनेडी ने कहा—'रूसी चीन पर अपने कब्ज़े को एशिया और अफ्रीका के अन्य क्षेत्रों में भी दोहराने की कोशिश कर रहे हैं। वे पश्चिम से प्राप्त अपर्याप्त सहायता और नियोजन एवं आर्थिक जीवन के प्रजातांत्रिक तरीक़े के प्रति भारत के मोहभंग पर निगाह रखे हुए हैं।' डॉलर व असफल कूटनीति एक-दूसरे को चुनौती दे रहे हैं। यदि ये दोनों युद्धरत क्षेत्र अपनी ऊर्जा और संसाधन सहकारिता और विकास के प्रयासों में लगाते हैं तो हम बुरा नहीं मानेंगे। लेकिन इन देशों से आर्थिक सहायता लेने से पहले इनके सच्चे इरादे के बारे में हमारे मन में स्पष्टता होनी चाहिए। यही कारण है कि वे देश जो अपनी राजनीतिक और आर्थिक आज़ादी को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, वे अंतरराष्ट्रीय संगठनों से ही क़र्ज़ या सहायता लेना पसंद करते हैं। आर्थिक विकास के लिए एक विशेष यूएन कोष के गठन का प्रयास बिना किसी सफलता के 1919 से ही चल रहा है। प्रस्तावित परियोजना कोष शायद ही किसी काम का होगा।

हम अभी तक जो समय-समय पर ऋण सहायता प्राप्त कर रहे हैं, वह टुकड़ों में दिया जा रहा है। यह क़र्ज़ देनेवाले देश की उस समय की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति पर काफ़ी हद तक निर्भर करता है। क्या इस तरह की अनिश्चित नींव पर एक दीर्घकालीन योजना का आधार खड़ा करना हमारे लिए सुरक्षित है? यदि अमरीकी मंदी और गहराती है तो निश्चित रूप से सभी सहायता कार्यक्रम प्रभावित हो सकते हैं। यह पहले ही अमरीका व अन्य देशों को हमारे निर्यात पर बुरा असर डाल चुका है। रायटर द्वारा अमरीकी मंदी का अन्य देशों पर हुए असर पर सर्वेक्षण के अनुसार भारत का विदेशी मुद्रा संकट और बढ़ने वाला है। एजेंसी का आर्थिक संपादक भारत के बारे में लिखता है—'अमरीकी मंदी मुख्य तौर पर भारत की व्यापार शर्तों पर बुरा असर डाल रही है। जिसके कारण उसके उत्पादों की विश्व बाज़ार में बहुत की कम कीमत मिल रही है। पंजीकृत बेरोज़गारों की संख्या बढ़कर 10 लाख हो गई है, जो कि पिछले एक साल में तीन लाख थी, लेकिन वास्तविक बेरोज़गारों की संख्या का अनुमान एक करोड़ से अधिक है। निर्यात ऑर्डर में गिरावट ने भारत की विदेशी मुद्रा की समस्या को और प्रभावित किया है, काफी विदेशी सहायता मिलने के बाद भी संकट बना हुआ है।' यदि यह मंदी स्थायी अवसाद में बदल जाती है तो विदेशी ऋण की हमारी वचनबद्धता, और मुख्य रूप से विदेशी आयात पर आधारित परियोजनाएँ, पूरी होने की कोई संभावना नहीं बचती।

विदेशी पूँजी

ऋण एवं अनुदान के रूप में विदेशी सहायता के अलावा द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने 100 करोड़ रुपए का प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी आयात का भी अनुमान लगाया था। इस अवधि में कुल विदेशी निवेश से यह अलग है। बाद वाला विदेशी व्यवसायियों के लाभ की पुनर्निवेशित पूँजी में काफी हद तक शामिल है। यह पुनर्निवेशन देश में पूँजी की आवश्यकता को पूरा कर सकता है, लेकिन यह घरेलू संसाधन और योजना की कुल आवश्यकताओं के बीच के अंतर और विदेशी मुद्रा की कमी को पूरा नहीं कर सकता। सही आँकड़े उपलब्ध नहीं होने के कारण यह सुनिश्चित करना मुश्किल है कि योजना के पहले दो वर्ष में कितनी विदेशी पूँजी निवेशित हुई। योजना की ज़रूरतों के मद्देनज़र यह राशि ज़्यादा नहीं हो सकती।

जहाँ तक विदेशी पूँजी का सवाल है, लगता है, भारत सरकार की नीति में कुछ बदलाव हुआ है। इस संबंध में 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में कहा गया है— 'यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि विदेशी पूँजी और उद्यम की भागीदारी देश के तेज़ औद्योगीकरण के लिए बहुत मायने रखती है, लेकिन यह भी आवश्यक है कि जिन शर्तों पर वे भारतीय उद्योग में हिस्सा ले सकते हैं, उन शर्तों का देशहित में सावधानी पूर्वक नियमन किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए उचित क़ानून बनाए जाएँगे। ऐसा क़ानून उद्योग में सरकार द्वारा विदेशी पूँजी और प्रबंधन की भागीदारी के हरेक मामले की जाँच और अनमुति देने में सहायक होगा। यह ऐसे नियम उपलब्ध कराएगा, जिसके ज़रिए मालिकाना हक़ एवं असरदार नियंत्रण हमेशा भारतीय हाथों में बना रहेगा। इन सभी उद्देश्यों के लिए भारतीय कर्मियों को उचित प्रशिक्षण देकर विदेशी विशेषज्ञों की जगह लगाने पर ज़ोर दिया जाएगा।' लेकिन कोई ऐसा क़ानून सामने नहीं लाया गया, बल्कि सरकार की नीति विदेशी पूँजी को भारतीयों के समकक्ष मानने की बनी रही।

विदेशी उद्योगपतियों ने यहाँ अपनी कई सहायक कंपनियाँ खोलने के अलावा भारत को एक ऐसा देश नहीं माना, जहाँ वे निवेश कर सकें। सरकारी नीतियों का उद्देश्य समाजवाद को धारण करना और भारतीय पूँजीपतियों द्वारा इसे लेकर शोर मचाना कुछ हद तक संभावित निवेशकों को डरा गया। भारत सरकार के प्रतिनिधि लगातार इस आशंका को दूर करने की कोशिश कर रहे हैं और निवेशकों को बिना किसी भेदभाव के व्यवहार के प्रति आश्वस्त कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ कुछ आधारभूत रियायतों पर भी ज़ोर दे रहे हैं।

19 सितंबर, 1957 को अमरीकी सरकार के निवेश गारंटी कार्यक्रम के तहत अमरीका और भारत की सरकारों ने भारत में निजी अमरीकी निवेश को कुछ खास ज़ोखिमों जैसे कि बिना उपयुक्त क्षतिपूर्ति दिए राष्ट्रीयकरण करने और लाभ तथा विक्रय

से प्राप्त राशि को उनकी मुद्रा में वापस घर भेजने पर रोक के प्रति गारंटी देने के समझौते पर हस्ताक्षर किए।

वे भारतीय पूँजीपतियों के साथ मिलकर अनिवार्य जमा योजना को भी वापस लेने की माँग करने लगे। वित्त मंत्री ने उनकी यह माँग भी मान ली। करों के मामले में भी कुछ रियायतें दी गईं। लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और जापान जैसे देशों के साथ दोहरे कराधान से बचने का कोई समझौता नहीं हुआ। भारत सरकार की पिछली तिथियों से लागू कर नीति को भी कुछ ने यहाँ व्यापार शुरू करने में सबसे बड़ी बाधा माना। उनके लिए वे नहीं जानते कि उनकी करदेयता कितनी होने वाली है। पूरे विश्व में पूँजी की कमी होने के कारण हम यह आशा नहीं कर सकते कि हमें बहुत कुछ मिल जाएगा, खासकर जिन क्षेत्रों का विकास हम करना चाहते हैं और घरेलू पूँजी बहुत कम है।

विदेशी मुद्रा भंडार में अंतर

योजना ने विदेशी मुद्रा भंडार में 1,100 करोड़ के अंतर का आकलन किया था, जिसकी पूर्ति (1) स्टर्लिंग पौंड भंडार से 200 करोड़ रुपए की निकासी, (2) 2,800 करोड़ रुपए के विदेशी ऋण और (3) निजी विदेशी पूँजी, जिसमें आपूर्तिकर्ताओं की उधारी भी शामिल है, से 100 करोड़ रुपए से होनी थी। लेकिन यह अंतर बड़ा हो गया। हमने पहले ही स्टर्लिंग पौंड भंडार से काफ़ी कुछ निकाल लिया था। मार्च 1958 तक भारत की विदेशी देनदारी की वचनबद्धता 864 करोड़ रुपए हो गई थी। हमारी निर्यात आय नहीं बढ़ रही थी। इसलिए अंतर जितना सोचा था, उससे ज़्यादा हो गया। यदि सरकार सभी योजित परियोजनाओं को पूरा करने पर अडिग रहती है तो यह अंतर 2000 करोड़ रुपए तक हो सकता है। यदि सिर्फ़ मुख्य यानी कोर परियोजनाओं को ही पूरा करना हो, जिसे अभी परिभाषित नहीं किया गया है, तो भी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता करीब 1,500 करोड़ की होगी।

स्पष्ट है कि सिर्फ़ कोर परियोजनाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक मुद्रा भंडार कम ही होगा। यदि हम भविष्य की विदेशी मुद्रा आवश्यकताओं को, ऋण के पुनर्भुगतान को, खाद्यान्न के आयात के लिए ली गई विदेशी सहायता राशि व लाभांश को लौटाने, अकाल की स्थिति को दूर रखने, सार्वजनिक ख़र्च बढ़ने के कारण मुद्रास्फीतिक दबाव पर अंकुश रखने, द्वितीय योजना के दौरान शुरू किए गए विकास कार्यों को जारी रखने के लिए उत्पादक वस्तुओं व पूँजीगत उपकरणों, देश में अनायास वाले संकट से सामना करने के लिए आवश्यक न्यूनतम विदेशी मुद्रा भंडार जैसे सभी तत्त्वों को भी ध्यान में रखते हैं तो विदेशी मुद्रा की स्थिति उससे भी अधिक ध्यान देने की माँग करती है, जितना ध्यान विदेशी मुद्रा संकट शुरू होने के समय दिया गया था।

विदेशी मुद्रा का सिरदर्द पूरे द्वितीय योजना के दौरान बने रहने वाला है। हमारे आयात पर गंभीर रोक के बावजूद हम अपने बहते विदेशी मुद्रा प्रवाह को रोक नहीं पाए हैं। भुगतान संतुलन, जो पिछले कुछ महीनों में धीरे-धीरे सुधर रहा था और मार्च के पहले सप्ताह में कुछ अधिशेष दिखा रहा था, फिर से घाटे में चला गया। 28 मार्च, 1958 के रिज़र्व बैंक की साप्ताहिक समीक्षा के अनुसार निगर्मित विभाग में विदेशी प्रतिभूतियाँ केवल 171.19 करोड़ रुपए की थीं और विदेशों में बैंकों में हमारा कुल जमा 95.01 करोड़ रुपए था। इस तरह हमारे पास कुल 267 करोड़ रुपए का विदेशी मुद्रा भंडार था। अब ज़रा प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में 746.14 करोड़ से इसकी तुलना करिए। द्वितीय योजना के पहले दो वर्ष में ही इसमें 479.14 करोड़ रुपए की कमी आ गई।

वित्त मंत्री ने पूछे गए एक प्रश्न के जवाब में लोकसभा को यह सूचित किया — 'द्वितीय योजना की कोर परियोजनाओं के लिए विदेशी मुद्रा की लागत 972 करोड़ रुपए होगी। जिसमें से 875 करोड़ रुपए सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए और बाक़ी 96 करोड़ निजी क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए रहेंगें।' वित्त मंत्री ने यह स्पष्ट नहीं किया कि ये ज़रूरतें वास्तविक अनुमान के अनुसार हैं या संशोधित अनुमान के। यदि हम खाद्यान्न और रक्षा उपकरणों के आयात पर ख़र्च होने वाली अतिरिक्त राशि को जोड़ दें, जिसपर योजना ने विचार नहीं किया है, हमारा अनुमान 1,500 करोड़ रुपए को भी पार कर जाएगा। 31 मार्च, 1958 तक 972 करोड़ रुपए की आवश्यकता के विरुद्ध 322.62 करोड़ की विदेशी मुद्रा का भुगतान सार्वजनिक़ क्षेत्र को कर दिया गया और 59.58 करोड़ रुपया निजी क्षेत्रों की परियोजनाओं को गया। बाक़ी बचे विदेशी मुद्रा का भुगतान 31 मार्च, 1958 से 31 मार्च, 1961 के बीच, जो क्रमश 552.81 करोड़ और 36.77 करोड़ का होना था, अभी भी नहीं हुआ है। निजी क्षेत्र के लिए विदेशी ऋण, साख और सहायता आदि संबंधी जो मोलभाव किए गए थे, वे 28.59 करोड़ के थे। इसने 8.8 करोड़ का एक ऐसा बकाया छोड़ दिया, जिसके लिए विदेशी मुद्रा का स्रोत ढूँढ़ा जाना था। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के मामले में तसवीर इतनी साफ़ नहीं है। इनके लिए कुल 219.12 करोड़ की विदेशी सहायता ही जुटाई जा सकी, जिससे 333.69 करोड़ के अंतर को भरा जाना है। ज़ाहिर है, हमें इस राशि से अतिरिक्त सहायता का आश्वासन मिला है, लेकिन वह उस उद्देश्य के लिए, जो योजना में शामिल नहीं है।

18

निजी निवेश

आयोग का दो साल का काम काज स्पष्ट रूप से दिखाता है कि संसाधन जुटाना कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। कर वसूली ज़रूर बढ़ी है, लेकिन योजना में उसका योगदान कम हुआ है। जहाँ तक किसी विशेष कर का सवाल है, अधिकतर अपनी उच्च सीमा पार कर चुके हैं और ह्रासमान उपयोगिता नियम काम करने लगा है। अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र में हल्की मंदी के संकेत साफ़ दिख रहे हैं और केंद्र सरकार कपड़े पर लागू उत्पाद शुल्क और अनिवार्य जमा योजनाओं पर छूट देने के लिए बाध्य हुई है। और छूट व रियायत देने की माँग उठ रही है। कराधान अब अतिरिक्त ख़रीद क्षमता पैदा होने के कारण व्यापार में पैसा लगाने का माध्यम नहीं रह गया। यह व्यापार और उद्योग को प्रभावित कर रहा है। पूरी अर्थव्यवस्था पर गंभीर चोट पहुँचाए बिना आगे करों में कोई और वृद्धि संभव नहीं है। लघु बचत और अन्य उधारी कार्यक्रम की गति योजना की अनुसूची के अनुरूप नहीं है। यही हाल अवित्तपोषित ऋणों को लेकर है।

सरकार ने आंतरिक स्रोतों की कमी घाटे की वित्त व्यवस्था से और विदेशी स्रोतों की कमी की पूर्ति पौंड भंडार से निकासी के ज़रिए की है। दोनों मामलों में सीमाएँ तोड़ दी गई हैं। पिछले कुछ महीनों में जो विदेशी सहायता प्राप्त हुई है या जिसके प्राप्त होने के वायदे मिल गए हैं, उनसे तो तत्काल भुगतान संतुलन पर आया ज़बरदस्त दबाव ख़त्म हो जाएगा, लेकिन आंतरिक स्रोतों को जुटाने का सवाल लगातार हमें परेशान करता रहेगा। जो तरीक़े अपनाए गए हैं, उनसे कोई संतोषजनक परिणाम हासिल नहीं हुआ है। प्राप्ति अपेक्षा से कम रही है और औद्योगिक क्षेत्र में व्याप्त मंदी की धारणा निकट भविष्य में किसी सुधार की संभावना को ख़ारिज करती है।

घाटे की वित्त व्यवस्था पर ज़्यादा से ज़्यादा जोर दिए जाने के कारण मुद्रास्फीतिक दबाव उत्पन्न हो गया है। क़ीमतें बढ़ गई हैं। वेतन और मज़दूरी बढ़ाने की माँगें उठ रही हैं। सभी योजना-परियोजनाओं के लागत अनुमान बढ़ गए हैं। परिणामत: कोष की भारी कमी हो गई है। सरकार के वित्तीय उपायों और साख नीति ने निजी क्षेत्रों के लिए भी समस्याएँ

खड़ी कर दी हैं। प्रतिकूल भुगतान संतुलन के कारण उलटा असर होने के बावजूद सरकार द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था पर ज़ोर देने से मुद्रास्फीतिक दबाव उत्पन्न हो गया है और इस वजह से रिज़र्व बैंक ने इस दबाव को दूर करने के लिए जून 1957 से ही चुनिंदा तरीक़े से मुद्रा नियंत्रण लागू कर दिया है। हो सकता है कि ये उपाय कुछ हद तक सफल भी हुए हों।

पहली योजना के अंतिम दो वर्ष और द्वितीय योजना के पहले वर्ष निवेश की आवश्यक गति बरक़रार नहीं रह सकी। वर्ष 1957-58 के बजट प्रस्ताव ने लगता है, पूँजी को ग़ायब ही कर दिया। नीचे दी गई तालिका पँजीकृत कंपनियों और उनकी अधिकृत पूँजी के बारे में पिछले छह साल के तुलनात्मक आँकड़े प्रस्तुत करती है।

तालिका

नई कंपनियों की अधिकृत पूँजी

वर्ष	कंपनियों की संख्या	अधिकृत पूँजी (करोड़ रुपए में)	जॉइंट फ्लोटेशंस कंपनियों की संख्या	जॉइंट फ्लोटेशंस अधिकृत पूँजी (करोड़ रुपए में)
1951-52	1866	152.26	21	75.2
1952-53	1333	96.42	10	50.0
1953-54	1211	153.02	7	111.1
1954-55	1203	225.98	42	178.0
1955-56	1448	156.94	26	93.0
1956-57	848	210.64	28	170.5

वर्ष 1957-58 के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन शेयर कारोबार के गिरते मूल्य बताते हैं कि शेयर बाज़ार की हालत क्या है। नीचे दी गई तालिका में सभी प्रतिभूतियों में गिरावट की चाल देखी जा सकती है।

तालिका

प्रतिभूति मूल्यों का सूचकाँक

(आधार : 1949-50 = 100)

वर्ष	सरकारी एवं अर्ध-सरकारी	ऋण-पत्र	पूर्वाधिकार (नियत लाभांश)	परिवर्ती लाभांश
1952.53	90.1	-	87.3	94.0
1953.54	90.4	100.1	87.3	95.6

1954.55	90.5	100.7	88.4	112.9
1955.56	90.9	100.8	87.3	121.6
1956.57	90.5	100.1	82.9	121.2
जनवरी 1958	89.1	97.3	71.4	95.9
फ़रवरी 1958	82.2	97.2	71.3	96.5

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक।

पूँजी निर्माण में गिरावट—वर्ष 1957-58 की वित्त मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार पहले 1957 के पहले ग्यारह महीने में जो कंपनियाँ पंजीकृत हुईं, उन 812 कंपनियों की अधिकृत पूँजी 99 करोड़ रुपए थी। उनमें से 61 कंपनियाँ, जिनकी अधिकृत पूँजी 52 करोड़ रुपए थी, सरकारी कंपनियाँ थीं। अक्तूबर 1957 के अंत तक कुल 29,315 संयुक्त अंशपूँजी वाली कंपनियाँ थीं, जिनकी चुकता पूँजी 1,100 करोड़ रुपए थी। इनमें से 9,296 सरकारी कंपनियाँ थीं, जिनकी कुल चुकता पूँजी 746 करोड़ रुपए थी, जबकि 20,022 कंपनियाँ ग़ैर-सरकारी थीं और उनकी कुल चुकता पूँजी 356 करोड़ रुपए थी।

यदि हम इन आँकड़ों में से सार्वजनिक क्षेत्र को छोड़ दें तो निजी क्षेत्रों में पूँजी निर्माण बहुत कम हुआ। यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक लिमिटेड के अध्यक्ष जी.डी. बिरला ने अपने वक्तव्य में इस संदर्भ में यह कहा, 'पूँजी के लिए कुछ नए निर्गम और बिक्री के प्रस्ताव सफलतापूर्वक पूरे कर लिए गए, लेकिन ये नए निर्गम बहुत ही विशेष थे और शेयर बाज़ार की स्थिति किसी नए उद्यम के लिए पूँजी जुटाने के पूरी तरह प्रतिकूल ही बनी रही।'

भारत में रुपए की पूँजी की भी उपलब्धता कम होने के कारण विदेशी पूँजी का प्रवाह प्रभावित रहा। घरेलू बचत की मात्रा ही हमेशा विदेशी वित्त के उद्देश्यात्मक निवेश को निश्चित करती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जो निवेश के लक्ष्य तय किए गए हैं, उन्हें हासिल करना संभव नहीं है। वर्ष 1956-57 और 1957-58 के संशोधित और बजट अनुमान के आधार पर 1957-58 का आर्थिक सर्वेक्षण दो वर्ष में केंद्र सरकार द्वारा और उसके ज़रिए कुल 1,342.3 करोड़ रुपए का पूँजी निर्माण का आँकड़ा पेश करता है। वास्तव में इसे कहीं 1,100 करोड़ रुपए के क़रीब तय किया जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में अधिकांश निवेश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से केंद्र सरकार द्वारा ही किए गए। सरकार की वित्त के मामले में डाँवाँडोल स्थिति पर ध्यान करें तो पाँच साल की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र में 3,800 करोड़ रुपए का निवेश संदेहात्मक

ही लगता है। निजी क्षेत्र में हाल में मंदी की मार 2,400 करोड़ रुपए के निवेश के लक्ष्य पर भी असर डाल सकता है।

यह आकलन है कि वर्ष 1956-57 में उद्योग में 100 करोड़ रुपए का निवेश हुआ। 1956-57 में ही निजी खाते में 153 करोड़ रुपए की मशीनरी एवं उपकरण आयात किए गए। इस वर्ष पूँजीगत माल के उत्पादन में भी 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1956-57 का सूचकांक 208.8 (1950-51=100) रहा। नीचे दी गई तालिका प्लांट व मशीनरी में कुल निवेश को दरशाती है।

तालिका

प्लांट एवं मशीनरी में निजी क्षेत्र द्वारा कुल निवेश

(करोड़ में)

वर्ष	आयात	पारंपरिक	कुल
1951-52	84.17	6.05	90.22
1952-53	76.61	5.73	82.34
1953-54	77.14	9.08	86.22
1954-55	72.51	18.97	91.48
1955-56	105.05	22.26	127.31
1956-57	71.20	28.88	100.08

स्रोत : यूनाइटेड एशिया, नवंबर 57।

लेकिन वर्ष 1956-57 में बड़े निजी निवेश केवल कॉरपोरेट या निजी बचत से नहीं आए। कंपनियों की चुकता पूँजी में 53 करोड़ रुपए की बढ़ोतरी हुई। निजी क्षेत्र ने इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया यानी भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, दि इंडस्ट्रियल क्रेडिट एंड इनवेस्टमेंट कॉरपोरेशन, वाणिज्यिक बैंक और इंटरनेशनल बैंक फॉर रीकंस्ट्रक्शन एंड डेवलपमेंट से वित्त प्राप्त किया। अनुसूचित बैंकों द्वारा उनके कुल अग्रिम का 38.5 फीसद उद्योगों को गया। यह पिछले वर्ष के मुक़ाबले 4.2 फीसद अधिक है। कोलंबो प्लान की सलाहकार समिति की छठी वार्षिक रिपोर्ट इस मामले में यह विचार व्यक्त करती है—'निजी क्षेत्र के बैंकों से क़र्ज़ में वृद्धि को आंशिक रूप से अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर में वृद्धि के रूप में समझा जा सकता है, लेकिन यह स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र के विकास के लिए बैंकों से क़र्ज़ पर ज़्यादा ज़ोर निजी और कॉरपोरेट क्षेत्र की अपर्याप्त बचत को भी दरशाता है।'

वर्ष 1957-58 में भी परिस्थितियाँ कुछ ख़ास नहीं बदलीं। ऐसी परिस्थिति को

स्पष्ट रूप से वर्णन करते हुए श्री ए.डी. श्रॉफ लिखते हैं—'जब एक क्षण के लिए निजी क्षेत्रों की आवश्यकताओं की तरफ़ देखते हैं, तो पाते हैं कि नया पूँजी बाज़ार वास्तव में मरा हुआ है। नए निर्गमों के ग्राहकों को दुर्भाग्य से मज़बूरी में नए निर्गम रखने का बहुत बुरा अनुभव रहा है। किसी-किसी मामले में तो यह हिस्सा 90 से 95 प्रतिशत रहा। इसलिए उद्योग को बैंकों के भरोसे ज़्यादा रहना पड़ता है। परिणामस्वरूप अन्य माँगों को पूरा करने के लिए एक तार्किक स्तर पर तरलता बनाने में बैंकों को काफ़ी दिक्क़तों का सामना करना पड़ रहा है। निवेशक आगे किसी भी प्रकार के निवेश के प्रति इच्छुक नहीं हैं। अधिमान शेयरों में निवेश लगभग बंद है और इक्विटी शेयर यानी पूँजी हिस्सेदारी शेयर में आजकल लोग दस से 12 फीसदी की आकर्षक सालाना आय चाहते हैं।'[1]

वर्ष 1957-58 का आर्थिक सर्वेक्षण मुद्रा बाज़ार की तंगी को भी बताता है, जब यह लिखता है—'मुद्रा बाज़ार का संकुचन और अल्पकाल के निवेश पर ऊँची ब्याज दर यह दरशाते हैं कि शेयर बाज़ार में पूँजी की कमी है। शेयर बाजार लगातार नीचे की ओर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। अगस्त 1956 से लेकर 1957 के अंत तक शेयरों के दाम में 25 प्रतिशत तक गिरावट आई है।'

पूँजी निर्गम—वर्ष 1956 में 35 करोड़ के पूँजी निर्गम की तुलना में वर्ष 1957 के दौरान अपेक्षाकृत लगभग 27 करोड़ रुपए के पूँजी निर्गम आए। सर्वेक्षण यह स्वीकार करता है कि 'कुछ हद तक शेयर बाज़ार में पूँजी की कमी के कारण और कुछ विदेशी मुद्रा की कमी के कारण निजी निवेश घट सकता है।' आयोग या सरकार ने मंदी व्याप्त होने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में गिरते निवेश या फ़िर आवश्यक विनिवेश की कल्पना नहीं की। पिछले वर्ष सूती कपड़े की कई मिलें बंद हो गईं और उत्पाद शुल्क में रियायत दिए जाने के बावजूद कई मिलें, स्टॉक न बिकने के कारण काम में कठिनाई महसूस कर रही हैं। यही हाल दियासलाई फैक्ट्रियों व इंजीनियरिंग इकाइयों का भी है। पिछले चार वर्षों में चीनी का उत्पादन दुगना हो गया है, लेकिन उनका लागत ढाँचा लाभदायक नहीं है। पिछले साल चीनी उद्योग ने 65 लाख टन का निर्यात किया। लेकिन इस वर्ष विदेशों में चीनी की क़ीमत कम होने और घरेलू स्तर पर लागत बढ़ने के कारण इतना निर्यात संभव नहीं दिखता। उद्योग जिसे 10.11 प्रतिशत उत्पाद शुल्क देना है, वह अपनी लागत कम नहीं कर सकता और इस कारण विदेशी उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा भी नहीं कर सकता।

सरकार की नीतियाँ एवं मुद्रा बाजार

सरकार की कर नीति एवं नियमन के तरीक़ों ने भी निजी उद्यमों के लिए एक प्रतिकूल माहौल तैयार कर दिया है। द्वितीय योजना में कार्यक्रम क्रियान्वयन में निजी क्षेत्रों की एक

---

1. ए.डी.श्रॉफ : अवर इकोनॉमिक फ्यूचर, द पायनियर (रिपब्लिक सप्लीमेंट 26.1.58)

बार भूमिका तय कर देने के बाद यह सरकार की ज़िम्मेदारी थी कि वह लक्ष्य को हासिल करने के अपने दायित्व की पूर्ति के लिए सुविधाओं के उपयोग की मंजूरी दे। पूरी योजना एक एकीकृत योजना होनी चाहिए थी और विभिन्न क्षेत्रों का योगदान एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए थे। लेकिन सरकार ने अपने समाजवाद के उत्साह में एक ऐसे माहौल को जन्म दे दिया, जिसमें उद्योगपतियों और व्यापारियों को डर लगने लगा। यह अब स्वीकार कर लिया गया है कि करों का बोझ आम लोगों पर डाल दिया गया है। प्रत्यक्ष करों से प्राप्ति कुल कर आय के प्रतिशत के रूप में धीरे-धीरे अपना महत्त्व खोने लगी है। नए प्रस्ताव खज़ाने में पर्याप्त राजस्व जुटाने में विफल रहे हैं, लेकिन वे संभावित निवेशकों को उत्पादक क्षेत्र से दूर रखने व नियोजित निवेश को रीयल एस्टेट एवं जुड़े क्षेत्र में निवेश से दूर करने में सफल रहे हैं। लागू होने से लेकर अब तक संपत्ति शुल्क का केवल साढ़े पाँच करोड़ रुपए का ही योगदान रहा है। वर्ष 1956-57 में बोनस शेयर पर कर की माँग केवल 26.5 लाख रुपए और फरवरी 1958 तक 164.4 लाख ही थी। वर्ष 1958-59 के दौरान इस मद में राजस्व का अनुमान 1.5 करोड़ रुपए रखा गया है। अनिवार्य जमा योजना के तहत सरकार 31 दिसंबर, 1957 तक 4 करोड़ रुपए ही वसूल कर सकी, जबकि अनुमान 30 करोड़ रुपए का था। वर्ष 1958-59 के बजट अनुमान के अनुसार व्यय कर, उपहार कर और संपत्ति कर से 18 करोड़ रुपए से अधिक आने की संभावना नहीं है। इसी तरह विकास रियायत सरकार को सहायता पहुँचाने के बजाय कंपनियों के ख़र्च योग्य लाभ के गंभीर बहाव का कारण बन सकती है।

संसाधनों की स्थिति यह संकेत करती है कि 7,200 करोड़ रुपए के योजना व्यय को हासिल करने के योग्य हम नहीं हैं। इसलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सरकार अभी भी वर्ष दर वर्ष अधिक धन जारी करने की योजना बना रही है। वे अपने सर्वेक्षणों एवं बयानों में जो फ़रमाते हैं, उसे सरकार के क्रियाकलापों में लागू करने से इनकार करते हैं। योजना के 'सार' की बात तो करते हैं, लेकिन उसे कहीं भी निर्धारित या परिभाषित नहीं करते। 1958-59 के बजट प्रस्ताव में योजना परिव्यय 1017 करोड़ रुपए रखा गया है। संकेत इस बात के हैं कि राजस्व एवं अन्य स्रोत अनुमान से कम रहेंगे, क्योंकि इन्हें तय करते समय न तो पिछले रुखों को ध्यान में रखा गया है और न आज की परिस्थितियों को।

सरकार के पास एक ही तरीक़ा उपलब्ध है और वह है नोट का छापाख़ाना। पिछले बजट अनुमान में 275 करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था थी, लेकिन संशोधित अनुमान में इसे 580 करोड़ रुपए कर दिया गया है। इस तरह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पहले दो वर्ष में जो 600 करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था का अनुमान था, वह अब बढ़कर 702 करोड़ रुपए हो गया है।

अगले बजट में 205 करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रस्ताव है। यह

निश्चित रूप से 300 करोड़ रुपए तक जाएगी। सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि ने पहले ही मूल्य स्तर को बढ़ा दिया है। अगले वर्ष के दौरान आयात पर कठोर नियंत्रण के कारण कोई संकुचनकारी बल नहीं लगेगा। मूल्य में तेजी से वृद्धि होगी। मूल्य में बढ़ोतरी और उत्पादन में गिरावट, मिलों का बंद होना और तेज़ी से बेरोज़गारी बढ़ना एक ऐसी स्थिति पैदा कर देगी, जो पूरी अर्थव्यवस्था के ढाँचे को तबाह कर देगी। यदि सरकार फिर भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना को, जो पहले ही कई बिंदुओं एवं चरणों पर टूट चुकी है, आगे ले जाना चाहती है तो सिर्फ़ अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए। ऐसा इसलिए कि देश में हुए पिछले चुनाव में सत्ताधारी पार्टी ने अगले पाँच साल में बहुत कुछ करने की आशा और उम्मीदें जगा दी हैं। और यह उनके लिए राजनीतिक आत्महत्या की तरह होगी कि वे आवश्यक हिम्मत जुटा सकें और जनता को यह बता सकें कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना को, जिसकी उपलब्धियों को लेकर वे बहुत आशावान हैं, अर्थव्यवस्था के बिखर जाने के गंभीर खतरे को उठाए बिना आगे नहीं ले जा सकते।[2]

---

2. ए.डी.श्रॉफ : प्रेस्टीज बजट (मार्च 1958): फोरम ऑफ़ फ्री एंटरप्राइज़, बॉम्बे।

19

कार्यक्रम और प्राथमिकताएँ

योजना मात्र भौतिक एवं वित्तीय संसाधनों और परिव्ययों के बीच संतुलन बिठाने का नहीं, बल्कि अनिवार्यत: प्राथमिकताओं को सही क्रम तय करने का नाम है। दूसरी योजना को बनानेवालों ने इस मामले में न तो यथार्थवाद दिखाया, न ही आदर्शवाद। पहली पंचवर्षीय योजना ने कृषि विकास के कार्यक्रमों को उच्चतम प्राथमिकता दी थी, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक, ख़ास तौर पर आधारभूत और भारी उद्योगों से संबंधित परियोजनाओं की ओर ध्यान मोड़ दिया गया।

कृषि

कृषि एवं सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों पर पहली पंचवर्षीय योजना में 15.1 प्रतिशत के परिव्यय को घटाकर दूसरी पंचवर्षीय योजना में 11.8% कर दिया गया। इस मद के तहत कुल 568 करोड़ रुपए का वित्तीय प्रावधान प्रस्तावित किया गया है, जिसमें से केवल 341 करोड़ रुपए कृषि विकास के लिए रखे गए हैं। यहाँ तक कि कृषि विकास मद के तहत जो 341 करोड़ रुपए रखे गए हैं, उनमें से केवल 170 करोड़ रुपए कृषि कार्यक्रमों के लिए ख़र्चे जाने हैं, बाक़ी अन्य क्षेत्रों जैसे कि पशुपालन, वन आदि संबंधी योजनाओं के लिए रखे गए हैं। यदि 170 करोड़ रुपए के प्रावधान वाली योजनाओं का विश्लेषण किया जाए तो पता चलता है कि 120 करोड़ रुपए खाद्य उत्पादन संबंधी कार्यक्रमों के लिए हैं।

पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए 196 करोड़ रुपए आबंटित हुए जोकि 'कृषि कार्यक्रमों' के मद के तहत रखे गए कुल 240 करोड़ रुपए का 81.7 प्रतिशत था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए 170 करोड़ रुपए का प्रस्ताव है, जोकि इसी मद के तहत 341 करोड़ के कुल परिव्यय का 49.9 प्रतिशत है। प्रतिशत के आधार पर पहली योजना के मुक़ाबले दूसरी योजना में 8.4 से 3.5 की गिरावट है।

ग़लत आर्थिक समझ, ख़राब आँकड़े और पूर्वज्ञान का अभाव ही आयोग का मार्गदर्शक रहा होगा, जिसके कारण इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को बुरी तरह से नज़रंदाज़ किया गया। वस्तुत: जल्दबाज़ी में चीज़ों का साधारणीकरण और अधिक सरलीकरण करना, साथ ही पाँच वर्ष की अवधि को न देखकर केवल एक-दो साल को ही दृष्टि में रखना आयोग की ग़लती कही जा सकती है। जब पहली योजना तैयार की गई तो भारी खाद्य संकट की स्थिति थी, इसलिए आयोग ने समस्त रूप से खाद्य उत्पादन पर ज़ोर डाला। लेकिन जब दूसरी पंचवर्षीय योजना बन रही थी तो उस समय खाद्य की स्थिति बेहतर थी। कुछ नियोजित, कुछ ग़ैर-नियोजित कारणों से आगामी वर्षों में भी फ़सलें अच्छी हुईं। आयोग वास्तविक और संयोगी (दैवी) कारणों का भेद समझ नहीं पाया और खाद्य उत्पादन के प्रति लापरवाह हो गया। इसलिए अपनी प्राथमिकताओं को पुन: नियत करते हुए कृषि का स्थान नीचे गिरा दिया।

दूसरी योजना की घोषणा के दो वर्षों के भीतर ही खाद्य स्थिति के संकट ने दिखा दिया है कि आयोग कृषि क्षेत्र की ज़रूरतों का मूल्यांकन करने में बुरी तरह से असफल रहा है। 'जहाँ पहली योजना के नियोजकों पर प्रकृति उनके अनावश्यक निराशावाद के कारण हँसी होगी, वही अब यह मानने की कोई वजह नहीं है कि इस बार वह फिर से उनके ग़लत आशावाद के कारण नहीं हँसेगी।"[1]

इस विषय में आयोग की असफलता ने पूरी दूसरी योजना को अस्तव्यस्त कर दिया है। खाद्य समस्या योजना की कमज़ोर कड़ी साबित हो रही है। वर्ष 1957 के शुरू में जब क़ीमतें अचानक से चढ़ गईं और पूरे देश में खाद्य की कमी महसूस की जाने लगी, तब सरकार तथा आयोग की समझ में आया कि उनके निष्कर्ष गड़बड़ा गए हैं। क़ीमतों को नियंत्रण में रखने के लिए कई अल्पावधि के उपाय किए गए। रिज़र्व बैंक ने बैंकों पर अनाजों के बजाय 50,000 रुपए से अधिक ऋण देने से बचने के निर्देश जारी किए। उचित मूल्य की दुकानें खोली गईं। अमरीका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में खाद्यान्नों के आयात के प्रबंध किए गए। ये तदर्थ उपाय सरकार के उन उपायों से भिन्न नहीं थे, जो सरकार समय-समय पर अपना रही थी और जिनके विषय में हम पूर्व अध्यायों में चर्चा कर चुके हैं। उनका प्रभाव अस्थायी था।

खाद्यान्न जाँच समिति—पिछले वर्ष के प्रारंभ में सरकार ने एक समिति नियुक्त की, जिसको निम्न संदर्भों में कार्य करना था :

1. वर्तमान खाद्य स्थिति की समीक्षा और 1955 के लगभग मध्य से बढ़ती क़ीमतों के कारणों का परीक्षण;
2. अगले कुछ वर्षों में माँग एवं उपलब्धता की संभावित प्रवृत्तियों का मूल्यांकन,

---

1. सी.एन. वकील : प्लानिंग फॉर एन एक्स्पेंडिंग इकोनॉमी

3. क़ीमतों के ऐसे स्तर को निश्चित करने के सुझाव देना, जो उपभोक्ताओं के हितों और अर्थव्यवस्था में तर्कसंगत लागत संरचना बनाए रखने के लिए उत्पादकों को प्रोत्साहन दे।

समिति ने खाद्य उत्पादन और वितरण संबंधी सरकारी नीति का विश्लेषण किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि शुरू से अंत तक यह जल्दबाज़ी और अनिश्चितता का शिकार है।

बदलते लक्ष्य—दूसरी पंचवर्षीय योजना में मूलत: पहली पंचवर्षीय योजना के 76 लाख टन खाद्यान्नों के उत्पादन के मुक़ाबले 15 प्रतिशत या एक करोड़ टन की वृद्धि का प्रावधान था, जबकि 1955-56 में 6.5 करोड़ टन का अनुमानित उत्पादन रखा गया था। राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुसार इन लक्ष्यों का स्तर निम्न था, इसलिए इन्हें 1.55 करोड़ टन अतिरिक्त खाद्यान्नों तक बढ़ा दिया गया। इन लक्ष्यों को निम्न योजनाओं के तहत पूरा किया जाना था। (पृष्ठ 213 पर तालिका देखें)

ये लक्ष्य मनमाने ढंग से तय किए गए और जबकि राष्ट्रीय विकास परिषद् ने भौतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ख़र्चे का प्रबंध किया, अतिरिक्त की पूर्ति के लिए वित्तीय आवंटन का इंतज़ाम नहीं किया गया। समिति राज्य तथा अन्य संबद्ध लोगों के विचारों को सुनिश्चित करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची कि दूसरी पंचवर्षीय योजनावधि के दौरान लक्ष्यों का मुश्किल से 60 प्रतिशत हिस्सा पूर्ण किया गया। हालाँकि प्रधानमंत्री और राष्ट्रीय विकास परिषद् इस बात पर ज़ोर देते हैं कि लक्ष्यों की पूर्ति लोगों को यह बताए बग़ैर की जानी चाहिए कि ऐसा किस तरह किया जाएगा।

तालिका

खाद्यान्नों के अतिरिक्त उत्पादन के योजनावार लक्ष्य

योजना	अतिरिक्त उत्पादन	
	मी. टन	प्रतिशत
1. बड़ी सिंचाई	3.02	19.5
2. लघु सिंचाई	1.89	12.2
3. खाद एवं उर्वरक	3.77	24.3
4. उन्नत बीज	3.42	22.0
5. भूमि सुधार एवं विकास	0.94	6.1
6 उन्नति कृषि कार्य प्रणालियाँ	2.47	15.9
कुल	15.51	100

अभी तक लक्ष्यों को अखिल भारतीय स्तर के आधार पर तय किया जाता है और वास्तविक उत्पादकों को, जिसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए काम करना है, उससे न तो परामर्श लिया जाता है, न ही जानकारी दी जाती है। ऐसा कोई तंत्र नहीं है, जो लक्ष्यों की सफलतापूर्ण पूर्ति के लिए हर किसान की ज़रूरतों का समुचित विचार करे। निश्चित रूप से किसानों पर उत्पादन की ज़ोर-ज़बर वाली सोवियत विधि को थोपे बग़ैर यदि हम पूरे काम का विकेंद्रीकरण कर लें तो हम उत्पादकों को उनके भविष्य संबंधी योजनाओं के तय करने की प्रक्रिया के साथ जोड़ सकते हैं।

समन्वयन की कमी—अभी तक सामुदायिक विकास, खाद्य एवं कृषि तथा सिंचाई मंत्रियों में कोई समन्वयन नहीं है। यहाँ तक कि लघु सिंचाई के कार्यक्रम भी विभिन्न विभागों द्वारा टुकड़ों में पूरे किए जाते हैं। यदि गाँव के स्तर पर विभिन्न विभागों में समुचित समन्वयन हो तो निम्नतम हानि और अधिकतम सफलता मिलेगी। पहली पंचवर्षीय योजना का पुनर्निरीक्षण करते समय यह कहा गया है कि लघु सिंचाई के कार्यक्रमों से कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान योजना के प्रारंभिक दो वर्षों के कार्यों और रुझानों के परीक्षण के बाद समिति भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की संभावित उपलब्धियों के बारे में इसके ये अनुमान हैं—

तालिका

योजना	उत्पादन लक्ष्य (मि. टन)	उत्पादन लक्ष्यों के प्रतिशत में उपलब्धि	उत्पादन में अतिरिक्त वृद्धि (मी. टन)
1. लघु सिंचाई	1.89	95	1.80
2. उर्वरक एवं खाद	3.77	80	3.02
3. उन्नत बीज	3.42	60	2.05
4. भूमि उद्धार एवं विकास	0.94	75	0.71
5. उन्नत कृषि प्रणालियाँ	2.47	50	1.24
6. बड़ी सिंचाई	3.02	50	1.51
कुल	15.51	66.6	10.33

लघु सिंचाई योजनाओं का महत्त्व—योजना आयोग ने हाल ही में विभिन्न योजनाओं से संबंधित लक्ष्यों का पुनर्निरीक्षण किया है। 21 अप्रैल, 1958 को संसद् सदस्यों की परामर्शदाता समिति को उपलब्ध किए गए एक नोट के अनुसार बड़े सिंचाई

के कार्यक्रमों द्वारा अतिरिक्त उत्पादन का लक्ष्य 26.6 लाख टन और लघु सिंचाई के कार्यक्रमों द्वारा 24.6 लाख टन निर्धारित किया गया है। इससे लघु सिंचाई के महत्त्व के प्रति बढ़ती जागरूता का भान होता है। खाद्य उत्पादन की वृद्धि में उनकी बहुत भूमिका हो सकती है। लेकिन उनके विकास पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा। खाद्य एवं कृषि तथा सामुदायिक विकास मंत्रालयों की मंत्री स्तरीय समन्वयन समिति ने राजस्थान के अतिरिक्त सभी राज्यों में लघु सिंचाई के कार्यक्रमों में ख़र्चों की कमी पर चिंता जताई है।[2]

हमने पहले भी इस तथ्य का संदर्भ दिया है कि विभिन्न योजनाओं पर विस्तार से विचार बिल्कुल नहीं किया गया है या फिर योजना के एक-दूसरे से जुड़े हिस्सों को उचित रूप से लागू नहीं किया जा रहा है। सिंचाई दरें मुख्यत: लागत के सिद्धांत पर आधारित होती हैं, न कि किसानों की चुकाने की क्षमता या इच्छा पर। समिति ने सुझाव दिया था कि सभी परियोजनाओं की लागत का सामूहिक कोष बनाकर एकरूपता के आधार पर समान प्रणालियों के ज़रिए 'शुद्ध लाभ' का सिद्धांत अपनाया जाए। यदि जल की दरों पर सब्सिडी दी जाए तो देश, खाद्य उत्पादन में वृद्धि करके लंबे समय का फायदा उठा सकता है। इससे खाद्यान्नों के निर्यात के लिए ज़रूरी विदेशी मुद्रा की तुरंत बचत होगी। कृषि उत्पादन में वृद्धि महँगाई और मंदी की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखकर विकासशील अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाएगी।

सिंचाई के कार्यक्रमों के मामलों में स्थानीय लोगों से भी सलाह लेनी चाहिए। कुछ मामलों में नालियाँ इस तरह से बनाई जाती हैं कि उस जगह की सारी भूमि सिंचाई सुविधा का लाभ नहीं उठा पाती। जिन खेतों में कुओं य़ा टंकियों के माध्यम से पानी की सुविधा उपलब्ध है, उनमें नहरें ले जाने और बाकियों को भूल जाने का कोई फ़ायदा नहीं है। वास्तव में लघु, मध्यम और बड़ी सिंचाई कार्यक्रमों में समन्वयन होना चाहिए। वे एक-दूसरे की पूरक हों ना कि बाधक। बढ़ी सिंचाई योजनाओं का एक हानिकारक प्रभाव यह है कि जगह-जगह पानी का जमाव हो रहा है जोकि 'दोषपूर्ण निकासी, योजना और आकार' के कारण हो सकता है। पंजाब में पानी के जमाव के कारण 20 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षेत्र खेती के योग्य नहीं रहा। इस समस्या की ओर दूसरी पंचवर्षीय योजना में बहुत कम ध्यान दिया गया है।

बाढ़ नियंत्रण योजनाएँ भी कृषि पर संभावित प्रभावों को ध्यान में बिना रखे बनाई गई हैं। बिना जलद्वार बनाए सैकड़ों मीलों तक बंध बना दिए गए हैं। इसलिए क्षेत्र की पूरी निकासी व्यवस्था गड़बड़ा गई है। कुछ इलाकों में जहाँ ये योजनाएँ लागू की गई हैं, लोगों की शिक़ायत है कि ये बंध कोई बचाव कार्य नहीं कर रहे, केवल बंजर और खेती

2. हिंदुस्तान टाइम्स, डेल्ही, 22 अप्रैल,1954।

के लिए अयोग्य ज़मीन को घेरे हैं।

लघु सिंचाई योजनाओं को 'गर्व का स्थान' नहीं मिल रहा, जिसकी वे हक़दार हैं। राज्य सरकारों द्वारा लघु सिंचाई कार्यक्रमों के लिए अलग विभाग के गठन और पर्याप्त धन का आवंटन वांछनीय है। यदि सरकार खुद माल की उपलब्धता में तकनीकी अवरोध और कठिनाइयाँ दूर कर दे तो लोगों द्वारा स्वयं कुओं, टंकियों, और सिंचाई नालियों का निर्माण हो सकता है। नए निर्माण और मरम्मत के साथ-साथ पुराने कार्य भी चलते रहे, यह भी ज़रूरी है।

उर्वरक एवं खाद—उर्वरक एवं खाद भी प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। अभी तक इनकी माँग देसी रासायनिक खाद की माँग को पार कर चुकी है। वर्तमान में खाद का बहुत ही अंधाधुंध इस्तेमाल हो रहा है। किसानों को इन खादों का प्रयोग सिखाने के लिए कोई तंत्र नहीं है। वह तो अपने अनुभव से ही सीख रहा है। दूसरी योजनावधि में खादों की माँग और बढ़ जाएगी और उत्पादन में वृद्धि के बावजूद खादों का निर्यात होता रहेगा। कुछ और खादों की फैक्टरी लगाना अच्छा रहेगा और यदि ज़रूरत हुई तो निजी क्षेत्र को यह काम सौंपा जा सकता है।

दूसरी योजना ने खादों की माँग को कम करके आँका था, जबकि नियोजित सरकारी प्रयासों के अभाव में इसकी वृद्धि की संभावना थी। खाद्य एवं कृषि मंत्रालयों के अनुसार यह लक्ष्यों से आगे चल रही है। 1957-58 और 1958-59 में क्रमश: 13.4 तथा 14.5 लाख टन सल्फेट व अमोनिया की ज़रूरत का अनुमान है, जबकि योजना में लक्ष्य 9.5 तथा 12 लाख टन का रखा गया है।

जागीर संबंधी संसाधनों के विकास पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है, जैसे रात्रि मृदा, फार्म की खाद, वानस्पतिक खाद, हरी खाद आदि। समिति ने सिफ़ारिश की है कि कृषकों को आधिकाधिक ऑयल केक, फिश मन्योर, बोन मील और सुपर सल्फेट का इस्तेमाल करना चाहिए, क्योंकि इनकी आपूर्ति उतनी कम नहीं है, जितनी नाइट्रोजन खादों की।

खाद्य जाँच समिति द्वारा 1957 में अपनी रिपोर्ट देने के बावजूद सरकार ने इसकी सिफ़ारिशें लागू करने के लिए कोई क़दम नहीं उठाया है।

वर्ष 1958-59 की राज्य योजनाओं में खाद्य उत्पादन पर ज़ोर दिया जाना था, लेकिन बॉम्बे के अतिरिक्त किसी भी राज्य ने कृषि उत्पादन में महत्त्वपूर्ण वृद्धि की कोई योजना नहीं बनाई। दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष में कृषि विकास के संशोधित अनुमान 52 करोड़ रुपए थे, जबकि प्रथम योजना यानी 1955-56 में यह 79.5 करोड़ थे। वर्ष 1957-58 में 77 करोड़ का बजट था यानी 1955-56 के संशोधित आँकड़ों से 2.5 करोड़ कम। वर्ष 1958-59 के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन ख़र्चों में कोई ख़ास बढ़ोतरी नहीं आई है।

प्राथमिकताओं का पुनर्नियमन—दूसरी योजना में मितव्ययिता और वित्तीय लक्ष्यों को नीचे लेने की ज़रूरत को सभी मानते हैं, लेकिन यह नकली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देगा, यदि हम खाद्य उत्पादन पर व्यय कम करें और सिविल प्रशासन और भारी उद्योगों पर व्यय अधिक करें। यदि ऐसा हुआ है और साथ ही दूसरी योजना में देश की अर्थव्यवस्था के स्वाभाविक विकास के लिए प्राथमिकताएँ बिगड़ी भी हैं, तो वो इसलिए, क्योंकि आयोग खाद्य एवं कृषि उत्पादन की महत्ता समझने में असफल रहा है। यह केवल देशभक्ति या प्रतिष्ठा के कारण नहीं है कि हम खाद्य में आत्मनिर्भरता की नीति अपनाने की वक़ालत करते हैं, यह नीति अन्य क्षेत्रों में भी हमारी प्रगति को तय करेगा। भोजन तो सभी मनुष्यों की प्राथमिक और अपरिहार्य आवश्यकता है, इसे अपने प्रत्यक्ष उत्पादन से पैदा करना चाहिए या फिर उन लोगों को दी सेवाओं के बदले में प्राप्त किया जाना चाहिए, जो खाद्य उत्पादन में लगे हुए हैं और जो अतिरिक्त उत्पादन द्वारा दूसरों को खिला सकते हैं। यदि यह विनिमय आर्थिक रूप से पारस्परिक लाभ एवं स्वेच्छा पर आधारित बनाना है तो कृषक को अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त पैदा करना होगा और सेवाओं एवं वस्तुओं का ख़र्चा भी उठाना होगा। हो सकता है कि औपनिवेशिक या राज्य नियंत्रित समाजवादी तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में क़ीमत तंत्र, अनिवार्य सरकारी ख़रीद व अन्य सुधारों के चलते प्राथमिक उत्पादक को अपने उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा छोड़ना पड़े। ऐसी स्थिति सामाजिक नज़रिए से वांछनीय नहीं है। एकमात्र इलाज़ उत्पादन बढ़ाना है।

यदि खाद्य उत्पादन के बारे में सरकारी संस्थाओं के आँकड़े विश्वसनीय हैं तो कहा जा सकता है कि उत्पादन बढ़ रहा है। लेकिन तब भी सामान्य तौर पर खाद्य पदार्थों की कमी है और उनकी क़ीमतें बढ़ी हैं। खाद्यान्नों का आयात जोकि वर्ष 1955-56 के दौरान लगभग रुक ही गया था, अगले वर्षों में चढ़ गया। इसका एक ही कारण है कि हमारी उत्पादन क्षमता पर्याप्त रूप से बढ़ाई नहीं गई है।

उत्पादन दर की वृद्धि जनसंख्या दर की वृद्धि के आनुपातिक नहीं है। भूमि और औद्योगीकरण पर दबाव घटाने का मुद्दा अंतरक्षेत्रीय प्रबंधन का है। यह वांछनीय हो सकता है, पर यह आधारभूत समस्या नहीं है। आज प्रति हज़ार भारतीयों पर 706 लोग कृषि और सहायक कार्यों में लगे हुए हैं। अगर इस संख्या को 500 तक कर दिया जाए तो निश्चित रूप से इन 500 लोगों की स्थिति बेहतर हो जाएगी, परंतु इसके लिए 500 लोगों को बाक़ी 500 लोगों के लिए पर्याप्त उत्पादन करना पड़ेगा, बल्कि ज़्यादा काम करना पड़ेगा, क्योंकि जो 206 लोग कृषि से हटकर निर्माण उद्योग में चले गए हैं, उनको कच्चा माल उपलब्ध कराना पड़ेगा, जोकि अधिकतर कृषिजन्य ही होगा। आज खेतों में काम कर रहे 706 व्यक्ति बाक़ी 294 व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त भोजन नहीं उत्पादित कर पा रहे। यह विदेशों से आयात करना पड़ रहा है। दूसरी योजना में इन 706 व्यक्तियों

की उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए कोई प्रावधान नहीं है, जिससे कि सभी के पेट भरने के लिए पर्याप्त भोजन की व्यवस्था हो सके।

यदि कृषकों के पास बेचने लायक अतिरिक्त न हो तो निर्माताओं के लिए भी बाज़ार नहीं होगा। हो सकता है कि उनकी परस्पर निर्भरता अप्राकृतिक परिस्थितियाँ पैदा करके बनाई जा रही हों। सरकार कृषकों से खाद्यान्न लेकर उन्हें ऐसे सरकारी दामों पर निर्मित वस्तुएँ ख़रीदने पर मज़बूर कर सकती, जो समता क़ीमतों से ऊँचे हो सकते हैं। इसमें इस्पात, सीमेंट, उर्वरक आदि नियंत्रित वस्तुएँ आती हैं। उन सभी देशों में जहाँ कृषि को उद्योगों की तुलना में नज़रंदाज़ किया गया, सामान्य जीवन स्तर नीचे चला गया। यदि ब्रिटेन और कुछ अन्य पश्चिमी देश अपने उद्योग चला पाए तो वह कृषि अतिरिक्त के कारण था, जो उन्होंने बलपूर्वक औपनिवेशिक देशों से हासिल किया था। भारत की स्थिति अलग है।

समृद्ध कृषि एक विकसित अर्थव्यवस्था की अनिवार्य शर्त होने के कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना के सभी कार्यक्रम इसी उद्देश्य को नज़र में रखकर बनाए जाने चाहिए थे। लेकिन हम पाते हैं, सिंचाई, पशुपालन, वनरोपण आदि कार्यों को भी साधन नहीं साध्यों की तरह लिया गया है। उनका कृषि उत्पादन के साथ संभावित रिश्ते के विषय में नहीं सोचा जाता। ऐसा ही मामला सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तारण सेवा से जुड़े कार्यक्रमों का है। यह कृषि विकास के कार्यक्रमों का एकात्म हिस्सा नहीं है। दोनों कार्यक्रम अलग मंत्रालयों से संचालित होते हैं और मुश्किल से ही इनमें कोई समन्वयन होता है।

भूमि सुधार—खाद्य और कृषि उत्पादन की वृद्धि की पृष्ठभूमि में भूमि सुधारों को न चला पाना दूसरी पंचवर्षीय योजना की सबसे बड़ी असफलता रही। राज्यों में भूमि सुधारों की प्रगति असंतोषजनक रही है और आयोग ने पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना की दोनों समीक्षाओं में राज्यों को उनकी लापरवाही के लिए बहुत लताड़ा था। जहाँ तक कि मध्यवर्ती संस्थाओं को समाप्त करने की बात है, एक आम सहमति बन गई थी और ज़्यादातर राज्यों ने पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान ही इससे संबंधित क़ानून पारित कर दिया था। परंतु भूमि की अधिकतम सीमा और पुनर्वितरण के निर्धारण का मुद्दा इसमें नहीं लिया गया। यह उन निहित स्वार्थों के कारण होगा, जो राज्य सरकारों को नियंत्रित करती हैं या फिर इन माँगों के आधार में, जो आर्थिक सिद्धांत काम करते हैं, उनके प्रति क़ोई निष्ठा नहीं है। अभी तक इस समस्या के सामाजिक न्याय के पहलू पर ही महत्त्व दिया जाता रहा है। भूमि धारक भू-संपत्तियों में इसके क्रियान्वयन का उचित विरोध करते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार की संपत्तियों को इससे बाहर रखा गया है। शहरी क्षेत्रों में सामाजिक न्याय की ग्रामों के मुक़ाबले कम ज़रूरत नहीं है। जोतों की अधिकतम सीमा के प्रावधान का कोई महत्त्व नहीं रह जाता, यदि अंत में सामूहिक रूप से किसी सहकारी संस्था का ही निर्माण करना है। आयोग का दोनों कार्यक्रमों पर ज़ोर

विरोधाभासी है। भूमि का समाजीकरण करना है तो सामाजिक न्याय की पूर्ति स्वयमेव हो जाएगी, यदि उत्पादन को इस आदर्श के तहत वितरित किया जाए।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में एक एकल एकीकृत पट्टेदारी का कोई प्रताव नहीं है। किरायों को नियमित करने से लेकर सहकारिता तक सभी प्रकार के सुधारों की इसने वक़ालत की है। इसके पास किसानों या खेतिहरों का भूमि के साथ क्या रिश्ता होता है, इसकी कोई स्पष्टता नहीं है। यदि किसान और भूमि का रिश्ता स्वीकार कर लिया जाता है तो जोतों, किराये के नियमन, पट्टेदारी को तय करना, पुनर्ग्रहण का अधिकार, भूमि बंधक बैंकों की स्थापना आदि कार्यक्रम चलाने पड़ेंगे। लेकिन यदि आयोग पारिवारिक खेती के बदले गुट खेती, सहकारी खेती, गाँव द्वारा खेती भूमिसेना द्वारा खेती या सामूहिक खेती को लक्ष्य बनाता है तो बदलाव की सारी प्रक्रिया अलग होगी।

सामूहिक खेती—पहली पंचवर्षीय योजना ने सुझाव दिया था कि 'सहकारी ग्राम आंदोलन' एक ऐसा 'बेहतर विस्तृत लक्ष्य है, जिसकी दिशा में ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकसित होनी चाहिए।' आचार्य विनोबा भावे का ग्रामदान आंदोलन इस दिशा में एक छोटा प्रयास है। दूसरी पंचवर्षीय योजना ने ऐसे उपायों का सुझाव दिया था, जिनका लक्ष्य था 'सहकारी क्षेत्र का तब तक विस्तार, जब तक कि गाँव की सारी ज़मीन समुदाय की सामूहिक ज़िम्मेदारी नहीं बन जाती।'[3] वर्तमान नीति को संक्रमणकालीन माना जाता है। इसलिए इसके साथ 'स्वैच्छिक', 'सहकारी व्यवस्था छोड़ने का अधिकार' या 'अपने हित को हस्तांतरित करने का अधिकार' जैसे वाक्यों को महत्त्व देने का कोई लाभ नहीं। यह ध्यान देने योग्य है कि आयोग द्वारा प्रायोजित भूमि सुधारों संबंधी कार्यक्रमों में सहकारी खेती का कार्यक्रम सबसे अधिक विरोध का सामना कर रहा है। जुलाई, 1956 में मसूरी में आयोजित 'राज्य मंत्रियों का सहयोग के लिए सम्मेलन' ने दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान हर राष्ट्रीय विस्तारण खंड में एक सहकारी खेत का प्रावधान रखने की सिफ़ारिश की थी। एक प्रतिनिधि दल को कृषक सहकारी व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए चीन भी भेजा गया था। इस दल ने अपनी रिपोर्ट मई, 1957 में सौंपी। हालाँकि दल ने चीन की सहकारी व्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित होकर सहकारी खेती को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सभी रोगों का रामबाण इलाज बताया था; लेकिन इसके दो सदस्यों ने गहरा विरोध दर्ज किया था। उन्होंने चीन की सरकार द्वारा सहकारी युग में प्रवेश करने के तरीकों के स्पष्ट उदाहरण देते हुए कहा है कि इस बारे में कोई शक नहीं है कि वे लोकतांत्रिक परंपराओं के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

दल ने स्वीकार किया है कि देश में सहकारी खेती के ख़िलाफ़ कड़ा विरोध है। यह लिखता है कि 'पिछले कुछ महीनों में चर्चा के दौरान कई भारतीय चिंतकों, प्रशासकों

---

3. द सेकंड फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 206।

और जनमत का नेतृत्व करनेवालों ने सहकारी खेती के कार्यक्रमों की व्यावहारिकता पर हमारे सामने गहरे संदेह व्यक्त किए हैं। कुछ लोग हैं—और वे हमारे राष्ट्रीय जीवन में मुख्य भूमिका भी निभाते हैं—उनका मानना है कि सहकारी खेती हमारे लोगों की विशिष्ट योग्यता के हिसाब से परकीय हैं। हमारे किसानों का अपनी ज़मीन से गहरा संबंध होता है। उन्हें भी लगता है कि सहकारी खेती को किसी न किसी स्तर की ज़ोर-ज़बरदस्ती किए बिना नहीं लाया जा सकता, जो कि किसी लोकतांत्रिक देश में नहीं होना चाहिए। सहकारी खेती का एक स्वाभाविक परिणाम बहुत ही उच्च स्तर का प्रबंधन और संस्थागत समाज होगा, जिससे किसान का व्यक्तित्व और संसदीय लोकतंत्र का विकास अवरुद्ध होगा। उन्हें यह भी डर है कि सहकारी खेती में किसान उपक्रम का प्रोत्साहन खो देगा, इसलिए उत्पादन घट सकता है तथा क़ीमतें भी बढ़ सकती हैं। इस संदर्भ में वे देश में चल रही सहकारी खेती के कुछ उदहारण भी देते हैं। इसलिए उनका मत है कि एक समुचित विस्तारण संगठन के विकास तथा ऋण एवं आपूर्ति के लिए सेवा सहकारी संस्था को प्रोत्साहन, साथ ही ऐसी विपणन व्यवस्था का निर्माण, जिससे सहकारी खेती के अधिकतर लाभ कृषकों को मिलें, लागत कम हो, क्षमता बढ़े, उत्पादन को प्रोत्साहन मिले, ऐसा रास्ता सही होगा। इस मामले में वे जापान का भी उदाहरण देते हैं।'[4]

यहाँ हमारा सहकारी खेती के सिद्धांत और व्यवहार पर विस्तार से चर्चा का कोई इरादा नहीं है। परंतु ऊपर दिए उद्धरण में भारतीय चिंतकों, प्रशासकों और जनमत का नेतृत्व करनेवालों के विचार निहित हैं। दुर्भाग्यपूर्ण है कि योजना आयोग उनके विचारों की पूर्ण अवहेलना करे और हिमालय के पार से होने वाले दुष्प्रचार पर विश्वास करे। यह हिमालयन ब्लंडर साबित हो सकता है। भारत में भूमि-व्यक्ति अनुपात बड़े पैमाने एवं मशीनीकृत खेती के ख़िलाफ़ जाता है। आयोग भी मानता है कि 'आज के विकास की कुछ परिस्थितियों को छोड़कर कृषि में मशीनीकरण के संभावित लाभों को मशीनीकरण से उपजी बेरोज़गारी के सामाजिक नुक़सान समाप्त कर देंगे।'[5]

यदि हमारा लक्ष्य प्रति एकड़ उत्पादन उच्चतम स्तर पर लाना और बेरोज़गारी पर नियंत्रण रखना है तो हमें सहकारी खेती से बचना होगा। यदि मशीनें बड़े सहकारी खेतों पर इस्तेमाल नहीं भी की जा रहीं तो भी वर्तमान अल्प रोज़गारी की स्थिति बेरोज़गारी का रूप ले लेगी। जब तक हम वैकल्पिक नौकरियाँ नहीं दे पाते, तब तक छद्म बेरोज़गारी को खुले में लाना अक्लमंदी नहीं होगी। हमें कुछ ऐसे तरीक़े ढूँढ़ने चाहिए, जिससे अल्प रोज़गारी पूर्ण रोज़गारी में बदल जाए। वे पारिवारिक खेतों पर गहन कृषि के माध्यम से ही प्राप्त किए जा सकते हैं। इससे उत्पादन भी अधिकतम होगा, जो सभी औद्योगिक

4. रिपोर्ट टु द इंडियन डेलीगेशन टु चाइना ऑन अग्रेरियन कोऑपरेटिव्ज़, पृष्ठ 125।
5. सेकंड फाइव ईयर प्लान, पृष्ठ 113।

विकास का आधार है।

सैद्धांतिक कारणों को छोड़ भी दें तो यदि आयोग सहकारी खेती की उपयोगिता पर यक़ीन कर भी लेता है तो वर्तमान समय इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में कोई प्रयोग करने के लिए ठीक नहीं है। अभी तक हमारे पास बहुत ही कम सेवा सहकारी संस्थाएँ हैं। इन सहकारी संस्थाओं के काम का अनुभव अच्छा नहीं रहा है। उत्पादन के क्षेत्र में सहयोग हमेशा मुश्किल रहता है और कृषि उत्पादन के क्षेत्र में, जहाँ विभिन्न कार्यों का कोई सामान्य मापक नहीं, निश्चित किया जा सकता है, यह काम और भी कठिन हो जाता है। हमारे पास अभी भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिसके तहत कृषकों की ऋण की ज़रूरत को पर्याप्त रूप से पूरा किया जा सके। अभी भी इसका बहुत बड़ा हिस्सा गाँव के महाजन से आता है, जिसका काम सहकारी व्यवस्था आने के बाद स्वाभाविक रूप से ख़त्म हो जाएगा। हमें सूदखोरों से कोई प्यार नहीं है, लेकिन यह भी सच है कि किसानों को जब बुरी तरह से ऋण की ज़रूरत होती है तो वही इसकी आपूर्ति करता है। सहकारी कृषि संस्थाएँ सरकार पर असहनीय बोझ डाल देगीं।

उधारी एवं विपणन सहकारी संस्थाएँ—दूसरी पंचवर्षीय योजना के तहत सहकारी संस्थाओं के कार्यक्रमों को जिस तरह से निरूपित किया गया है, उससे किसानों की उधारी तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कमी रह जाएगी। ग्रामीण उधारी सर्वेक्षण रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि किसानों को हर साल 750 करोड़ रुपए उधारी की आवश्यकता है, जो निम्न एजेंसियों से पूरा किया गया :

तालिका

ऋण एजेंसी	ऋण संबंधी उधार राशियों का अनुपात	
	कुल का प्रतिशत	राशि (करोड़ रुपए में)
सरकार	3.3	25
सहकारी संस्थाएँ	3.1	23
संबंधी	14.2	106
ज़मींदार	1.5	11
कृषक साहूकार	24.9	187
व्यावसायिक साहूकार	44.8	336
व्यापारी आदि	5–5	41
व्यावसायिक बैंक	0.9	7
अन्य	1.8	14
कुल	100	750

तब से सहकारी उधारी संस्थाओं के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई है। ग्रामीण उधारी सर्वेक्षण समिति की सिफ़ारिशों के आधार पर दो राष्ट्रीय फंड यानी राष्ट्रीय कृषि उधारी (दीर्घकालीन) फंड और राष्ट्रीय कृषि उधारी (स्थिरीकरण) फंड रिज़र्व बैंक के तहत स्थापित किए गए हैं। पहले में 10 करोड़ रुपए की प्रारंभिक राशि आबंटित की गई है। बैंक दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान 5 करोड़ की राशि सालाना इसमें जोड़ता जाएगा, जब तक कि यह राशि 35 करोड़ तक न पहुँच जाए। यह राज्य सरकारों को सहकारी उधारी संस्थाओं की इक्विटी लेने के लिए अग्रिम और ऋण उपलब्ध कराएगा। दूसरा फंड राज्य सहकारी उधारी संस्थाओं को छोटी अवधि की उधारी मध्यम अवधि की उधारी में तब्दील करने के लिए ऋण उपलब्ध कराएगा। 30 जून, 1956 से रिज़र्व बैंक सालाना इस फंड में 1 करोड़ की राशि जोड़ रहा है।

समिति ने सहकारी संस्थाओं की आर्थिक गतिविधियों और उधारियों के बीच पूरे समन्वयन की सिफ़ारिश की है। कृषि उत्पाद (विकास एवं मालगोदाम) निगम क़ानून जून 1956 में पारित हुआ, जिसके तहत केंद्रीय और राज्य मालगोदाम निगमों की स्थापना हो सकती है। एक राष्ट्रीय सहकारी विकास और मालगोदाम बोर्ड की स्थापना 1 सितंबर, 1956 को हुई। बोर्ड का काम गोदामों का निर्माण, कृषि उत्पादों का संग्रहण और उनके लिए विपणन की व्यवस्था करना है।

सहयोग का पूरा कार्यक्रम संयुक्त रूप से राष्ट्रीय सहकारी विकास माल गोदाम बोर्ड, खाद्य और कृषि मंत्रालय तथा रिजर्व बैंक द्वारा किया जाना है। निम्न तालिका से इस क्षेत्र की प्रगति का पता चलता है।

तालिका

कार्यक्रम	लक्ष्य 1956-57	उपलब्धियाँ 1956-57
1. बड़ी सहकारी सभाएँ	1270	1429
2. विपणन सहकारी सभाएँ	379	280
3. सेंट्रल बैंकों का पुनर्गठन	193	134
4. बड़ी उधारी संस्थाओं द्वारा गोदामों का निर्माण	626	59.4
5. सहकारी चीनी फैक्टरियाँ	8	8

वर्ष 1956-57 के दौरान उधारी संस्थाओं ने 65 करोड़ रुपए के ऋण जारी किए। वर्ष 1957-58 के दौरान यह राशि 100 करोड़ से ऊपर जाने का अनुमान है। अत: कृषकों को सहकारी संस्थाओं द्वारा जारी उधारी की आपूर्ति का प्रतिशत 10 से 12 प्रतिशत रहने का अनुमान है, जबकि वर्ष 1951-52 में यह 3 प्रतिशत था।

परंतु इस प्रगति की बहुत क़ीमत चुकानी पड़ी है। प्रधानमंत्री ने अप्रैल, 1958 में पार्षदों की एक बैठक को संबोधित करते हुए स्वीकार किया था कि सरकार ने ग्रामीण उधारी सर्वेक्षण समिति की सिफ़ारिशें मानकर भूल की है। सहकारी आंदोलन में सरकार की भागीदारी ने लोगों की पहल को ख़त्म कर दिया है। अब यह जन-आंदोलन नहीं रहा। सर मैल्कम डार्लिंग ने, जिनका भारत के सहकारी आंदोलन के साथ लंबा सहयोग रहा, योजना आयोग को दी अपनी रिपोर्ट में भारत में सहकारी संस्थाओं की योजना के आधार की आलोचना की थी। उनका मानना था कि योजना आयोग ने ग्रामीण उधारी सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट का अनुसरण किया है, जिसका अंधानुकरण करके सहकारी योजना का आधार तैयार किया गया था। उनके अनुसार हमारे लक्ष्य बहुत महत्त्वाकांक्षी हैं, क्योंकि 'योजना बहुत कम समय में बहुत कुछ करना चाह रही है, जिसके परिणामस्वरूप क्रियान्वयन में लगे अधिकारीगण लक्ष्यों के बंदी बन गए हैं।'[6]

इसलिए सरकारी आँकड़ों का ज़्यादा अर्थ नहीं निकाला जा सकता। अतः हम सहकारी खेती में इस ख़तरनाक प्रयोग को टालने के ही सुझाव दे सकते हैं, कम-से-कम तब तक जब तक कि अन्य क्षेत्रों में भी सहकारिता जन-आंदोलन का रूप न ले ले।

औद्योगिक कार्यक्रम

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने न केवल कृषि और उद्योगों के बीच प्राथमिकताओं को बिगाड़ा बल्कि उद्योगों के विभिन्न क्षेत्रों में भी ऐसा ही किया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में प्रमुख लक्ष्य द्रुत औद्योगीकरण, विशेषतः आधारभूत एवं भारी उद्योगों पर ज़ोर होने के कारण निम्न प्राथमिकताएँ तय की गईं :

1. लौह, इस्पात और भारी रसायन, जिसमें नाइट्रोजन उर्वरक शामिल है, साथ ही भारी इंजीनियरिंग और मशीन निर्माण उद्योग में उत्पादन वृद्धि;
2. विकासपरक वस्तुओं तथा उत्पादक वस्तुओं जैसे अल्युमिनियम, सीमेंट, रासायनिक गूदा, रँगने का द्रव्य, फोस्फेटिक उर्वरक और अनिवार्य औषधियों संबंधी क्षमता का विस्तारण;
3. महत्त्वपूर्ण मौजूदा राष्ट्रीय उद्योगों, जैसे जूट, सूती उद्योग और चीनी को पुनः समर्थ बनाना;
4. उद्योगों में जहाँ कहीं भी क्षमता और उत्पादन में अंतर है, वहाँ स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग और;
5. उद्योग के विकेंद्रीकृत क्षेत्र में उत्पादन के साझा कार्यक्रमों और लक्ष्यों के मद्‌देनज़र उपभोक्ता वस्तुओं के लिए क्षमता बढ़ाना।

---

6. हिंदू, मद्रास, 23 फरवरी, 1958।

बड़े उद्योग—उपरोक्त प्राथमिकताओं को दृष्टि में रखते हुए उत्पादन और निवेश के लक्ष्य रखे गए हैं। आयोग ने अपनी औद्योगिक नीति में भारत की विशेष स्थिति या पूरी योजना के आर्थिक और तकनीकी पहलू पर ध्यान दिए बिना ही सोवियत गोसप्लान का अनुसरण किया है। यह कहना तर्कसंगत लगता है कि आधारभूत उद्योग ही औद्योगिक विकास का आधार बनते हैं। हमारे पास पहले लौह और इस्पात, उसके बाद भारी मशीन निर्माण उद्योग होना चाहिए, ताकि उपभोक्ता वस्तु उद्योग हेतु आवश्यक मशीन निर्माण उद्योग के लिए भी मशीनें बनाई जा सकें। हालाँकि हम जानते हैं कि आधारभूत और भारी उद्योगों का विकास औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के बाद के चरणों में हुआ।

औद्योगिक विकास के लिए योजना बनाते समय हमें न सिर्फ़ उपलब्ध पूँजी, तकनीकी और प्रबंधन कौशल पर विचार करना होता है बल्कि इस बात पर भी ध्यान देना होता है कि उपलब्ध संसाधनों को क्षेत्र विशेष में बाकियों या पूरे की तुलना में लगाने के आर्थिक प्रभाव क्या होंगे।

जब हमने दूसरी पंचवर्षीय योजना को महत्त्वाकांक्षी बताया था तो इसके आकार की वजह से नहीं, बल्कि उपलब्ध संसाधनों की कमी के मद्देनज़र इसके बड़े-बड़े लक्ष्यों को देखकर बताया था। यदि प्राथमिकताओं को उलट दिया होता तो आवश्यक संसाधनों को जुटाया जा सकता था।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में निहित कार्यक्रम पूँजी प्रधान होने के कारण देश पर संभवत: क्षमता से अधिक बोझ आन पड़ा है। इसने देश की विशाल श्रमिक जनसंख्या की रोज़गार की ज़रूरत को नज़रंदाज़ किया है। इसलिए एक तरफ़ हमारे पास पूँजी की कमी है तो दूसरी तरफ़ औद्योगीकरण के बावजूद हम लोगों को काम दिलाने में असफल हो रहे हैं।

जहाँ तक पूँजी की बात है, हमें औद्योगिक विकास के लिए सारी आवश्यक मशीनें आयात करनी पड़ रही हैं। हमें तकनीकी और अन्य कार्मिकों की भी ज़रूरत है। योजना का आयात वाला पक्ष विदेशी मुद्रा के क्षेत्र में पहले ही संकट पैदा कर चुका है।

हमें घरेलू पूँजी की कमी महसूस हो रही है। सरकार औद्योगिक कार्यक्रमों के लिए धन की पूर्ति के लिए सभी उपाय कर रही है, जिसके परिणामस्वरूप जिन उद्योगों को प्राथमिकता की सूची में नीचे रखा गया था, वे और नीचे जा रहे हैं। कराधान और घाटे का वित्त प्रबंध चीज़ों को और महँगा बना रहे हैं। उपभोक्ता वस्तुओं और यहाँ तक कि उत्पादक वस्तुओं पर आयात प्रतिबंधों ने इन क़ीमतों को और चढ़ा दिया है। चढ़ती क़ीमतें बचत की क्षमता घटाकर तथा लागत अनुमानों को बढ़ाकर धन के अभाव को भी बढ़ा रही हैं।

आधारभूत एवं भारी उद्योगों के लिए सामाजिक और आर्थिक ऊपरी ख़र्चों की स्थापना की भी शीघ्र आवश्यकता पड़ती है। इसलिए दूसरी पंचवर्षीय योजना ने रेलवे

के विकास के लिए 1,125 करोड़ रुपए के व्यय का प्रावधान रखा है। फ़िर भी वे सभी यात्री और माल को ले जाने में असफल रहे हैं। इसलिए हमें परिवहन विकास के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता है। आयोग भूल गया कि एक बार अवरोध पैदा कर दिए गए तो इसकी श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया पूरे देश में होगी। इसलिए योजना बनाते समय हर क़दम पर इसे कुछ गुंजाइश छोड़नी चाहिए थी। इसके विपरीत हर बिंदु पर ऐसी कमियाँ छोड़ दी गईं, जिन्हें पूरा करने के उपाय सोचे ही नहीं गए। अतः दूसरी पंचवर्षीय योजना अवरोधों की योजना थी और इसी में उसे सफलता मिली।

आयोग भारी उद्योगों के कार्यक्रमों द्वारा समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाना चाहता था। उनका लक्ष्य कृषि आधारित समाज के स्थान पर औद्योगिक समाज का निर्माण है। परंतु हम पिरामिड की संरचना ऊपर से नीचे की ओर नहीं कर सकते। इसके आधार की, यानी विकेंद्रीकृत उपभोक्ता वस्तु उद्योग की संरचना पहले होनी चाहिए थी। जितना विस्तृत आधार होगा, उतना ही बड़ा और ऊँचा पिरामिड होगा।

लघु एवं ग्रामीण उद्योग–आयोग ने निश्चित रूप से लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विषय में बात की है और इसके लिए 200 करोड़ रुपए का परिव्यय भी प्रस्तावित किया है। लेकिन पूरा कार्यक्रम शीघ्र आवश्यकता के आधार पर तय हुआ है, न कि लघु उद्योगों की भूमिका और उपयोगिता के प्रति किसी प्रतिबद्धता के आधार पर। यहाँ तक कि विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग एवं हस्तकला बोर्ड के तहत आश्रित परंपरागत ग्रामीण उद्योगों तक ही सीमित है। विभिन्न उद्योगों को दिए गए महत्त्व की तुलना लघु उद्योगों को जारी परिव्यय से आँकी जा सकती है, जो आगे तालिका में दिखाया गया है।

तालिका

ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के लिए परिव्यय का वितरण

(करोड़ रुपए में)

उद्योग	परिव्यय	
1. हैंडलूम	—	**59.5**
सूती बुनाई	56.0	
सिल्क बुनाई	1.5	
ऊन बुनाई	2.0	
2. खादी	—	**16.7**
ऊन कताई और बुनाई	1.9	
सूत कताई और खादी का विकेंद्रीयकण	14.8	

3. ग्रामोद्योग	—	38.8
चावल की हाथ से कुटाई	5.0	
वनस्पति तेल (घानी)	6.7	
चमड़े के जूते और चर्म शोधन	5.0	
गुड़ व खाँड़सारी	7.0	
दियासलाई कुटीर	1.1	
अन्य ग्रामोद्योग	14.0	
4. हस्तकला	—	9.0
5. लघु उद्योग	—	55.0
6. अन्य उद्योग	—	6.0
रेशम उत्पाद	5.0	
जूट कताई-बुनाई	1.0	
7. सामान्य योजनाएँ (प्रशासन, शोध आदि)	—	15.0
	कुल	200.00

उपरोक्त व्यय के अतिरिक्त 'अंबर चरखा' से संबंधित योजनाओं में 80 करोड़ रुपए का परिव्यय रखा गया।

इस प्रकार से पूरा दृष्टिकोण ऐसा रहा कि सब्सिडी देकर किसी तरह से इन उद्योगों को ज़िंदा रखा जाए। यह आवश्यकता आर्थिक के बजाय राजनीतिक हो सकती है। लघु उद्योगों की परियोजनाओं पर इस योजना में केवल 55 करोड़ रुपए का परिव्यय प्रस्तावित किया गया। वास्तव में यही क्षेत्र औद्योगीकरण का आधार बन सकता है। हमने पहली पंचवर्षीय योजना पर चर्चा के दौरान इसका संदर्भ दिया था और देखा था कि किस प्रकार से लघु उद्यमी बिना किसी सरकारी सहायता से आगे बढ़ चुका है। वे न केवल उपभोक्ता वस्तुएँ बल्कि बड़े उद्योगों के लिए भी सहायक वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं।

लघु उद्योग निगम की स्थापना तथा लघु उद्योग बोर्ड के गठन के बाद से उनपर कुछ ध्यान दिया गया है, परंतु उनकी समस्याएँ इतनी विस्तृत और विविध हैं कि अभी जो कुछ दिया गया है या प्रस्तावित है, उससे कहीं ज़्यादा सहायता की उन्हें आवश्यकता है। बड़े उद्योगों के लिए धन की बढ़ती कमी के चलते लघु उद्योगों को नज़रंदाज़ किया जा रहा है। 1957-58 के केंद्रीय बजट में लघु उद्योग संस्थान के लिए 85 लाख रुपए प्रस्तावित थे। लेकिन संशोधित अनुमान केवल 38 लाख रुपए का है, जबकि 1958-59 का बजट इस मद के तहत केवल 9.8 लाख रुपए ही रखता है। इसी प्रकार से केंद्र ने

अपने बजट में राज्यों को लघु उद्योगों के विकास और हस्तकरघा से विद्युत् करघा में परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए जारी राशि में भी 1956-57 के 6.85 करोड़ रुपए से 1958-59 के 6.19 करोड़ रुपए की कमी कर दी। केंद्रीय सरकार के वर्ष 1957-58 और 1958-59 के संशोधित बजट अनुमानों के अनुसार औद्योगिक विकास के लिए क्रमशः 152.26 करोड़ और 193.09 करोड़ रुपए का प्रावधान रखा गया है। इसी में से 39 लाख और 9.8 लाख करोड़ रुपए क्रमशः लघु उद्योगों के लिए रखा गया है।

ग्रामीण उद्योगों का मामला तो कहीं से अच्छा नहीं रहा है। केंद्रीय सामुदायिक विकास मंत्री श्री एस.के. डे ने लोकसभा में कहा कि 'मुझे कहना चाहिए कि यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें अभी हमारी शुरुआत नहीं हुई है। (एक सदस्य : आप कभी शुरू नहीं कर पाओगे) सबसे बड़ी मुश्किल ग्रामीण उद्योगों के उत्पादों के लिए बाज़ार खोजने में आती है। दूसरा, हम देखते हैं कि उद्योग निदेशालय और उद्यमियों में शहरी क्षेत्रों के प्रति बहुत झुकाव है।'[7]

बावजूद इसके कि भारी निवेश किया जा रहा है, सरकार की इस इकतरफ़ा नीति के चलते रोज़गार के अवसर नहीं बढ़ रहे। अतः दूसरी पंचवर्षीय योजना का तीसरा लक्ष्य भी प्राप्त नहीं किया जा रहा है। योजना में 80 लाख नई नौकरियों के अवसर उत्पन्न करने का लक्ष्य है। केंद्रीय वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई के अनुसार दूसरी योजना के पहले दो सालों में ज़्यादा से ज़्यादा 20 लाख नौकरियों के अवसर उत्पन्न हुए। अतः योजना के लक्ष्यों से यह बहुत कम रहा। यहाँ तक कि आयोग यदि पिछली बेरोज़गारी को भूलकर श्रम बाज़ार में उतरनेवाले नए लोगों के लिए ही रोज़गार पैदा करने का लक्ष्य रखता तो भी 36 लाख लोगों के लिए नौकरियाँ चाहिए थीं। यदि हम मंदी के चलते कुछ उद्योगों में चल रही छँटनी को देखें तो हालात और भी विकट नज़र आते हैं।

विकास कार्यक्रमों को सामान्यतः शैक्षणिक व्यवस्था और विशेषतः तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधाओं के साथ भी जोड़ा जाना चाहिए। यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि औद्योगिक विकास का कार्यक्रम वृहद पैमाने पर शुरू करने के बावजूद इसके लिए ज़रूरी प्रशिक्षण और कर्मचारियों की पूर्ति का कोई सहायक कार्यक्रम हमारे पास नहीं है। वास्तव में तो प्रशिक्षण का प्रबंध औद्योगिक कार्यक्रमों की शुरुआत से पहले ही हो जाना चाहिए। लेकिन ऐसा करने के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओं को उलट देना पड़ेगा। हालाँकि हमारे देश में श्रम की आपूर्ति बहुतायत में है, परंतु जब तक इसे औद्योगिक उत्पादन के लिए आवश्यक विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया जाता, तब तक इसको उपयोगी ढंग से रोज़गार में नहीं लगाया जा सकता। दूसरी योजना के लक्ष्यों में निहित पूँजी प्रधान और भारी उद्योगों के लिए कम संख्या में लेकिन उच्च

7. हिंदू, मद्रास, 6 अप्रैल, 1958।

प्रशिक्षण प्राप्त कर्मियों की आवश्यकता है। कौशल निर्माण एक सतत प्रक्रिया है, इसलिए हम अधिक विस्तृत योग्यता वाले कम कुशल कर्मी से कम विस्तृत योग्यता वाले उच्च कौशल युक्त कर्मी के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ते। यदि हम शिक्षा का प्रसार चाहते हैं तो हम पहले विश्वविद्यालयों का और बाद में प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण नहीं कर सकते। एक विस्तृत, विकेंद्रीकृत उद्योग श्रमिक को कौशल के स्तर पर काम दे सकता था, साथ ही उसे अपना कौशल बढ़ने के लिए अवसर भी प्रदान कर सकता था। इनमें से ऐसे कौशल प्राप्त कर्मियों का निर्माण हो सकता था, जो जटिल से जटिल मशीनों को भी चला सकता था।

आयोग ने जन मुद्दों के प्रबंधन पर भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के द्रुत विस्तार का प्रस्ताव है। सरकारी उपक्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है। लेकिन संगठनात्मक ढाँचा, प्रबंधन बोर्ड, कैडर, संसद् और मंत्रालयों से संबंध, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के अधिकार, कीमत और निवेश नीति आदि प्रश्न अभी तय किए जाने हैं। इन समस्याओं पर किसी नियोजित नीति के अभाव में अनैतिक आचरण, कुप्रबंधन और जनता के पैसों का अपव्यय होना निश्चित है। आकलन समिति और लोक लेखा समिति ने सरकारी उपक्रमों की सामान्य कार्यप्रणाली तथा व्यक्तिगत मुद्दों के विषय में बहुत सी सिफ़ारिशें दी हैं, लेकिन सरकार ने फिलहाल इस दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया है।

20

निष्कर्ष और सुझाव

हमने दूसरी पंचवर्षीय योजना के पहलुओं का मोटे तौर पर परीक्षण किया है। राज्यों के विकास संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों या राज्य योजनाओं के विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े लोग परियोजना विशेष में रुचि रख सकते हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा, जहाँ तक उनकी समझ और दृष्टि जाती है, परियोजनाएँ क्रियान्वित होती हैं, परंतु अंतिम विश्लेषण में तो परियोजनाओं से कितना कल्याण होगा, यह स्थूल आर्थिक नीति के तत्त्वों पर निर्भर करता है, जिनसे सामान्य आर्थिक परिस्थितियाँ नियंत्रित होती हैं। दूसरी योजना को तैयार करते समय और अब जबकि इसके पुनर्गठन के प्रश्न उठ रहे हैं, योजना आयोग पर कई दबाव और खिंचाव पड़ रहे हैं। ये दबाव स्थान विशेष या राज्य विशेष के हितों को ऊपर रखकर डाले जा रहे हैं, ज़िम्मेदारियों से परे और यह समझे बग़ैर कि इसके वृहद् परिणाम क्या होंगें। हमें लगता है कि कार्यक्रमों की सूचियाँ बनाने से योजनाएँ नहीं बन जातीं। इसका भविष्य सूचियों के अवलोकन से नहीं बताया जा सकता। हाँ, इन योजनाओं के क्रियान्वयन से ही इनका मूल्यांकन हो सकता है।

अब कहा जा सकता है कि जिन धारणाओं पर आयोग काम कर रहा था, वे तर्कसंगत नहीं थीं। जो तरीक़े इसने अपनाए, वे हमारे देश की परिस्थितियों के हिसाब से अवैज्ञानिक और अनुपयुक्त थे। उत्पादन के लक्ष्य मनमाने ढंग से निर्धारित किए गए और जिन संसाधनों की बात की गई, वे तथ्यों से परे थे। एक अविकसित अर्थव्यवस्था के, जहाँ संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र और विमुद्रीकरण एवं अल्प मुद्रीकरण का सह अस्तित्व हो, वहाँ के नियंम नहीं समझे गए। यहाँ तक कि विकसित अर्थव्यवस्था के नियम भी उचित ढंग से नहीं लागू किए गए। व्यापार और व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योग पिछले 80 वर्षों से मुक्त उद्यम, निगम और वैयक्तिक उद्यमों की ब्रिटिश परंपरा को अपनाए हुए हैं। योजना आयोग सरकारी उद्यमों के रूसी आदर्शों से मुग्ध है। लेकिन

यह पुरानी परंपराओं को छोड़ना या तोड़ना नहीं चाहता। योजना आयोग के इस दोहरेपन ने अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर दी है। यह गांधीवादियों, सर्वोदयवादियों, पश्चिमी डेमोक्रेटस, पूँजीवादियों और समाजवादियों के बीच झूल रहा है। इसे सबको खुश करना है। इसका हाल ऐसा है जैसे खरगोशों के साथ भागना है, शिकारी कुत्तों के साथ शिकार करना है। एक राजनैतिक दल से संबद्ध होने और मतदाता के प्रति जागरूक होने के कारण इसे राजनीतिक दलों के नेताओं के राजनीतिक व्यवसाय और देश की आर्थिक स्थिति, दोनों का ध्यान रखना पड़ता है। और यह संतुलन बनाने में नाक़ामयाब रहा है।

इन्हीं कारणों के चलते दूसरी पंचवर्षीय योजना में चार तरह के लक्ष्य रखे गए थे : (1) जनता का जीवन स्तर ऊँचा करना, (2) भारी और आधारभूत उद्योगों का तेज़ी से विकास, (3) रोज़गार के अवसरों में वृद्धि और (4) आय व संपत्ति की असमानताएँ घटाना। ये सभी बेहद प्रशंसनीय और वांछनीय लक्ष्य हैं, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना की जिस तरह की प्रकृति है, उससे पाँच साल की अवधि में इन्हें पाना मुश्किल है। भारी उद्योग पूँजी प्रधान होने के कारण भारी निवेश माँगते हैं। यदि एक समाज को बचत करनी है, चाहे जिस भी विधि से, तो वह अपने उपभोग का स्तर नहीं बढ़ा सकता। ख़ास तौर पर जब यह स्तर बहुत ही निम्न हो और उपभोग की बहुत इच्छा हो। हम पूँजी प्रधान उद्योगों की स्थापना करके रोज़गार नहीं बढ़ा सकते। प्रौद्योगिकी के स्तर पर विकसित एवं दोषयुक्त उद्योग एक साथ नहीं चल सकते, खास तौर पर जब वे एक-दूसरे के पूरक न हों और अविकसित प्रौद्योगिकी की कमियों को किसी और क्षेत्रों के फ़ायदों से पूरा न किया जाए। यदि हम केवल उन उद्योगों में पूँजी निर्माण चाहेंगे, जिनमें कम पूँजी न लगती हो तो आय की असमानताएँ नहीं मिट पाएँगी। योजना के क्रियान्वयन ने यही दिखाया है कि ग़रीब और ग़रीब हुआ है, अमीर और अमीर। दोनों असंतुष्ट हैं। ग़रीब बढ़ती क़ीमतों को और अमीर बढ़ते नियंत्रणों तथा कराधान के हतोत्साहित करनेवाले प्रभावों को झेल रहा है। आय तथा संपत्ति की समानता में कोई बड़ा बदलाव नहीं है, बल्कि भविष्य के प्रति लोगों की असुरक्षा व अनिश्चितता की भावना बढ़ी है।

आधारभूत और भारी उद्योगों को विकसित करने के पीछे यही उद्देश्य था कि देश को पूँजी और उत्पादक वस्तुओं के लिए विदेशों पर निर्भर न रहना पड़े। लेकिन इन उद्योगों को विकसित करने के प्रयासों में विदेशों पर हमारी निर्भरता बढ़ती जा रही है। कृषि पर दबाव को कम करने के लिए औद्योगीकरण की वकालत की गई। लेकिन औद्योगीकरण सीमांत और देसी उद्योगों को बाहर कर रहा है और अधिक-से-अधिक लोग धरती पर पटके जा रहे हैं। देश के विकास को ऐसी दिशा लेनी पड़ी है, जो अन्य देशों से बिल्कुल अलग है और जो अभी तक योजना आयोग द्वारा प्रस्तावित दिशा से भी अलग है। इस विषय पर किसी अन्य पुस्तक में चर्चा करेंगे। फिलहाल तो हमें ऐसे उपाय और साधन

देखने हैं, जिनके द्वारा हम दूसरी योजना से उपजी मुश्किल स्थिति को आसान कर पाएँ।

अवधि का पुनर्निरूपण और विस्तार

सामान्य तौर पर यह स्वीकार कर लिया गया है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के स्वरूप को बदला जाए या इसकी अवधि बढ़ा दी जाए। हम तो दोनों का ही सुझाव देंगे। योजना में बहुत सारी चीज़ें अविभाज्य होने के कारण विभिन्न विकास कार्यक्रमों में काट-छाँट करना हमेशा आसान नहीं होता। इससे भौतिक, वित्तीय और आर्थिक संतुलन बिगड़ सकता है। लेकिन हमने पहले देखा है कि इन संतुलनों का योजना में अभाव है। अत: जब हम पुनर्गठन की माँग करते हैं तो हम इन संतुलनों को स्थापित करने की बात करते हैं। इसका अर्थ है कि कुछ मामलों में लक्ष्यों का स्तर ऊपर किया जाए और कुछ में नीचे। एक संतुलित, एकात्म और समन्वित योजना की ज़रूरत है।

इन बातों को दृष्टि में रखते हुए कि कुछ परियोजनाओं में काम बढ़ा है और कुछ में शीघ्रता से कुछ काम शुरू करने की बेहद आवश्यकता है। अब योजना के भौतिक आकार में कटौती संभव नहीं है। वित्तीय परिव्यय तो बढ़ना लाज़मी है, क्योंकि क़ीमतें बढ़ रही हैं और योजना में कुछ ऐसी चीज़ें जुड़ सकती हैं, जो इसमें मौजूद नहीं हैं। जबकि हमने देखा है कि ऐसी योजना का वित्तीय भार वहन करना किसी भी देश की क्षमता के बाहर होता है। हमारे आंतरिक और बाह्य संसाधन सीमित हैं।

अगर बाह्य संसाधन उपलब्ध भी हों तो भी उन पर निर्भर नहीं करना चाहिए। वे एक उत्प्रेरक की तरह काम कर सकते हैं, लेकिन कभी भी विकास का आधार नहीं बन सकते। इसलिए योजना की अवधि को बढ़ाना ठीक रहेगा। निश्चित समय सीमा का सुझाव देना सुरक्षित नहीं रहेगा, क्योंकि यह तो पुनर्निरूपण के बाद योजना के आकार पर निर्भर करेगा। सच तो यह है कि ऐसे भी लोग हैं, जो मानते हैं कि समयबद्ध योजना की ज़रूरत ही नहीं है। हम एक विकास कार्यक्रम बना लेते हैं और काम करना शुरू कर देते हैं। सभी कार्यक्रम लक्ष्यबद्ध तरीक़े से नहीं चलाए जा सकते। लक्ष्यों को प्राप्त करने पर ज़ोर देने से काफी समय बरबाद हुआ है और निराशा एवं हताशा का माहौल बना है। यदि योजना आम चुनावों के समय के साथ न बाँधी जाए तो लोगों के अधिक सहयोग और तटस्थ मूल्यांकन की आशा रहेगी, साथ ही प्रतिष्ठा के प्रश्न भी नहीं पैदा होंगे।

कुछ उद्योगों का निजी क्षेत्र में स्थानांतरण

निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की सापेक्षिक भूमिका की पुनर्समीक्षा हो। इस संबंध में आयोग का निर्णय आर्थिक कारकों पर आधारित हो, न कि राजनीतिक। बहुत सी ऐसी योजनाएँ हैं, जो निजी क्षेत्र को, औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 30 अप्रैल, 1956 के अंतर्गत सुरक्षित तौर पर सौंपी जा सकती हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों के

अंतर्गत आनेवालीं कुछ प्रमुख औद्योगिक योजनाओं की सूची इस प्रकार है।

तालिका

राज्य सरकारों की औद्योगिक योजनाएँ

राज्य	परियोजनाएँ
मैसूर	1. मैसूर आयरन एंड स्टील वर्क्स का विस्तारण
	2. गवर्नमेंट पोर सिलीन फैक्टरी का विस्तारण
	3. मैसूर इंपलीमेंट फैक्टरी का विस्तारण
	4. गवर्नमेंट इलेक्ट्रिक फैक्टरी का विस्तारण
	5. गवर्नमेंट सोप फैक्टरी का विस्तारण
पं. बंगाल	दुर्गापुर कोक-ओवन-प्रोजेक्ट
आसाम	1. टैक्सटाइल मिल
	2. सपन सिल्क मिल
	3. शुगर मिल
उत्तर प्रदेश	1. यू.पी. गवर्नमेंट सीमेंट फैक्टरी का विस्तारण
	2. यू.पी. गवर्नमेंट प्रिसीजन इंस्ट्रूमेंट फैक्टरी का विस्तारण
बिहार	1. बिहार सुपर फॉस्फेट फैक्टरी
	2. स्पन सिल्क मिल का विस्तारण
	3. पोरसिलीन फैक्टरी
हैदराबाद	1. प्रागा टूल्स फैक्टरी का विस्तारण
	2. हैदराबाद टैनरी
ट्रावनकोर-कोचीन	1. ट्रावनकोर रबर वर्क्स का विस्तारण
	2. चाइना क्ले स्कीम का विस्तारण
	3. त्रावणकोर मिनरल्स का विस्तारण
	4. हार्ड सैंड ब्रिक्स फैक्टरी
आंध्र	1. श्री वैंकटशवरा बार्ड मिल्स का विस्तारण
	2. आंध्र पेपर मिल्स का विस्तारण
	3. सेरेमिक फैक्टरी का विस्तारण
मध्य भारत	1. कॉटन स्पिनिंग मिल
	2. डिस्टिलरी
	3. सॉलवेंट एक्सट्रैक्शन प्लांट

	4. ग्वालियर लैदर एंड टैनरी फैक्टरी
	5. ग्वालियर पोटरीज का विस्तारण
जम्मू और कश्मीर	1. सिल्क स्पिनिंग प्लांट
	2. गवर्नमेंट बुलन फैक्टरी का विस्तारण
	3. गवर्नमेंट ड्रग फैक्टरी का विस्तारण
	4. सिल्क वीविंग प्लांट का विस्तारण
कूर्ग	1. सैंडल वुड ऑयल फैक्टरी
	2. टिंबर सीजनिंग क्लिन
	3. क्रियोसोटिंग प्लांट
पांडिचेरी	1. शुगर मिल
	2. स्पिनिंग मिल

इनमें से अधिकतर योजनाएँ निजी क्षेत्र को सौंपी जा सकती हैं। साबुन, कपड़ा, चीनी, सीमेंट, चीनी मिट्टी, काग़ज़, सेरेमिक, चमड़ा, ये सभी औद्योगिक नीति प्रस्ताव की सूची 'ए' या 'बी' में गिनाए गए उद्योगों की परिधि से बाहर हैं। सार्वजनिक क्षेत्र को अपना कुछ बोझ हल्का करना चाहिए।

प्राथमिकताओं को पुनः नियत करना

प्राथमिकताओं को फिर से तय करने की ज़रूरत है। बेशक यह एक आसान काम नहीं है। आधारभूत और भारी उद्योगों पर जो ज़ोर दिया जाता रहा है, वह एकदम से हटाया नहीं जा सकता। इन योजनाओं में करोड़ों रुपया लगा हुआ है। उन्हें पूरा करना ज़रूरी है। लेकिन हम चौथा स्टील प्लांट न शुरू करें, जिसके लिए वर्ष 1958-59 के बजट में 50 लाख रुपए का प्रावधान रखा गया है। यह ठीक है कि हमारी इस्पात की ज़रूरत वर्तमान में नियोजित कारख़ानों से शायद पूरी न हो। ऐसी स्थिति में हमें ऐसी ज़रूरतें कम कर देनी चाहिए, न कि अर्थव्यवस्था पर ज़ोर डालना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कृषि को अपना स्थान वापस दिलाना होगा। केवल शब्दों को नहीं, संसाधनों को कृषि के विकास में इस्तेमाल किया जाए। हम यहाँ इन कार्यक्रमों के विषय में पूर्व अध्यायों में दिए गए सुझावों की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे।

विकेंद्रीकृत लघु उद्योग को भी औद्योगीकरण की योजनाओं में प्राथमिकता मिलनी चाहिए। आयोग को अंबर चरखा और खजूर के गुड़, साथ ही खादी और नीरा की सनक से छुटकारा पाना चाहिए। लघु उद्योगों और बड़े उद्योगों के क्षेत्रों के बीच साफ़-साफ़ सीमा रेखा खींची जानी चाहिए। कताई मिलों और हथकरघा व बिजली करघा को

कम-से-कम घरेलू खपत का पूरा सूत तैयार करना चाहिए।

योजना में प्राथमिकताओं के पुनर्निरूपण और पुन: नियत करने के प्रश्न के साथ-साथ संसाधनों के बीच खाई को कम करना और अत्यधिक घाटे का वित्त प्रबंध व तरह-तरह की अडचनें दूर करने की भी समस्या है। लोगों की तरफ़ से जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की ज़ोरदार माँग के बावजूद, कोई भी सरकार साथ में बचत की दर बढ़ाने की ज़रूरत को कम महत्त्व नहीं दे सकती। भारत में यह दर काफी बढ़ाई जा सकती है, क्योंकि परंपरा से तथा दार्शनिक दृष्टि से हम सादी आदतों के आदी है। अपव्यय को बुरा माना जाता है। हर परिवार मिलकर बचत करता है। यदि सरकार इन परंपरागत गुणों को देश की अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों से जोड़ दे तो बचतें बढ़ सकती हैं। आर्थिक विकास को एक राष्ट्रीय यज्ञ की तरह लिया जाए, जिसमें हर कोई अपने हिस्से की आहुति डाले।

उपदेश नहीं उदाहरण से लोगों में अधिकाधिक बलिदान देने की प्रेरणा जागेगी। यदि मंत्रिगण और सत्ताधारी अन्य लोग यह महसूस करते हैं कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में हमारा भी हित है तो वे भी अपने ठाठ-बाट छोड़ें। वे भी सादा जीवन जिएँ, जैसा तब जीते थे, जब विदेशी शासकों के ख़िलाफ़ उनका स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था। वे 1,000 रुपए से अधिक भत्ते व तनख्वाह न लें। वे अपनी कमर कस लें, ताकि लोग उनका अनुसरण करें। सरकारी ख़र्चे में मितव्ययिता एक ऐसा सूत्र है, जिसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। लोग मेहनत से कमाया अपना पैसा सरकारी खज़ाने में इस विश्वास के साथ देते हैं कि इसका ख़र्चा पूरी एहतियात के साथ समाज के भले के लिए होगा। सरकार ने 1949 में मितव्ययिता के उपायों पर सुझाव देने के लिए एक समिति बनाई थी। जब तक श्री जॉन मथाई केंद्रीय वित्त मंत्री रहे, सरकार ने सार्वजनिक ख़र्चे में कटौती की नीति अपनाई। लेकिन उनके जाने के बाद नीति पलट दी गई है। इस तथ्य के बावजूद कि केंद्र और राज्य सरकारों ने समय-समय पर ख़र्चों में कमी लाने की घोषणा की है, साथ ही विभिन्न लेखा परीक्षणों की रिपोर्ट में सरकार द्वारा निधियों का अनियमित और अनुचित व्यय की ओर ध्यान खींचा गया है, फिर भी इस विषय में बहुत उपलब्धि नहीं रही है। केंद्र और राज्य सरकारों का सार्वजनिक व्यय 1,800 करोड़ रुपए से लेकर 1,900 करोड़ रुपए तक रहता है। यदि सरकारें नियमित रूप से सार्वजनिक धन का लेखा, ख़र्चा और सीमित व्यय की आदतों को अपना लें तो कम-से-कम 70 से 80 करोड़ रुपए तक की बचत की जा सकती है। अधिकारियों, विधायकों और मंत्रियों को उनके ख़र्चों से अधिक भत्ते लेने से रोका जाए। सभी ग़ैर-विकासपरक ख़र्चे निम्नतम स्तर पर लाए जाएँ। सरकारी अधिकारियों की ग़लतियों या लापरवाही से हुए नुक़सान की भरपाई की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं अधिकारियों पर डालने से काफ़ी बचत हो सकती है।

सरकार अपने उगाही तंत्र को आधुनिक बनाए बिना और समन्वयन के बग़ैर ही करों में वृद्धि किए जा रही है। जितने प्रकार के कर हैं, उतने ही प्रकार के उगाही तंत्र हैं। एक समन्वित उगाही व्यवस्था होनी चाहिए। ज़रूरत पड़े तो कुछ मामलों में अन्य प्रशासनिक तंत्र के साथ इसका विभागीकरण और समन्वयन भी होना चाहिए। केंद्र और प्रांतीय कर उगाही अधिकारियों के कार्यक्षेत्र आपस में उलझे हुए हैं। केंद्र ही प्रांतीय, स्थानीय और केंद्रीय सभी कर वसूले। इससे ख़र्चों में और कर चोरी में कमी आएगी। करों में वृद्धि करनी ही न पड़े, अगर हर साल आयकर की टालमटोल रोककर पूरा आयकर जमा कर लिया जाए। सारी व्यवस्था की मरम्मत की ज़रूरत है। ऐसे समय में जबकि पूरे देश परेशान है और सरकार जनता से एक-एक कौड़ी वसूल रही है, प्रिवी पर्स या राजनीतिक पेंशन जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। हमारे कई शासकों और अमीर लोगों के विदेशी बैंकों में खाते हैं। इंग्लैंड की सरकार ने युद्ध के दौरान ब्रिटिश नागरिकों से सारी विदेशी प्रत्याभूतियाँ जमा करा ली थीं। सरकार द्वारा भोजन और हथियारों के लिए आवश्यक वित्तीय साधन उपलब्ध करा दिए गए थे। क्या हम भी उन्हें विदेशी भंडार के रूप में नहीं रख सकते, ताकि विदेशी विनिमय के संकट की स्थिति में कुछ राहत मिल सके।

कराधान जाँच समिति ने व्यक्तिगत आय की सीमा निश्चित करने का सुझाव दिया है। संसद् की आकलन समिति ने भी माँग की है कि निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के मामले में यह सीमा तय की जाए। सुझावों को मानने या निजी क्षेत्र पर लागू करने की बात तो दूर, सरकार ने तो अपने कर्मचारियों के लिए भी उच्चतम सीमा निश्चित नहीं की है। सभी वेतनों और भत्तों को 2000 रुपए प्रतिमाह की सीमा तक घटना वांछनीय है। इस सीमा से ऊपर की राशि के नेशनल प्लान बांड्स सरकार अपने कर्मचारियों को जारी कर सकती है।

अब तक तो सरकार ने जनता से ऋणों के रूप में पैसा लिया ही है। सरकारी उद्यमों के शेयर देना भी वांछनीय रहेगा। सरकार नियंत्रक हिस्सा अपने पास रखे बाकी शेयर जारी कर दे। निवेश करनेवाली जनता के लिए यह प्रोत्साहन होगा। और लोग इन उद्योगों के काम से भी जुड़ेंगे। संसद् की बहसों द्वारा नियंत्रण करने की अपेक्षा लोगों द्वारा ऐसा नियंत्रण ज़्यादा कारगर होगा। शेयर का पैसा न दिया गया तो आगे की पीढ़ी की ज़िम्मेदारी नहीं होगा, जबकि ऋण का पैसा सूद समेत वापस करना होता है। छोटी बचतों के अभियान के साथ-साथ सरकारी लाटरी की योजना पर भी विचार किया जाना चाहिए। पिछले युद्ध के दौरान प्राइज़ बांड की भी व्यवस्था थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने हाल में इसपर चर्चा भी की थी। इससे छोटी बचतों को भी प्रोत्साहन मिलने की संभावना है।

विदेशी मुद्रा भंडार का अंतर भी सिरदर्द बना हुआ है। योजना में आयात की मात्रा

भी न्यूनतम तक घटा देनी चाहिए। ज़्यादातर मामलों में देसी आपूर्ति आयातित वस्तुओं का स्थान ले सकती है। अधिक विदेशी मुद्रा कमाने के प्रयास किए जाने चाहिए। निर्यात बढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन दुनिया भर में मंदी के रुख के कारण इसमें ज़्यादा उम्मीद नहीं है। हम अपनी अप्रत्यक्ष आय बढ़ा सकते हैं। सरकार ने पहले ही बहुत से समुद्री जहाज़ ख़रीदे हैं। हमारा टनभार बढ़ने की पूरी संभावना है। सरकार को नाविक बीमा भी करना चाहिए। आयात ज़ोखिम बीमा निगम की स्थापना हो चुकी है, परंतु बाक़ी तरह के बीमा की गतिविधियाँ भी बढ़ाई जानी चाहिए। अभी तक हम अपने आयात सीआईएफ से प्राप्त करते हैं और अपने निर्यात एफओबी से भेजते हैं। अगर हम दोनों व्यवस्थाओं को उलट दें तो हमें अच्छी मात्रा में विदेशी मुद्रा मिल सकती है। यदि कुछ वस्तुएँ एफओबी से प्राप्त हों और कुछ वस्तुएँ सीआईएफ से भेजी जा सकें तो काफ़ी मदद हो जाएगी।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक निवेश के नियमन के पारंपरिक तरीक़ों की वकालत की है, जिससे कि निर्यात लायक अतिरिक्त में वृद्धि हो। लेकिन इसका अर्थ योजना व्यय में कटौती करना होगा। यह भी आवश्यक है कि जो परियोजनाएँ प्रारंभिक अवस्था में लाभदायक हो सकती हैं और जिनके उत्पाद के निर्यात के लिए बाज़ार मिल सकता है, उन्हें पहले पूरा किया जाना चाहिए। योजना आयोग ने विदेशी मुद्रा की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर प्रमुख परियोजनाओं की सूची तैयार की है। विदेशी मुद्रा के बजट बनाने की प्रक्रिया जो पिछले दो वर्षों से ठप्प पड़ी थी, पुनः शुरू कर दी गई है। इस संबंध में योजना परियोजनाओं को इस प्राथमिकता में रखा जा सकता है :

1. परियोजनाएँ, जो शुरू की जा चुकीं हैं और जिनपर काफी विदेशी मुद्रा ख़र्च हो चुकी है,
2. पहली श्रेणी से जुड़ी परियोजनाएँ,
3. परियोजनाएँ, जिनमें उच्च उत्पादकता और निर्यात की संभावनाएँ हैं,
4. परियोजनाएँ, जिनमें सशर्त अनुदान और ऋण की उपलब्धता है,
5. परियोजनाएँ, जो एक-दो साल के लिए टाली जा सकती हैं और
6. परियोजनाएँ, जो पूरी तरह छोड़ी जा सकती हैं, जिन्हें देश के विकास के आर्थिक प्रबंध से जोड़कर तैयार नहीं किया गया है।

घाटे का वित्त प्रबंध

वित्त प्रबंधन में घाटे की सीमा पहले ही पार कर चुके हैं। बर्नस्टीन फंड मिशन ने ने पहली पंचवर्षीय योजना के आख़िरी तीन सालों के लिए घाटे के वित्त की सीमा 35 करोड़ रुपए से 40 करोड़ रुपए तक निश्चित की थी। दूसरी योजना के लिए यह राशि

175 करोड़ रुपए से 200 करोड़ रुपए तक रखी जा सकती है। श्री कालडोर ने, जिनके क्रांतिकारी कराधान प्रस्तावों को सरकार ने स्वीकृत किया है, यह सीमा, 50 करोड़ रुपए की निश्चित की है। कराधान जाँच आयोग और अन्य संस्थाओं ने भी उच्चतम सीमा नहीं निर्धारित की है। पिछले वर्ष टी.टी. कृष्णामचारी ने भी वादा किया था की वित्त घाटा 900 करोड़ रुपए की सीमा नहीं लाँघेगा। 1,200 करोड़ रुपए की सीमा तो सभी ने अत्यधिक बताई थी। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि नए वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने पिछले निर्णय को बदलकर फिर से उच्चतम सीमा 1,200 करोड़ कर दी है, क्योंकि उनके अनुसार वित्त घाटे की 102 करोड़ रुपए की सीमा तो पहले ही पार हो चुकी है। यह 600 करोड़ रुपए के संशोधित अनुमान से आगे निकल चुकी है। महँगाई को रोकने के लिए कठोर क़दम उठाने पड़ेंगे।

यह भी ज़रूरी है कि सरकार खाद्यान्न और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति बनाए रखने के लिए संग्रहण का कार्य करे। सरकार सस्ती अनाज और अन्य परचून की दुकानें शुरू करे, जोकि सरकारी व्यवस्था से जुड़ी हों। यदि सरकारी व अन्य उद्यमों के कर्मचारियों को सस्ता समान उपलब्ध कराया जाएगा तो कुछ हद तक वेतन वृद्धि की माँग पूरी की जा सकती है। यह ज़रूरी है कि सरकार स्फीति के दबाव से पहले, जोकि शुरू हो चुका है और हाथ से बाहर हो रहा है, पर्याप्त क़दम उठाए। महँगाई सामान्य तौर पर उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर नियंत्रण में लाई जाती है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ निजी क्षेत्र से नियंत्रण को ढीला करना होगा। इसका अर्थ निजी क्षेत्र की पहल को प्रोत्साहन देना भी होगा, लेकिन विदेशी मुद्रा और औद्योगिक संसाधनों के अभाव में सरकार ने निजी क्षेत्र में औद्योगिक विस्तारण पर और प्रतिबंध लगा दिए हैं। आयात प्रतिबंध भी कुछ उद्योगों का विकास रोक रहे हैं, यह तथ्य जानते हुए भी कि अर्ध निर्मित और उत्पादित वस्तुओं के निर्माण में लगे उद्योग लाभ प्राप्त सकते हैं। लेकिन कुल मिलाकर तो परिणाम महँगाई ही है। सारी औद्योगिक एवं आयात नीति की समीक्षा होनी चाहिए। दोनों योजनाएँ एक-दूसरे के साथ एकात्म होनी चाहिए।

योजना तंत्र

केवल दूसरी योजना ही नहीं बल्कि पूरे योजना तंत्र की मरम्मत होनी चाहिए। जैसा कि पहले बता चुके हैं, योजना आयोग या राष्ट्रीय विकास परिषद् की कोई संवैधानिक शक्ति नहीं है। दोनों के बीच संबंध को कहीं परिभाषित नहीं किया गया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि मंत्रिमंडल द्वारा लिये गए फ़ैसले कहाँ तक योजना आयोग के मार्गदर्शन से प्रभावित होते हैं।

लोकसभा की आकलन समिति ने अपनी हाल की रिपोर्ट में योजना आयोग की

अविधिमान्य स्थिति की ओर ध्यान खींचा है। इसने आयोग के पुनर्गठन की माँग की है। इसके अनुसार प्रधानमंत्री को आयोग से जुड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। मंत्रियों को भी इसका सदस्य होने की आवश्यकता नहीं है। योजना मंत्री, जो न तो योजना आयोग का अध्यक्ष है और न ही उपाध्यक्ष, एक अविधिमान्य पद पर बैठे हैं। समिति ने योजना आयोग में श्री पी.सी. महालनोबिस की तथ्यत: सदस्यता पर एतराज़ जताया है। हमें लगता है कि आयोग विशेषज्ञों की संस्था होनी चाहिए, जिनका मंत्रिमंडल या सत्ताधारी दल से कोई लेना-देना न हो। इसे निष्पक्ष ढंग से सारी स्थिति को देखना चाहिए और वैज्ञानिक आधार पर एक योजना तैयार करनी चाहिए। इसे प्रगति का आकलन और कमियों की तरफ़ इशारा करना चाहिए। ऐसी स्थिति में इसे राजनीतिक दबावों में नहीं आना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि आयोग की इकाइयाँ अलग-अलग राज्यों में हों। फिलहाल जहाँ तक राज्यों का सवाल है, ज़्यादातर काम राज्य सरकारों द्वारा ही किया जाता है और यह काम केवल समन्वयन या राज्य योजनाओं को मुख्य योजना में डालने से संबंधित है, जोकि अंतत: योजना आयोग पर ही निर्भर करता है। इससे मुश्किल से ही कोई मूलभूत और समग्र रूप से एकात्म योजना का जन्म हो सकेगा।

वस्तुत: योजना के लिए एकात्मक सरकार की आवश्यकता है। योजना की अधिकतर समस्याएँ संविधान के संघात्मक स्वरूप के कारण हैं। प्रधानमंत्री समेत सभी लोग राज्यों के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार की शिकायत कर रहे हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् प्रस्ताव पारित करती है, लक्ष्य तय करती, उनमें बदलाव लाती है, लेकिन इसके पास अपने फ़ैसले मनवाने की या अवज्ञा करनेवाले राज्यों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने की शक्ति नहीं है। यदि हम एकात्मक संविधान अपनाने के लिए तैयार नहीं भी हैं तो हम राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन करें और इसे योजना के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त शक्तियाँ दें। संसद् की संप्रभुता को प्रभावित किए बग़ैर यह कैसे संभव होगा, यह राजनैतिक पंडितों के लिए एक समस्या बनी हुई है। आयोग तथा विभिन्न मंत्रालयों के तहत बहुत सी संपर्क और परामर्श संस्थाएँ काम कर रहीं हैं। योजना के निर्माण या क्रियान्वयन में उनका शायद ही कोई योगदान है। वे योजना या उसके कार्यक्रमों के समर्थन में या तो प्रस्ताव पारित करते हैं या फिर कुछ माँगें रखते हैं। आयोग इन प्रस्तावों पर शायद ही ध्यान देता है। यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों के समूह ने योजना की रूपरेखा को देखते हुए जो प्रस्ताव रखे थे, उनपर भी आयोग ने ध्यान नहीं दिया। विभिन्न कार्यक्रमों को उनसे संबंधित परामर्श समितियों के सुझाव से तथा कार्यक्रम से जुड़े हितों को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि आयोग पर्याप्त और विस्तृत जानकारी छापे, ताकि लोग

अपने निश्चित सुझाव दे सकें। विस्तृत जानकारी के अभाव में अख़बारों के संपादकीय, राजनीतिक दलों के प्रस्ताव, चैंबर ऑफ़ कॉमर्स तथा अन्य संगठन मज़दूर संघ, अर्थशास्त्रियों और वैज्ञानिकों के लेख सभी में केवल आम सिद्धांतों और नीतियों की ही बात होती है। योजना में आंतरिक वित्त, विदेशी मुद्रा, श्रमशक्ति, कच्चा माल, विदेश व्यापार, पूँजी निवेश, परिवहन सुविधाएँ आदि में संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए। इनसे संबंधित बजट विस्तार से बनाया जाना चाहिए। अभी तक राज्य के बजट भी योजना के सभी मदों के बारे में जानकारी नहीं दे रहे थे। इस वर्ष से योजना एवं ग़ैर-योजना के मदों का बजट दिया जा रहा है। अगर हमारी कोई योजना है तो फिर हमारे बजट योजना उन्मुख हों।

इसके लिए हमारे वित्त वर्ष में बदलाव लाने की ज़रूरत होगी, जैसा कि हमने पहले ही ध्यान दिलाया है और जिसकी लोकसभा की आकलन समिति ने भी माँग की है। एक ऐसा तंत्र भी होना चाहिए, जो वित्तीय ख़र्चों के साथ-साथ भौतिक उपलब्धियों का भी मूल्यांकन करे। इसे निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के कार्यों एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन करना चाहिए। वित्तीय और भौतिक लक्ष्यों के अंतर्संबंधों को पक्की तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। इसके बग़ैर न तो जनता और न ही सरकार यह जान पाएगी कि कम-से-कम बलिदान देकर अधिक-से-अधिक हासिल किया जा रहा है या नहीं। अधिक-से-अधिक प्राप्त करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

21

आयोग की समीक्षा अव्यावहारिक और निराशाजनक

इस तथ्य के बावजूद कि सभी लोग दूसरी पंचवर्षीय योजना के पुनर्निरूपण की ज़रूरत समझ रहे हैं, राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 3 मई, 1958 की अपनी बैठक में योजना परिव्यय को 4,800 करोड़ रुपए के लक्षित स्तर से नीचे लाने से इनकार कर दिया है। योजना आयोग ने परिषद् को भेजे अपने नोट में इस लक्ष्य को 4,500 करोड़ रुपए पर निश्चित किया है, जोकि अपने मूल लक्ष्य से 300 करोड़ रुपए कम है। आयोग का मत था कि यदि योजना के विभिन्न खंडों में असंतुलन से बचना है तो कम-से-कम इस स्तर का लक्ष्य रखा जाना चाहिए। इसके लिए अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता होगी, क्योंकि आयोग के पास अनुमानतः 4,260 करोड़ रुपए मूल्य के संसाधन उपलब्ध हैं। इस रक़म के अवशिष्ट मूल्यों का विस्तृत वर्णन तो नहीं दिया गया है, परंतु आयोग 2,022 करोड़ रुपए घरेलू बजट से और अन्य संसाधनों से, 1,038 करोड़ रुपए विदेशी मदद से और 1,200 करोड़ रुपए घाटे के वित्त प्रबंध से निकालने की सोच रहा है। 240 करोड़ रुपए की कमी को पूरा करने के लिए केंद्र और राज्यों को अतिरिक्त प्रयास करने पड़ेंगे। आयोग को लगता है कि विदेशी मुद्रा संसाधनों में गिरावट के चलते घाटे के वित्त प्रबंधन की सीमा भी निश्चित करनी पड़ेगी। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि 240 करोड़ रुपए अतिरिक्त कराधान, सार्वजनिक उधारियों और सरकारी व्यय की आर्थिक व्यवस्था से प्राप्त किए जाएँ। इन क्षेत्रों में क्रमशः 100 करोड़ रुपए का अतिरिक्त कराधान, ऋण और छोटी बचतों से 60 करोड़ रुपए की प्राप्ति और आर्थिक व्यवस्थाओं व करों और उधारियों के बकाया से 80 करोड़ रुपए की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है। केंद्र ने अपनी कर व्यवस्था में भारी वृद्धि की है और अब यह माना जा रहा है कि अगले दो वर्षों में अतिरिक्त कराधान

से 40 करोड़ रुपए से अधिक की प्राप्ति होना असंभव है। इसलिए राज्यों को 60 करोड़ रुपए तक के अतिरिक्त संसाधनों की उपलब्धि पर ध्यान देना होगा।

आयोग ने विभिन्न प्रमुख मदों में वितरण के तरीकों को नए नज़रिए से देखा है, जिसे आगे की तालिका में दिए गए तुलनात्मक आँकड़ों से समझा जा सकता है—

तालिका

4,500 करोड़ रुपए का संशोधित योजना परिव्यय

(रुपए करोड़)

प्रमुख मदें	मूल		संशोधित	
	राशि	कुल का प्रतिशत	राशि	कुल का प्रतिशत
1. कृषि एवं विकास सामुदायिक	568	11.8	510	11.3
2. सिंचाई एवं विद्युत्	913	19.0	820	18.2
3. उद्योग एवं खनन	690	14.4	790	17.6
4. ग्राम एवं लघु उद्योग	200	4.1	160	3.5
5. परिवहन एवं संचार	1385	28.9	1340	29.8
6. समाज सेवाएँ	945	19.7	810	18.0
7. विविध	99	2.1	70	1.6
कुल	4800	100.0	4500	100.0

भौतिक लक्ष्य

विभिन्न क्षेत्रों में हासिल की जानेवाली उपलब्धियों के लक्ष्य भी संशोधित किए गए हैं। लेकिन निर्धारित किए गए नए लक्ष्यों का विवरण मौजूद नहीं है। आयोग ने खाद्य उत्पादन की वृद्धि के प्रयासों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया है। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 1957-58 के दौरान खाद्य उत्पादन में वर्ष 1956-57 की तुलना में 20 लाख टन की आएगी। आयोग ने इस बात को स्पष्ट नहीं किया है कि खाद्य उत्पादन कैसे बढ़ाया जाएगा। कृषि उत्पादन में जहाँ तक अधिक निधि वितरण की बात है तो यहाँ भी इसके अलावा कोई विवरण नहीं मिलता कि कृषि विकास के कार्यक्रमों को सामान्य तौर पर अधिक संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ और पशुपालन, वन, मृदा संरक्षण और अन्य मदों पर ख़र्चे घटाए जाएँ। इन मदों के तहत अपेक्षाकृत धीमी प्रगति कृषि उत्पादन को कैसे प्रभावित करेगी, यह देखना बाक़ी है।

अतिरिक्त सिंचाई की लघु एवं मध्यम योजनाओं के लक्ष्य भी संशोधित किए गए

हैं। इन्हें 1.2 करोड़ एकड़ से घटाकर 1.04 करोड़ एकड़ तक लाया गया है। आयोग का यह भी मानना है कि उपलब्ध सिंचाई व्यवस्था भी पूरी तरह से उपयोग में नहीं लाई जा सकी, क्योंकि नहरों और नलिकाओं के निर्माण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया दिया गया। साथ ही संग्रहण क्षमता व प्रदर्शन खेतों के निर्माण, फसलों के नए तरीक़ों की शुरुआत, और काश्तकारों को मदद पर भी ध्यान नहीं दिया गया।

विद्युत् विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत कुल संस्थापन क्षमता का लक्ष्य भी 35 लाख किलोवाट से 30 लाख किलोवाट घटा दिया गया है।

जहाँ तक कोयला उत्पादन का सवाल है, आशंका जताई जा रही है कि 1960-61 के 6 करोड़ टन के मूल लक्ष्य से 40 लाख टन की कटौती की जा सकती है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में 2.2 करोड़ टन अतिरिक्त का लक्ष्य रखा था, जिसमें से 1.2 करोड़ टन का लक्ष्य निजी क्षेत्र के लिए रखा गया था। अनुमान लगाया जा रहा है कि 1956-57 के दौरान उत्पादन में केवल 18.4 लाख टन की वृद्धि हुई। सार्वजनिक क्षेत्र में कोयला खदानों ने केवल 2 लाख टन अतिरिक्त का उत्पादन किया। योजना आयोग द्वारा जो ज्ञापन तैयार किया गया, उसके अनुसार योजना के पहले दो साल प्राथमिक स्तर के कार्यों को अंजाम देने में ही निकल गए। जैसे कि विवरणिका तैयार करना, परियोजना रिपोर्ट बनाना, अपूर्ण कोयला ठेकों का अधिग्रहण, उपकरणों के लिए ऑर्डर आदि। आयोग को उम्मीद है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के बचे हुए तीन सालों में सार्वजनिक क्षेत्र बेहतर परिणाम देगा। लेकिन इससे भी 1.2 करोड़ टन अतिरिक्त कोयला के उत्पादन के लक्ष्य को हासिल करना संभव नहीं होगा। इसलिए इसे घटाकर 66 लाख टन कर दिया गया है। निजी क्षेत्र को मध्य भारत के कोयला क्षेत्रों से 14 लाख टन का अतिरिक्त कोयला प्राप्त करने के लिए कुछ छूटें दी गई हैं।

निजी क्षेत्र में निवेश की समीक्षा करते हुए आयोग का कहना है कि विभिन्न औद्योगिक परियोजनाओं में बढ़ी लागत के कारण बड़े और मध्यम उद्योगों में निवेश का लक्ष्य 685 करोड़ रुपए से बढ़ाकर 840 करोड़ रुपए कर दिया गया। पिछले दो वर्षों के दौरान प्रति वर्ष 135 करोड़ रुपए से लेकर 140 करोड़ रुपए का निवेश हुआ है। कुल निवेश पर 475 करोड़ रुपए के व्यय का अनुमान है। आधुनिकीकरण एवं प्रतिस्थापन पर 100 करोड़ रुपए निवेश का अनुमान है। इसलिए 265 करोड़ रुपए की कमी होने की संभावना है।

आयोग ने रोज़गार का लक्ष्य भी 80 लाख से घटाकर 62 लाख कर दिया है। यह कमी योजना लक्ष्यों में की गई कटौती के कारण ही नहीं है बल्कि इसलिए भी लाई गई है, क्योंकि संभावित रोज़गार के अनुमान तथ्यों की तुलना में बहुत उदार थे।

आयोग द्वारा दूसरी पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन का मूल्यांकन सामान्य सा ही

है। ऐसे समय में जब पूरी योजना ही उलट-पुलट है और पुनर्विचार की सख्त ज़रूरत है, आयोग को अब तक की प्रगति का विस्तृत विवरण देना चाहिए था तथा कमियों व अडचनों के कारणों का विश्लेषण करना चाहिए था। ऐसा करने से आयोग कुछ निश्चितता के साथ योजना का भविष्य बताने में समर्थ हो सकता था। अभी भी संसाधनों की जो स्थिति बताई जा रही है, वह वास्तविकता के उलट है। योजना के पहले दो वर्षों में 1,496 करोड़ रुपए के योजना परिव्यय पर 702 करोड़ रुपए का वित्तीय घाटा रखा गया। विदेशी सहायता अनुमानत: 226 करोड़ रुपए रखी गई। स्पष्ट रूप से घरेलू संसाधन, वित्तीय या दूसरे, जैसा सोचा गया था, उससे बहुत कम थे। आनेवाले वर्षों में किन्हीं बेहतर परिणामों की कोई संभावना नहीं है। जहाँ बाज़ार ऋणों को बढ़ाना संभव हो सकता है, छोटी बचतों और राजस्व अतिरिक्त के आँकड़ों का आयोग के अनुमानों से मेल खाने की संभावना नज़र नहीं खाती। देश की अर्थव्यवस्था को देखते हुए वित्तीय घाटे का 1,200 करोड़ रुपए का स्तर चिह्नित सीमा से कहीं ऊपर है, लेकिन जब तक सरकार भारी मात्रा में अपना व्यय कम नहीं कर देती, यह सीमा भी पार हो जाएगी। अनुभव बताते हैं कि योजना के आर्थिक उपायों से 80 करोड़ रुपए बचाए जाने की बात संदेहात्मक है।

जब आयोग ने सरकार की तरफ़ से 4,260 करोड़ रुपए के संसाधनों की उपलब्धता का अनुमान लगाने का ज़िम्मा समझ-बूझकर खुद पर ले ही लिया है तो उसे संशोधित योजना को इसी सीमा में रखना चाहिए था। लेकिन तब वह 300 करोड़ रुपए से अधिक की कटौती का प्रस्ताव नहीं रख सकता था। इसलिए उसने सरकारों से 240 करोड़ रुपए की व्यवस्था के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए कहा।

तथ्यों का सामना करने से इनकार

योजना व्यय में 300 करोड़ की कटौती के योजना आयोग के प्रस्ताव को राष्ट्रीय विकास परिषद् का समर्थन नहीं मिला। उसने 4,800 करोड़ रुपए के मूल लक्ष्य को ही प्राप्त करने का निश्चय किया है। परिषद् ने 4,800 करोड़ रुपए के काल्पनिक आँकड़े में फिर से अपना विश्वास जताया है। इस विश्वास का आधार अर्थव्यवस्था से जुड़ी सच्चाई या तथ्य नहीं हैं बल्कि संकुचित राजनीति के दबाव हैं।

परिषद् को लगा कि एक बार जनता में ऊँची उम्मीदें जगाने के बाद अब योजना में काट-छाँट का अर्थ होगा अपनी हार मानना। बजट पर बहसों के दौरान केंद्र और राज्य के हर मंत्री ने आश्वासन दिया था कि उनके क्षेत्र विशेष के योजना परिव्यय में कोई कमी नहीं लाई जाएगी। इसलिए अब राष्ट्रीय विकास परिषद् के लिए यह कहना मुश्किल होगा कि योजना के कुछ कार्यक्रमों में भारी कटौती की जाएगी।

अब परिषद् कुछ इंद्रजाल बुन रही है। उसने पूरी योजना को दो हिस्सों में बाँट दिया है। पहला हिस्से में 4,500 करोड़ रुपए का परिव्यय रखा गया है तथा इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण

परियोजनाएँ, पूर्ण हो रही योजनाएँ तथा ऐसी योजनाएँ, जिन्हें छोड़ा नहीं जा सकता, साथ ही कृषि उत्पादन में वृद्धि से सीधे जुड़े कार्यक्रम रखे गए हैं। योजना के दूसरे हिस्से में बाक़ी सारी योजनाएँ आती हैं और इसका कुल परिव्यय 300 करोड़ रुपए है। लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि विभिन्न योजनाओं का यह विभाजन किसी संशोधित अनुमान के आधार पर नहीं किया गया है। सभी योजनाओं की लागत बढ़ जाने के कारण यह स्पष्ट है कि 300 करोड़ रुपए की सीमा में बाकी योजनाओं को निबटाना तब भी संभव नहीं है, यदि पहले हिस्से की योजनाओं के अनुमानों को फिर से आँका जाए। परिषद् ने योजना आयोग द्वारा प्रस्तावित लक्ष्यों का भी पुनर्निरीक्षण किया है। माना गया है कि सामुदायिक विकास की परियोजनाओं के लक्ष्य योजना अवधि में प्राप्त नहीं किए जा सकते, इसलिए यह फ़ैसला लिया गया है कि खंडों का अंतिम वितरण अक्तूबर, 1963 में किया जाए और योजना अवधि के दौरान केवल 900 खंड बाँटे जाएँ। परिषद् ने राज्य सरकारों को सुझाव दिया है कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के कार्यक्रमों को लागू किया जाए। आशा की जाती है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक पूरे देश में पंचायतें गठित हो जाएँगी। योजना आयोग का ज्ञापन साहस के साथ योजना के रूप को बदलने या इसकी कमियों को दूर करने की बात नहीं करता। प्राथमिकताएँ नहीं बदली गई हैं। इसके विपरीत भारी और मूल उद्योगों के लिए अधिक आवंटन रखा गया है। जहाँ तक कृषि और लघु उद्योगों का संबंध है, न सिर्फ़ कुल परिव्यय के साथ-साथ प्रतिशत के आधार पर भी कटौती की गई है, बल्कि इस बात के भी कोई सबूत नहीं हैं कि भौतिक और वित्तीय लक्ष्यों के बीच तथा विभिन्न क्षेत्रों के भौतिक लक्ष्यों के मध्य असंतुलन को ठीक करने के कोई प्रयास किए गए हैं। योजना को दो हिस्सों में बाँटना या कुछ परियोजनाओं को तीसरी योजना अवधि में डाल देना, योजना के पुनर्गठन को नहीं दरशाता। इसे योजना की 'काट-छाँट' कहा जा सकता है, जिसे स्वीकार करने का साहस राष्ट्रीय विकास परिषद् में नहीं है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् के प्रस्ताव पर टिपण्णी करने की ज़रूरत नहीं है। हम पहले ही देख चुके हैं कि दूसरी पंचवर्षीय योजना मुख्यत: राजनीतिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने तथ्यों का सामना करने से इनकार करके यह निश्चित कर दिया है, हमारे देश में योजना राजनीति का खेल है, न कि एक नए और समृद्ध भारत बनाने की राह में लगे लोगों का गंभीर और ज़िम्मेदाराना काम। जब तक हम योजना के प्रति अपना रवैया बदल नहीं देते, तब तक हम उतना भी प्राप्त नहीं कर सकते, जो थोड़ा-बहुत अन्य देशों ने लोकतंत्र और व्यक्ति स्वतंत्रता के आदर्शों की बलि चढ़ाकर हासिल किया है।

—पुस्तक, 1958

□

परिशिष्ट

समीक्षा I

डॉ. भाई महावीर

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसा प्रकाशन है, जो एक से अधिक कारणों से गंभीर रूप से संज्ञान लिये जाने और सचेत अवलोकन के योग्य है। चिंतन की स्पष्टता, दृष्टिकोण की ताज़गी और विचार बिंदुओं की तर्क संगतता में यह न केवल भारत के नियोजन से संबद्ध साहित्य बल्कि समस्त आर्थिक साहित्य के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय योगदान है।

लेखक—जिनका नम्र स्वभाव उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता की ही तरह लोगों को प्रभावित करता है—यद्यपि शिक्षा की दृष्टि से विधि स्नातक हैं, और चिंतन की दृष्टि से राजनीतिक व्यक्तित्व हैं, व्यापक आयामों और वस्तुत: चकरा देनेवाली जटिलता के विषय को पेशेवर कुशाग्रता से अधिक बेहतर ढंग से समझने योग्य बना देते हैं। परंतु संभवत: यह वैसा ही है, जैसा होना चाहिए। देश का आर्थिक भविष्य, (यदि उसे बाँटा जा सके) किसी ऐसे सिद्धांतकार का एकाधिकार नहीं माना जा सकता, जिसकी 'मज़बूत राय' आर्थिक विचार के अनुकूलन की राह में भारतीय परिस्थिति में कमज़ोर राय बन जाए। और निश्चित रूप से यह हमारी नौकरशाही के प्रशासनिक मुग़लों के लिए एक ख़ुशनुमा चारागाह नहीं होगा। परंतु जो तथ्य किसी भी पाठक को प्रभावित करेगा, वह यह है कि पुस्तक उनकी क़लम से लिखी गई है, जिनकी राय यद्यपि भारतीय जनसंघ के साथ है, परंतु पार्टी के स्तर से बहुत ऊपर उठकर बातों को सामने लाती है और इसमें वस्तुत: नारेबाज़ी नहीं गढ़ी गई है। यह आंशिक रूप से इस कारण से है कि लेखक के अनुसार 'वर्तमान समय किसी को आरोपित करने या श्रेय देने का नहीं है। यदि हम एकजुट हो खड़े नहीं हो सकते और सही नीतियाँ नहीं बना सकते तो हमारा भविष्य संकट में पड़ जाएगा।' परंतु यह आंशिक रूप से इस तथ्य के कारण भी है कि जनसंघ स्वयं को किसी भी 'वाद' से जुड़ा हुआ नहीं मानता और न ही किसी नारे का समर्थक है।

यद्यपि पुस्तक में अभिव्यक्त विचार श्री उपाध्याय के अनुसार—'व्यक्तिगत हैं

और किसी भी तरह से संगठन से संबंधित नहीं हैं', परंतु कोई यह देखने में ग़लती नहीं कर सकता कि मतभेद के बिंदु जनसंघ के दृष्टिकोण की तरह ही सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध हैं। परंतु वे योजनाओं के वादों और प्रदर्शनों की चर्चा के दौरान स्पष्ट होते हैं। पुस्तक का पहला आधा खंड प्रथम पंचवर्षीय योजना को समर्पित है और दूसरा खंड दूसरी योजना को। यह बहस एक विस्तृत संदर्भ के योग्य है और हम इस पर समान खंडों में चर्चा कर सकते हैं।

नियोजन के मसले की चर्चा करते हुए लेखक उन लेखकों से असहमत है, जिनका विश्वास, लोगों की क्षमताओं, जिस पर आर्थिक उदारवाद का संपूर्ण दर्शन टिका है, पर नहीं है। यह बे-इरादा इस निष्कर्ष तक पहुँचाता है कि वैयक्तिक पहल पर कोई प्रगति संभव नहीं है। इसलिए राज्य का उद्यम और नियंत्रण मुख्य आधार होना चाहिए। तभी अविकसित देशों में 'आर्थिक योजना को सत्तारूढ़ दल के चुनावी घोषणा-पत्र के रूप में अधिक प्रस्तुत किया जाता है और उसे उसी तरह कार्यान्वित करना चाहा जाता है। यह एकल दल शासन को बनाए रखने के लिए कार्य करता है।' (पृष्ठ 17) ये अवलोकन उस तथ्य की याद दिलाते हैं कि कांग्रेस अपने चुनाव अभियान में पंचवर्षीय योजना का लाभ लेने का प्रयास कर रही है। इस बिंदु पर भारत सेवक समाज के मामले का उदाहरण है, जिसे प्रशंसनीय आदर्शों ('एक सर्वशक्तिमान राज्य की क्षमता से भी परे') वाला ग़ैर राजनीतिक संगठन माना जाता है, जो एक दलीय उपकरण बन गया। जन सहयोग के लिए राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् भी बेहतर प्रदर्शन नहीं कर पाई। नियोजन की पूर्व अपेक्षा में वैयक्तिक स्वतंत्रता को सीमित करना और लोकतंत्र का बचाव अंतर्निहित है। (पृष्ठ 19) उन देशों में जहाँ लोकतांत्रिक परंपराओं को अभी गहरे जड़ जमाना है, राज्य का हस्तक्षेप शुरुआत में ही इन पर शिकंजा कसने को बाध्य है। तब वे लोकतंत्र के संरक्षण के लिए एक राह सुझाते हैं, जहाँ अंतत: 'लोकतंत्र लाद दिया जाता है।' लेखक यह दिखाने का प्रयास करता है कि हमारे योजनाकर भी 'अंततः एक ऐसा समाज देखते थे, जिसमें सभी आर्थिक शक्तियाँ राज्य में निहित हों।' (पृष्ठ 35) यह 'सार्वजनिक क्षेत्र का प्रगतिगामी प्रसार और निजी क्षेत्र पर राज्य के दिशानिर्देश तथा नियंत्रण का प्रगतिगामी व्यापकीकरण है।' (पृष्ठ 34) इसका अर्थ है कि योजना आयोग द्वारा अंगीकृत सार में लोकतांत्रिक स्वतंत्रता की कमी और राज्य की राजनीतिक शक्तियों में वृद्धि का भाव है।

एकदम प्रारंभिक अध्यायों में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु रेखांकित किया गया है कि 'नियोजन अखिल भारतीय मामला होने कारण हमारा संघीय ढाँचा किसी भी नियोजन के यथोचित सूत्रीकरण और सफल क्रियान्वयन की दृष्टि से अनुपयुक्त है।

केंद्र और राज्यों में अलग-अलग दलों का सत्ता पर काबिज़ होना विरोधाभासी दावों को जन्म देगा। योजना आयोग के क़ानून में ऐसा कुछ नहीं है, जो ग़ैर अनुसारक राज्य सरकार को निर्धारित राह पर चलने के लिए बाध्य कर सके।' यह मात्र आर्थिक और सामाजिक नियोजन को भारतीय संविधान की समवर्ती सूची से केंद्रीय सूची में हस्तांतरित करने के लिए तर्क नहीं है बल्कि यह एकात्मक ढाँचे के लिए आधार है।

यह प्रदर्शित करने के लिए आँकड़े दिए गए हैं कि प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति व्यय विभिन्न राज्यों में अलग-अलग कैसे हैं। यह कहने के लिए मद्रास विश्वविद्यालय के प्रो. बालकृष्ण को उद्धृत किया गया है कि हिस्सेदारी के हित में एकात्मक राज्य वांछनीय है।

वे कहते हैं—'जब अर्थव्यवस्था का एकीकरण शीघ्रता से आगे बढ़ रहा है तो देश को स्वतंत्र राजकोषीय अधिकार क्षेत्रों में विभाजित करना तर्कसम्मत है।' (पृष्ठ 83) लेखक सार्वजनिक क्षेत्र के पैरोकारों से सहमत नहीं है और उसके पास स्वयं योजना के परिणामों को देखते हुए ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। उदाहरण के तौर पर औद्योगिक क्षेत्र में 'निजी क्षेत्र ने सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में बेहतर किया है।' (पृष्ठ 111) परंतु इसका अर्थ अधिकारियों की थोक में निंदा करना नहीं है, क्योंकि 'नए कार्य, सेवाओं के लिए वे दी गई परिस्थितियों में जितने कम सुविधायुक्त हैं, सामान्य तौर पर वे प्रशंसा के नहीं बल्कि अभिमूल्यन के योग्य हैं।' (पृष्ठ 111) 'नि:संदेहाधिक प्रयास और सार्वजनिक धन के अपव्यय से बचा जा सकता है, जिसके लिए सरकार ने अपने औद्योगिक मामलों के कार्यव्यवहार में निजी प्रबंधकीय और सांगठनिक प्रतिभा का सहयोग माँगा था।' 'नेपा मिल, विशाखापत्तनम शिपयार्ड और ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन को सरकार द्वारा अधिग्रहीत करना पड़ा, क्योंकि इन्हें मज़बूत और संतोषजनक आधार पर प्रबंधित करने में निजी क्षेत्र विफल रहा। सार्वजनिक उद्यमों को निजी स्वामित्व या प्रबंधन को हस्तांतरित करने का सवाल नहीं उठा, क्योंकि सरकार करदाताओं की क़ीमत पर संचयी घाटा उठाना सहन कर सकती है।' चित मैं जीता, पट तुम हारे! यदि तर्क दोनों तरफ़ लागू होता तो हिंदुस्तान मशीन टूल्स, हिंदुस्तान शिपयार्डस, हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट्स और भारत इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे कई सार्वजनिक उपक्रम, जिन्हें 'शर्म से सिर ज़मीन में गाड़ना पड़ेगा', निश्चित तौर पर निजी प्रबंधन को हस्तांतरित किए जाने योग्य होंगे। राज्य का स्वामित्व आसान है, परंतु 'राज्य उपक्रम और प्रबंधकीय कौशल इतनी आसानी से स्थापित नहीं होते।' (पृष्ठ 137) यद्यपि लेखक का आलोचना के लिए बहुत कुछ होने के बावजूद निंदा से दूर रहने का संकेत इस अवलोकन से मिलता है—'यहाँ तक कि सभी मामलों में लक्ष्य हासिल नहीं किए जा सके, परंतु भारत

द्वारा उत्पादित कुछ ही सही, पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।' (पृष्ठ 111)

श्री उपाध्याय बड़ी चीज़ों के प्रति हमारे योजनाकारों के सम्मोहित होने से ख़ुश नहीं हैं और यहाँ दृष्टिकोण में एक और मूलभूत अंतर है। जहाँ बड़ी परियोजनाओं की बड़ी हिस्सेदारी थी, वहीं कुल सिंचित क्षेत्र के दो-तिहाई हिस्से को अपने दायरे में लाने वाली लघु सिंचाई परियोजनाओं के लिए कोई विशिष्ट आवंटन नहीं था, यद्यपि वे तत्काल प्रतिफल का वादा करती हैं और जैसा कि लेखक ने दरशाया है, ये महज़ शीर्षक हो गई हैं, जिसके तहत अतिरिक्त कृषि उत्पादन में कोई कमी नहीं है। यद्यपि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और जनसंघ ने बहुत पहले ही वृहद से हटाकर लघु की ओर ज़ोर देने को कहा था, परंतु खाद्य उत्पादन के महत्त्व की प्रधानमंत्री की हालिया स्वीकारोक्ति के साथ अब जाकर इस भान में वृद्धि हो रही है।

इसी तरह का मामला लघु क्षेत्र की उपेक्षा है, जिसके लिए नियोजन में बहुत थोड़ा आवंटन किया गया था, परंतु जिसकी 'उपलब्धियाँ भरोसेमंद साबित हुईं और जिसने उत्पादन के नए केंद्र बनाने का साहस किया तथा नई तकनीकें विकसित कीं।' (पृष्ठ 137) यह वास्तविकता है कि युद्ध के दौरान कई लघु उद्योग फले-फूले और यदि सरकार ने उनके प्रति थोड़ी और सहानुभूतिपूर्ण नीति अपनाई होती तो वे 'औद्योगिक क़िले के लिए एक मज़बूत और स्थिर आधार उपलब्ध कराते।' परंतु जहाँ लेखक उन्हें नींव के मुख्य पत्थरों के रूप में देखता है, वहीं नियोजन उन्हें 'विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था के आधार निर्माण के रूप में नहीं देखती, बल्कि शिक्षित लोगों को कुछ रोज़गार उपलब्ध कराने के माध्यम के रूप में देखती है।' इसीलिए कहा जाता है कि योजना के तीसरे वर्ष के आख़िर में उन पर थोड़ा ध्यान दिया गया।

क्या यह उसी प्रकार का पूर्वग्रहग्रस्त दृष्टिकोण है, जिसने जनमार्गों की पूर्ण उपेक्षा कर रेलवे को 'अभिभावकों का दुलारा बच्चा' बना दिया? लेखक का मानना है कि परंपरागत बैलगाड़ी और देसी शिल्प को जितना समर्थन मिल रहा है, उससे अधिक समर्थन पाने के योग्य हैं। जब तक कि मोटर चलाने योग्य सड़कें पूरे देश को जोड़ नहीं देतीं, तब तक बैलगाड़ी को हटाना लाभप्रद नहीं होगा। यहाँ तक कि इसके बाद भी यह संदेह है कि इससे आयातित पेट्रोल पर हमारी निर्भरता बढ़ेगी। इस तथ्य के अलावा कि परिवहन पर नियोजन का अध्याय गड्ड-मड्ड है और वह विभिन्न माध्यमों का क्षेत्र निर्धारित नहीं करता, वे पाते हैं कि दुलरुआ रेलवे, जिसने दक्षता, अर्थव्यवस्था और बेहतर सेवाओं की सभी आशाओं को मिथ्या साबित किया है, को पुनर्समूहीकरण से अलग रखा गया है। अवांछित राजनीतिक दबाव भी इसमें भूमिका निभाता है। हमें यदि

उन संकटों का निदान करना है, जिन्हें ख़त्म करने में रेलवे विफल रही तो 'औद्योगीकरण का रंग-ढंग बदलना चाहिए और रेलवे के परिपूरक के रूप में परिवहन के वैकल्पिक स्वरूप तलाशे और विकसित किए जाने चाहिए।'

लेखक बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के समर्थकों पर निशाना साधते हैं : 'यह रेलवे की आर्थिक शक्ति नहीं बल्कि राज्य की राजनीतिक शक्ति है, जिसने सड़क परिवहन को प्रतिबंधित किया है। आज जब रेलवे समस्त भार नहीं उठा सकता तो सड़क परिवहन का विस्तार किया जाना चाहिए, परंतु राष्ट्रीयकरण, उच्च कराधान, अंतरराज्यीय सेवाओं और लंबी दूरी की ढुलाई पर प्रतिबंध तथा मात्र अल्प अवधि के परमिट देने की नीतियों की आशंकाएँ, वे बाधाएँ हैं जिन्हें स्वयं दूसरी पंचवर्षीय योजना में स्वीकार किया गया है।

दिलचस्प है कि नागरिक उड्डयन के राष्ट्रीयकरण, जिसका सहारा लिया गया है, को भी ग़लत पाया गया है, क्योंकि सरकार ने जब नौ कंपनियों को लाइसेंस दिया तो मात्र चार कंपनियों को लाइसेंस देने के अपने ही निर्णय की अनदेखी की। तब भी उन्हें केवल सस्ते ऋण की आवश्यकता थी, जिस पर सरकार ने राष्ट्रीयकरण के ज़रिए बड़ा निवेश और घाटा सहना पसंद किया।

एक अन्य मूलभूत अंतर सामुदायिक विकास और एन.ई.एस. परियोजनाओं पर लेखक की टिप्पणी में परिलक्षित होता है। यह जैविक विकास नहीं है—अधिकारी विकास की पहल करने में विफल रहे, लोगों की भागीदारी प्राप्त नहीं की जा सकी, प्रशिक्षण कार्यक्रम देश की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थे, ग़ैर आर्थिक और अनियमित व्यय हुआ, वस्तुतः इन्हें महज़ 'प्रदर्शन वस्तु' की तरह रखा गया, जो बताता है कि असल उद्देश्य 'विकास नहीं बल्कि कुछ और था।' अमरीकी विशेषज्ञ की प्रेरणा और योजना से शुरू किया गया अभियान जन अभियान कैसे हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं कि वे स्वाभाविक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में विफल रहे।

पहली पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियों पर आते हुए श्री दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि यदि यह कुछ विशिष्ट उपलब्धियों में परिणत हुआ तो बेरोज़गारी से निपटने और एकीकृत क़ीमत ढाँचा बनाए रखने में इसने उतनी ही विशिष्ट विफलताएँ भी हासिल कीं। यहाँ तक कि उपलब्धियों के लिए भी श्रेय का दावा बमुश्किल ही किया जा सका, क्योंकि वे (विशेष रूप से कृषि और निजी क्षेत्र में) अनियोजित थे। आयोग ने यह राय व्यक्त की थी कि नियंत्रण के बग़ैर कोई नियोजन संभव नहीं है। इसके विपरीत सरकार ने विनियंत्रण की नीति का अनुसरण किया था।

कृषि में मिली सफलता मुख्य रूप से प्राकृतिक परिस्थितियों, यानी अच्छे मानसून

के कारण थी। यदि यह सफलता किसी के प्रयास से मिली होती तो वह इसे आगे बढ़ाने में सक्षम होता। यहाँ तक कि औद्योगिक क्षेत्र में भी ग़ैर योजना क्षेत्र, जहाँ निजी क्षेत्र निर्णायक कारक था, में सर्वश्रेष्ठ सफलता मिली और लक्ष्य से अधिक हासिल हुआ। जहाँ तक राष्ट्रीय आय में मौद्रिक वृद्धि का सवाल है, इसे बहुत महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यह एक स्थिर गति से नहीं था—वस्तुत: 'निवेश दर बढ़ने के कारण इसे गिरने दिया गया।' (पृष्ठ 59) 17.5 प्रतिशत की वृद्धि का दावा किया गया, जो अनुमान (11 प्रतिशत) की तुलना में डेढ़ गुना है। परंतु यदि चालू क़ीमतों पर प्रति व्यक्ति आय के आँकड़ों को लिया जाए तो यह प्रारंभिक बढ़त (अनुकूल मानसून के कारण) के बाद 1950-51 के 262.2 रुपए से घट कर 1955-56 में 252.0 रुपए रह गया। बड़े योजना आकार के बावजूद शुद्ध घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान योजना अवधि की शुरुआत की तुलना में अंत में 14.29 प्रतिशत कम रहा। और स्थिर क़ीमत ढाँचा बनाए रखने में विफलता 'दु:खद' थी।

संसाधन के मोरचे पर, बजटीय संसाधनों को छोड़कर वास्तविकता अनुमानों से काफ़ी नीचे थी। विदेशी सहायता अनुमान से 40 प्रतिशत से भी कम थी। इसलिए बड़ी मात्रा (21 प्रतिशत) में वित्तीय घाटा उठाना पड़ा, जिसे किसी ने भी 'सुरक्षित नहीं माना था।' निजी खाते में बैंक ऋण का विस्तार अलग से हुआ। प्रत्यक्ष करों की तुलना में कमोडिटी कर का प्रतिशत बढ़ा। रेलवे की दरें बिना किसी उचित कारण के दो बार बढ़ाई गईं, जबकि उसका प्रशासनिक व्यय घटाने के योजना लक्ष्य के बावजूद पुनर्समूहीकरण के बाद 28 प्रतिशत बढ़ गया।

राज्यों द्वारा बढ़ाए जानेवाले संसाधनों को योजना आयोग ने इकतरफ़ा ढंग से नियत कर दिया, जिससे अधिकांश मामलों में विभिन्न स्तर पर कमी रही, केवल बॉम्बे, आसाम और पंजाब ने अपना कोटा लगभग जुटाया। सार्वजनिक ऋण का अनुमान भी वास्तविकता से कोसों दूर था—असल परिणाम बिल्कुल अलग रहा। भुगतान संतुलन का भी क़िस्सा—अगर था तो 'मारो या चूको क़िस्म' का ही था। आयोग न निर्यात के लिए सही लक्ष्य नियत कर सका और न ही आयात की आवश्यकता का ठीक से आकलन कर पाया। 'सबसे बड़ी विफलता खाद्य आवश्यकताओं का अनुमान लगाने में मिली। पूरी योजना इस आधार पर बनाई गई कि हमें भारी मात्रा में खाद्य आयात करना होगा। वस्तुत: हमें 115 करोड़ रुपए के अनुमान की तुलना में केवल 17 करोड़ रुपए के खाद्य आयात की आवश्यकता थी।' ये सभी बातें सिद्ध करती हैं कि पहली योजना सभी कारकों के समुचित संतुलन और आकलन और इससे भी आगे व्यवहार के रूप में दु:खद रूप से विफल रही। यद्यपि हम उपयुक्त ध्यान देने के कारण अपने विदेशी

मुद्रा भंडार में अभिवृद्धि कर सके, परंतु वास्तव में हमें गिरावट झेलनी पड़ी। यहाँ तक कि हमारा वित्तीय घाटा बेहतर समय में आता, यदि यह योजना के शुरुआती वर्षों में आता, जब कृषि उत्पादन बढ़ रहा था—यह कृषि क़ीमतों में मंदी को रोकता और रोज़गार बढ़ाता।

तब, जब सभी कुछ कह दिया गया है, पहली पंचवर्षीय योजना की कहानी शायद ही गर्व करने योग्य है। जहाँ अच्छे परिणाम आए हैं, वहाँ योजनाकारों द्वारा बमुश्किल ही श्रेय लेने का दावा ठोका जा सकता है। हमने लगभग हर क्षेत्र में ग़लत गणना की है। क्रियान्वयन में पूर्ण दक्षता, लोच, लोगों के साथ बेहतर संपर्क, समाज की एक स्पष्ट दृष्टि का निर्माण, बहुत कुछ किया जाना छोड़ दिया गया। योजना निर्माण करना कोई क़यास लगाना नहीं है, जिसे हमने इस योजना निर्माण में देखा है, बल्कि एक अत्यंत उच्च कौशल की कला है। परंतु संभवतः हमें अनुभवों के ज़रिए सीखना है। पहली पंचवर्षीय योजना में सीखने के क्रम में हमें कितना फ़ायदा हुआ, यह दूसरी योजना में दिखना चाहिए?

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 1, 1958

□

परिशिष्ट-II

समीक्षा II

डॉ. भाई महावीर

पहली पंचवर्षीय योजना के अलभ्य लाभों व निराशाओं और प्राप्त अनुभवों, दोनों से गुज़रते हुए अब तक हमने क्या सबक सीखे, जो सीखने की आवश्यकता है और कितनी कल्पनाओं तथा सनक को छोड़ा, जिनसे मुक्ति पाने की आवश्यकता है, क्या यह दूसरी योजना में दिखा? इसे श्री दीनदयाल ने अपने आकलन में सम्मिलित किया है—'जिन मान्यताओं पर योजना आयोग ने काम किया, वे तर्कसंगत नहीं थीं। उसने जिस तकनीक का उपयोग किया, वे अवैज्ञानिक थीं और इस देश की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं। उत्पादन के लक्ष्य मनमाने तरीक़े से तय किए गए और जिन संसाधनों का इसने अनुमान लगाया, वे तथ्य से परे थे। अविकसित अर्थव्यवस्था के नियमों, जहाँ एक उच्च संगठित क्षेत्र एक अत्यंत असंगठित और अमौद्रिक या अर्धमौद्रिक क्षेत्र के साथ-साथ चलता है, के बारे में बहुत अल्प समझ थी। यहाँ तक कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं के नियमों को भी उपयुक्त ढंग से लागू नहीं किया गया।' उनके अनुसार योजना आयोग राज्य उपक्रम के रूसी आदर्श से अनुसक्त है, परंतु मुक्त उपक्रम की ब्रितानी परंपरा का त्याग भी नहीं करना चाहता। यह सबको ख़ुश करने के फेर में 'गांधीवादियों, सर्वोदयवादियों, लोकतंत्रवादियों, पूँजीवादियों और समाजवादियों' के प्रभाव के तहत भ्रामक कलाबाज़ी के झमेले में फँसा है।' उनका अवलोकन है कि योजना के चारआयामी उद्‌देश्य अपने आप में असंगत है—यदि हम हमारे भारी उद्योगों को विकसित करते हैं तो हम रोज़गार नहीं बढ़ा सकते, यदि हम और बचत करते हैं तो उपभोग का स्तर नहीं बढ़ा सकते, क्योंकि हम ग़रीब लोग हैं और हमारी उपभोग की प्रवृत्ति उच्च है। पूँजी निर्माण के उच्च स्तर के साथ आय के और समान वितरण का उद्‌देश्य गड़बड़ा जाता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना मुख्य रूप से प्रो. महालनोबिस और सलाहकारों के समूह के मस्तिष्क की उपज है, ('सभी लौह परदे के पीछे से' : जे.पी.) जिसके लिए ख्यात

अर्थशास्त्रियों के समूह की स्वीकृति मुख्यत: प्रचार के उद्देश्य से ली गई है, क्योंकि उनके प्रावधानों और सुझावों को लगभग नज़रअंदाज़ कर दिया गया है—एक अर्थशास्त्री प्रो. बी.आर. शेनॉय, जो असहमत थे, के प्रति नि:संदेह दिखाया गया असम्मान है। इसका लक्ष्य समाजवादी समाज स्थापित करना है। नियोजन की मान्यता में पीड़ा और त्याग सम्मिलित है, जिसे केवल किसी आदर्शवाद के ज़रिए प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए दूसरी योजना में वैचारिक तत्त्व डालने की इच्छा की गई है। इस समाजवाद का सटीक अर्थ पूरी तरह भ्रम उत्पन्न करने वाला है, क्योंकि जितने समाजवादी हैं, उतने प्रकार का समाजवाद है। परंतु हमारी वामपंथी पार्टियों ने इसे पूरी तरह स्वीकार किया है, क्योंकि वे इसे प्राप्त करने के लिए भिन्न मार्गों और गतियों में विश्वास रखते हैं। प्रधानमंत्री इस बारे में आश्वस्त नहीं हैं कि क्या यह लोकतांत्रिक साधनों से प्राप्त हो पाएगा।

दूसरे, दूसरी पंचवर्षीय योजना समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाने के अपने प्रयासों के अर्थ में भिन्न है। इसके अतिरिक्त इसने अपना ज़ोर कृषि से हटाकर उद्योग पर कर दिया है। पिछली बार इसकी विशिष्टता इसका बड़ा आकार थी।

लेखक का अवलोकन है कि पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान जहाँ वास्तव में अधिकांश 'प्राप्त' परिणाम आँकड़ों का इंद्रजाल या अनुकूल मानसून और अप्रयुक्त संयंत्र क्षमता के उपयोग का परिणाम था, योजनाकारों ने 2.3:1 के कम पूँजी गुणांक की कल्पना की थी। एक बुनियादी त्रुटि यह थी कि अत्यधिक औद्योगिक देशों से लिये गए पूँजी गुणांक के आँकड़ों को बिना यह सोचे कि भारत में स्थितियाँ बिल्कुल भिन्न हैं, यहाँ लागू किया गया। तब राष्ट्रीय उत्पादन आँकड़ों को बढ़ा-चढ़ाकर और निवेश आँकड़ों को कम बताकर आयोग ने वास्तविक स्थिति के बजाय त्याग के बदले बड़े परिणामों के दोहराव की भावना से लोगों को भरमाने का प्रयास किया। (पृष्ठ 171)

6200 करोड़ रुपए के निवेश के लिए भी निम्न उपभोग मानक के निर्णय और निर्णय को लागू करने के लिए दक्ष प्रशासनिक ढाँचे की आवश्यकता है—ये दोनों न केवल अनुपस्थित हैं बल्कि वस्तुत: मानक बढ़ाना भी उद्देश्यों में एक है। विभिन्न क्षेत्रों के लिए पूँजी और बचत गुणांकों की गणना अलग-अलग होनी चाहिए। आयोग औसत के भुलावे में आ गया है।

योजना वास्तविक और वित्तीय, दोनों रूपों में भिन्न क्षेत्रों के कार्यक्रमों में संतुलन स्थापित करने में विफल रही है, जिसके परिणामस्वरूप संकट खड़े हुए हैं। नि:संदेह वित्तीय कसाव से निकलने का एक आसान रास्ता सरकारी टकसाल है, परंतु जब वास्तविक संसाधन कम हों तो आवश्यकताओं की बहुलता मात्र पुनः अभाव का कारण बनेगी। तथ्य यह है कि लक्ष्य मनमाने तरीक़े से निर्धारित किए गए और इच्छानुरूप परिवर्तित कर दिए गए। सिंचाई या उर्वरक के लिए वित्तीय आवंटन में कोई परिवर्तन

किए बग़ैर खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया। इसके अलावा इसका क्रियान्वयन करने के लिए योजना में किसी विशिष्ट तकनीकी का भी अभाव था।

श्री दीनदयाल का अवलोकन है कि दो वर्षों के अनुभव ने सरकार को यह देखने का अवसर दिया कि वे क्या नहीं देख सके और उन्होंने 'करोड़' और 'कट्टर' की बात करनी शुरू कर दी। यह दिखाते हुए कि भार असहनीय साबित हो रहा है, महत्त्वपूर्ण करों से प्राप्तियों के संबंध में ह्रासमान प्रतिफल के नियम को लागू करना शुरू कर दिया। बढ़े हुए राजस्व का अधिकांश हिस्सा प्रशासनिक और रक्षा जैसे ग़ैर-योजनागत मदों पर व्यय किया जा रहा है। लेखक का अवलोकन है कि 'किसी भी योजना, जो देश की रक्षा आवश्यकताओं का ध्यान नहीं करती और उसके लिए पर्याप्त आवंटन नहीं करती, को राष्ट्रीय योजना का नाम नहीं दिया जाना चाहिए।' (पृष्ठ 183) परंतु यदि रक्षा व्यय 62 प्रतिशत बढ़ा है तो नागरिक व्यय 113 प्रतिशत बढ़ा है। अर्थव्यवस्था में भव्य व्यय को स्थान देने के प्रयास किए गए। घाटे की वित्त व्यवस्था को दवा की 'छोटी खुराक' की तरह रखने के बजाय 'नियमित भोजन' की तरह रखने पर भरोसा किया गया।

योजना की सबसे बड़ी विफलता विदेशी मुद्रा बजट में रही। हमने अपना स्टर्लिंग शेष पाँच वर्षों में मात्र 200 करोड़ रुपए तक निकलने का अनुमान किया था। एक वर्ष के भीतर ही हमने दरअसल 219 करोड़ रुपए निकाल लिये। यद्यपि मुद्रासंकट के लिए स्वेज़ संकट को उत्तरदायी ठहराया गया है, जिसका थोड़ा श्रेय संयोगवश पंडित नेहरू की नासिर से घनिष्ठ मित्रता को जाता है, जिन्होंने इतने महत्त्वपूर्ण मामले में नेहरू को विश्वास में लेने की आवश्यकता नहीं समझी, परंतु लेखक का निष्कर्ष है कि वास्तविक कारण बड़ी आयातोन्मुख योजना थी, जो संपूर्ण आयात कार्यक्रम को चरणबद्ध किए बग़ैर लड़खड़ा गई।

आयोग ने लगभग सभी मामलों में संयंत्र और मशीनरी की लागत का अनुमान कम लगाया था। निर्यात प्रोत्साहन का कार्य, जो योजना आयोग द्वारा किया जाना चाहिए, संकट गहराने के बाद निर्यात संवर्धन समिति की नियुक्ति के बारे में पूछताछ से शुरू हुआ। जब तक एक दृढ खाद्य नीति अंगीकृत नहीं कर ली जाती, 'हमारे पास स्वतंत्र भारत विकसित करने की कोई स्थिति नहीं बनती, खाद्य अभाव और क़ीमतों में उतार-चढ़ाव किसी भी समय योजना को गड़बड़ा सकते हैं।' यह सभी प्रदर्शित करते हैं कि स्वेज़ प्रकरण की भूमिका को छोड़कर अन्य सभी कारकों का पता स्वयं योजना में त्रुटियों से लगाया जा सकता है।

लेखक आशा करता है कि योजना में कल्पित विदेशी अनुदान प्राप्त किया जा सकता है। परंतु इसमें से कुछ योजना से बाहर की परियोजनाओं के लिए हैं, और दूसरे,

चूँकि सभी परियोजनाओं का लागत अनुमान बढ़ गया है, यह अनुदान फिर अपर्याप्त रह सकते हैं। तीसरे, यदि आयातित औद्योगिक कच्चे माल के अभाव में हमारा उत्पाद नहीं गिरता है तो हमें अपनी योजना को निर्यात उद्योगों के पक्ष में उन्मुख करने की आवश्यकता है। और यदि हम ऋण के दम पर अपने वर्तमान संकटों से उबर जाते हैं तो हम मात्र एक ख़राब तरीक़े से बनाई गई योजना को पूरा करने लिए अपने भविष्य को गिरवी रख सकते हैं।

वास्तविक कार्यक्रमों में सामुदायिक विकास, खाद्य और कृषि एवं सिंचाई मंत्रालय के बीच कोई समन्वय नहीं है। प्राथमिकताओं को तय करना होगा। खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के बिना अन्य क्षेत्रों में प्रगति संकट में पड़ जाएगी। (बाद में प्रधानमंत्री ने स्वयं खाद्य उत्पादन के महत्त्व का भान होने को स्वीकार किया।) एक विकसित अर्थव्यवस्था की अनिवार्य शर्त के रूप में समृद्ध कृषि के प्रति बरताव किया जाना चाहिए। श्री उपाध्याय कहते हैं कि दूसरी पंचवर्षीय योजना की सबसे बड़ी कमी खाद्य एवं कृषि उत्पादन बढ़ाने के परिप्रेक्ष्य में भूमि सुधार के बारे में सोच पाने में इसकी विफलता रही। भूस्वामियों ने केवल उन पर 'सामाजिक न्याय' के सिद्धांतों के क्रियान्वयन का न्यायोचित ढंग से विरोध किया। यदि समस्त भूमि अंततः सहकारिता के अधीन आनी है तो भूसीमन का बहुत मामूली प्रभाव पड़ेगा। परंतु आयोग ने एक ही साँस में दोनों पर ज़ोर दिया। योजना में किसी एकल भूमि कार्यकाल प्रणाली का प्रस्ताव नहीं किया गया। चीन की सहकारिता के अध्ययन के लिए गए प्रतिनिधिमंडल के परिप्रेक्ष्य में सहकारी खेती के पक्ष में पूर्वग्रहग्रस्त दृष्टिकोण पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

श्री उपाध्याय ने अपनी समीक्षा को कई विचारपूर्ण सुझावों के साथ समाप्त किया है, जैसे योजना को पुनर्चरणबद्ध किए जाने के साथ ही साथ इसके विस्तार की आवश्यकता है; भौतिक, वित्तीय और आर्थिक संतुलनों को स्थापित किए जाने की आवश्यकता है; सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की सापेक्षित भूमिकाओं का पुनर्आकलन करना होगा; प्राथमिकताओं को तत्काल पुनर्निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है (कृषि और विकेंद्रीकृत लघु उद्योग के पक्ष में)। किसी स्थिति का उदाहरण स्थापित करने के लिए मंत्री और सत्ता में शामिल अन्य लोग सभी आडंबरों का त्याग करें और अधिकतम 1000 रुपए का वेतन स्वीकार करें; एक समन्वित कर संग्रह एजेंसी बने इत्यादि। उन्हें वर्तमान आपात स्थिति में प्रिवीपर्स को जारी रखने की आवश्यकता पर भी संदेह है। उन्होंने सुझाव दिया कि हमारे पास आख़िरकार अवधिवार योजना नहीं हो सकती— 'अब हमें एक कार्यक्रम निर्धारित कर काम शुरू करना होगा।' लक्ष्यबोध बहुत अपव्यय में परिणत हुआ है और इसने कई बार कुंठाएँ उत्पन्न की हैं। उन्होंने कहा कि घाटे का वित्तीयन अपनी सीमा पर पहुँच गया है। अनुमान समिति की ताज़ा रिपोर्ट पर ध्यान

आकर्षित करते हुए उन्होंने दोहराया है कि न केवल योजना, बल्कि संपूर्ण योजना मशीनरी के कायाकल्प की आवश्यकता है। उन्होंने आयोग के मूल्यांकन को 'अवास्तविक, निराशाजनक' और 'प्रकट तथ्यों से इनकार' के रूप में पाया है।

हम इस पुस्तक की अनुशंसा न सिर्फ़ उन सभी के लिए करेंगे, जो योजना से जुड़े हैं, बल्कि उस हर व्यक्ति के लिए करेंगे, जिन्हें देश की आर्थिक बेहतरी में अभिरुचि है। यह एक स्फूर्तिदायक विचार है, जो आर्थिक साहित्य में योगदान को बढ़ाने वाला है। यद्यपि यह वांछित होने के लिए बहुत कुछ छोड़ देता है।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 15, 1958

□

संदर्भिका

ए

औ

क

ख

प

फ

ब

र

ल

व

श

स

ह

□□□

परिचय

भूमिका लेखक

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

3 जनवरी, 1943 (वास्तविक 10 मार्च, 1944) प्रमाण-पत्र में। गाँव बिलोना, तहसील लालसोट, ज़िला दौसा, राजस्थान। अर्थशास्त्र में एम.ए., पी-एच.डी. (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय)। दिल्ली विश्वविद्यालय के स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज में प्राध्यापक रहे। 'वैल्यू एंड डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम इन एंशिएंट इंडिया', 'भारत का आर्थिक इतिहास', 'हिंदू अर्थ चिंतन', 'विकास का नया प्रतिमान-सुमंगलम', 'विवेकानंद के सपनों का भारत' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर क्षेत्र संघचालक।

समर्पण परिचय लेखक

श्री राजकुमार भाटिया

जन्म 29 अक्तूबर, 1947 को। दिल्ली विश्वविद्यालय से 1969 में अर्थशास्त्र में एम.ए.। दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज में अध्यापन। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बचपन से ही जुड़ाव। प्रचारक भी रहे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय महामंत्री एवं अध्यक्ष रहे तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद् से भी जुड़ाव रहा। अंतरराष्ट्रीय विज़िटर्स प्रोग्राम के अधीन 1994 में चार सप्ताह का अमरीका भ्रमण।

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।
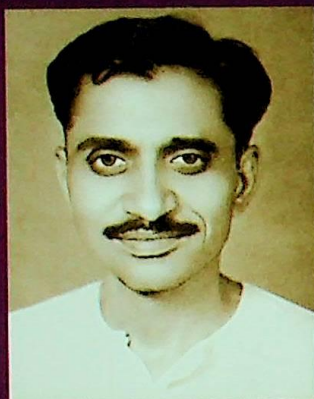
पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

ISBN 978-93-86231-21-5
9 789386 231215
₹ 400/-